श्रीमातृवाणी

माताजी के वचन

III

श्रीअरविन्द आश्रम, पॉण्डिचेरी

माताजी के वचन

III

श्रीमाताजी

माताजी के वचन

III

श्रीअरविन्द आश्रम
पॉण्डिचेरी

श्रीअरविन्द सोसायटी द्वारा प्रकाशित १९८२
श्रीअरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित
प्रथम संस्करण (संशोधित) २००९
संशोधनकर्त्री : सन्तोष गुप्ता

Rs 195

ISBN 978-81-7058-894-8

© श्रीअरविन्द आश्रम ट्रस्ट २००९

प्रकाशक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रकाशन विभाग, पॉण्डिचेरी ६०५००२
मुद्रक : श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

Mataji ke Vachan - III (Hindi)
Words of the Mother - III by the Mother

Published by Sri Aurobindo Society 1982
First published by
Sri Aurobindo Ashram Publication Department 2009

© Sri Aurobindo Ashram Trust 2009

Published by Sri Aurobindo Ashram Publication Department
Pondicherry 605 002
Web http://www.sabda.in

Printed at Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry
PRINTED IN INDIA

प्रकाशकीय वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक दो भागों में विभाजित है। पहले भाग मं लेख हैं और दूसरे में वार्ताएं।

भाग एक में मुख्यतया आध्यात्मिक जीवन के विभिन्न पहलुओं पर श्रीमां के छोटे-छोटे लिखित वक्तव्य हैं। सन् १९३० के आरम्भ से सन् १९७० के आरम्भिक दिनों की अवधि में लिखे ये वक्तव्य उनके सार्वजनिक सन्देशों, व्यक्तिगत टिप्पणियों और शिष्यों के साथ पत्र-व्यवहार से संकलित किये गये हैं। दो-तिहाई अंग्रेजी में लिखे गये थे, शेष फ्रेंच में। कुछ वक्तव्य केवल बोल कर दिये गये थे, जिनमें से अधिकतर अंग्रेजी में हैं। कुछ ध्वन्यांकित सन्देश हैं; कुछ अन्य माताजी के बोलते समय शिष्यों ने लिख लिये थे जिन पर प्रकाशनार्थ माताजी की स्वीकृति ले ली गयी थी। उन पर यह † चिह्न है।

इस भाग को विषय-वस्तु को ध्यान में रखते हुए १९ भागों में सजाया गया है, हर विभाग में कई उपविभाग हैं। उपविभागों में दिनांकित वक्तव्य क्रम से हैं, अदिनांकित विषयानुसार।

ध्यान रहे कि इनमें से अधिकतर वक्तव्य विशेष परिस्थितियों में विशेष व्यक्तियों को दिये गये थे। अतः उनमें दी गयी नसीहत या शिक्षा सब पर लागू नहीं भी हो सकती।

भाग दो में बत्तीस वार्ताएं हैं जो श्रीमातृवाणी के अन्य खण्डों में कहीं भी नहीं छपी हैं। पहली छः वार्ताएं १९५० की ध्वन्यांकित वार्ताएं हैं। इन वार्ताओं में तीन चौथाई वार्ताएं फ्रेंच में थीं।

विषय-सूची

भाग १ : पत्र, सन्देश और छोटे-छोटे लिखित वक्तव्य

भगवान् और विश्व ३
- विश्व : भगवान् की अभिव्यक्ति ३
- विश्व में भगवान् का कार्य-संचालन ५

प्रकृति और प्रकृति की शक्तियां ११

देवता, उच्चतर सत्ताएं और विरोधी शक्तियां १४
- देवता १४
- कृष्ण और राधा १५
- काली, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती १६
- अवतार १९
- उच्चतर सत्ताएं २०
- विरोधी शक्तियां २१

धर्म और गुह्यविद्या ३०
- धर्म ३०
- गुह्यविद्या ३४
- ज्योतिष ३७
- सामुद्रिक शास्त्र ३९
- संख्याएं ३९
- रंग ४१
- प्रतीक ४१

नैतिकता और युद्ध ४६
- नैतिकता ४६
- युद्ध और हिंसा ४७
- सुरक्षा और संरक्षण ५०

संपत्ति और सरकार ५३
- संपत्ति और अर्थशास्त्र ५३
- सरकार और राजनीति ५९
- मानव एकता ६४

आज का संसार ७३
अंधकार और प्रकाश ७५
भूत, वर्तमान और भविष्य ७७
भूत ७७
वर्तमान ८०
भविष्य ८१
प्रगति और पूर्णता ८३
प्रगति ८३
पूर्णता ८६
सफलता ८७
विजय ८९
रूपान्तर और अतिमानस ९२
रूपान्तर ९२
रूपान्तर और सत्ता के भाग ९६
अतिमानस ९९
धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति १०३
नयी चेतना ११५
अतिमानस और नयी सत्ता ११८
अमरता १२६
नयी सृष्टि १२८
मृत्यु और पुनर्जन्म १३०
वृद्धावस्था और मृत्यु १३०
पुनर्जन्म १३६
आत्महत्या १४०
नींद और स्वप्न १४३
नींद और विश्राम १४३
स्वप्न १४६
बीमारी और स्वास्थ्य १५०
बीमारी के आन्तरिक कारण १५१
भय और बीमारी १५४

बीमारी के बारे में चिंता और परेशानी १५६
गलत तरीके से सोचना और बीमारी १५९
बीमारी को जीतने का संकल्प १६१
कामनाओं का नियन्त्रण १६३
शान्ति और अचंचलता, श्रद्धा और समर्पण १६४
भागवत कृपा द्वारा रोग-मुक्ति १६७
चिकित्सक और दवाइयां १७१
आश्रम के चिकित्सा-विभागों के लिए सन्देश १७५
सामान्य १७७
सन्देश १८२
नव वर्ष पर प्रार्थनाएं १८२
दर्शन-सन्देश २०२
धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति के लिए सन्देश २०८
पॉण्डिचेरी में माताजी के प्रथम आगमन-दिवस के लिए सन्देश २०९
पॉण्डिचेरी में श्रीअरविन्द के आगमन-दिवस के लिए सन्देश २११
पूजा-सन्देश २१२
बड़े दिन के सन्देश २१६
जन्मदिन के सन्देश २२०
केन्द्रों और संस्थाओं को सन्देश २२४
विभागों और व्यापार के लिए सन्देश २२७
प्रकीर्ण सन्देश २२८
प्रार्थनाएं २३०
प्रार्थना और भगवान् को पुकारना २३०
प्रार्थनाएं २३२
साधना और जीवन २४८
तुम्हारा जीवन... २४८
परिवर्तन २४९
ठीक चीज करो २५१

ऊंचे उड़ो २५४
मनुष्य को भगवान् की सहायता २५५
सुन्दरता २५८
सामान्य २६०
व्यक्तिगत सलाहें २६२
संक्षिप्त उत्तर २६२
कुछ लम्बे पत्र २७२
फटकार २८२
व्यावहारिक बातें २९२
सामान्य २९२
पकाना और खाना २९९
आश्रम के पुस्तकालय से पुस्तकें लेना ३०२
चित्रकारी ३०४
माताजी की अनुभूतियां ३०९
अनुभूतियों का लेखन ३०९
शारीरिक चेतना की कुछ अनुभूतियां ३१०
शारीरिक चेतना की नयी अनुभूतियां ३१२

भाग २ : वार्तालाप

३० दिसम्बर, १९५० ३१९
नियति को बदलना ३१९
६ जनवरी, १९५१ ३२७
सर्वांगीण रूपान्तर ३२७
पूर्ण निष्कपटता ३३२
१८ जनवरी, १९५१ ३३७
चैत्य सत्ता, प्राण एवं भौतिक ३३७
लक्ष्य तक पहुंचने की विधियां ३३८
चैत्य सत्ता और आन्तरिक सत्य ३४०
२२ जनवरी, १९५१ ३४३
मन का कार्य ३४३

दूसरे के दृष्टिकोण को समझना	३४९
३० जनवरी, १९५१	३५२
श्रद्धा, निष्कपटता और समर्पण	३५२
अदृश्य जगत्	३५३
चैत्य और प्राणिक संवेग	३५७
१ फरवरी, १९५१	३६३
स्वप्न और नींद	३६३
१२ नवम्बर, १९५२	३७२
अन्तरात्मा के सोपान	३७२
५ फरवरी, १९५६	३७७
दु:ख-दर्द की दो श्रेणियां	३७७
१९५८ (१)	३७९
पिछले जन्मों की यादें	३७९
१९५८ (२)	३८३
आन्तरिक सिद्धि और बाहरी सिद्धि की कुंजी	३८३
३० मई, १९५८	३८४
भगवद्-विरोधी	३८४
१९ जुलाई, १९५८	३८६
फल खाना	३८६
२१ जुलाई, १९५८	३८९
शक्ति का अपव्यय मत करो	३८९
(जुलाई ?), १९५८	३९१
अनुभूति का मानसिक सूत्रीकरण	३९१
(जुलाई ?), १९५८	३९२
सौन्दर्य-बोध	३९२
१० अक्तूबर, १९५८	३९३
जड़-भौतिक में परम प्रभु की पूजा	३९३
४ नवम्बर, १९५८	३९४
देवता और उनके जगत्	३९४
८ नवम्बर, १९५८	४०१

५ नवम्बर, १९५८ की अनुभूति ४०१
१५ नवम्बर, १९५८ ४०७
१३ नवम्बर, १९५८ की अनुभूति ४०७
२२ नवम्बर, १९५८ ४१२
कर्म ४१२
जनवरी, १९६० ४१६
संतों के बारे में ४१६
तारीख के बिना : फरवरी १९६० से पहले ४१८
सच्चा कारण ४१८
४ जून, १९६० ४२०
अच्छी नींद ४२०
१८ जुलाई, १९६० ४२३
पुरानी वार्ताएं और अबकी स्थिति ४२३
१८ जुलाई, १९६१ ४२४
अतिमानसिक सृष्टि ४२५
३ अप्रैल, १९६२ ४३०
२ अप्रैल, १९६२ की रात की अनुभूति ४३०
१३ अप्रैल, १९६२ ४३३
१२ अप्रैल, १९६२ की रात की अनुभूति ४३३
७ सितम्बर, १९६३ ४३५
एक जड़वादी के साथ बातचीत ४३५
२४ दिसम्बर, १९६६ ४३९
सत्य को चुनना ४३९
११ मई, १९६७ ४४१
बिना शर्त समर्पण ४४१
१५ अगस्त, १९६७ ४४६
१५ अगस्त, १९६७ की अनुभूति ४४६
२५ मई, १९७० ४४८
राजनीति से ऊपर उठो ४४८

Do not take my words for a teaching. Always they are a force in action, uttered with a definite purpose, and they lose their true power when separated from that purpose.

मेरे वचनों को एक शिक्षा के रूप में न लो। वे हमेशा क्रियाशील शक्ति होते हैं जिन्हें एक निश्चित उद्देश्य के साथ कहा जाता है और उन्हें उस उद्देश्य से अलग कर दिया जाये तो वे अपनी सच्ची शक्ति खो बैठते हैं।

—श्रीमां

भाग १

पत्र, संदेश
और
छोटे-छोटे लिखित वक्तव्य

भगवान् और विश्व

विश्व : भगवान् की अभिव्यक्ति

वही, पूर्ण आत्मा, सबमें भरी है।
पूर्ण आत्मा सबको भरती है।
वही सबको **भरती** है।
वह कौन है? पूर्ण आत्मा।
वही, पूर्ण आत्मा सबमें भरी है।

१९५२

*

प्रभु ही हर चीज को सत्ता की गहराइयों से चलाते हैं, उनकी इच्छा निदेशन करती है, उनकी शक्ति कार्य करती है।

१८ सितम्बर, १९५४

*

हम भगवान् की सेवा में हैं, भगवान् ही निश्चय करते हैं, आदेश देते और शुरू करते हैं, निदेशन करते और कार्य सम्पादित करते हैं।

२५ दिसम्बर, १९५४

*

भगवान् को किसने बनाया?

स्वयं उन्होंने।

अगस्त, १९६६

*

विश्व की योजना बनाने में कितना समय लगा था? उसे क्रियान्वित करने वाला कौन था?

पहले से कुछ भी नहीं, सब कुछ तत्काल, सीधे और सहज, बिना किसी मध्यस्थ के। बहुधा मध्यस्थों के हस्तक्षेप ने मामलों को सरल बनाने की जगह ज्यादा पेचीदा ही बनाया है। सुनाने के लिए लम्बी कहानी है यह।

*

चेतना क्या है?

जब प्रभु स्वयं अपने बारे में सचेतन होते हैं तो जगत् की सृष्टि होती है।

चेतना वह श्वास है जो सबको जीवन देता है।

*

मधुर मां, कृपया मुझे 'चेतना' का अर्थ बतलाइये।

चेतना के बिना तुम्हें यह भी पता न होता कि तुम जीवित हो।

*

चेतना किसी चीज के बारे में तादात्म्य द्वारा अभिज्ञ होने की क्षमता है।

भागवत चेतना केवल अभिज्ञ ही नहीं होती बल्कि जानती और सम्पन्न करती है। उदाहरण के लिए किसी स्पन्दन के बारे में अभिज्ञ होने का मतलब यह नहीं है कि तुम उसके बारे में सब कुछ जानते हो।

*

भागवत चेतना में नीचे की छोटी-से-छोटी चीजें भी ऊपर की श्रेष्ठतम चीजों के साथ एक होती हैं।

३ जुलाई, १९५४

*

क्या भगवान् सभी चीजों में हैं, कूड़ेदानी में भी?

सारा विश्व भगवान् की अभिव्यक्ति है लेकिन ऐसी अभिव्यक्ति जो अपने मूल के बारे में सम्पूर्ण अचेतना से शुरू होती है और थोड़ा-थोड़ा करके

चेतना की ओर उठती है।

*

एक क्षण के लिए भी यह न भूलो कि यह सब स्वयं भगवान् ने अपने आपमें से बनाया है। वे केवल हर चीज में उपस्थित ही नहीं हैं अपितु स्वयं हर चीज हैं। भेद केवल अभिव्यंजना और अभिव्यक्ति में है।

अगर तुम यह भूल जाओ तो सब कुछ खो बैठोगे।†

*

विश्व के आश्चर्यों का कहीं अन्त नहीं है।

हम अपने छोटे-से अहंकार की सीमाओं से जितना अधिक मुक्त होते चलेंगे, उतना ही अधिक ये आश्चर्य अपने-आपको हमारे आगे प्रकट करेंगे।

*

प्रभु अपने विश्व को तभी अपने पूरे अधिकार में लेंगे जब विश्व स्वयं प्रभु बन जायेगा।

विश्व में भगवान् का कार्य-संचालन

विश्व एक ससीम समग्रता है लेकिन उसकी अन्तर्वस्तु असीम है। इस अनन्तता में जो परिवर्तन आते हैं वे पदार्थ पर भागवत तत्त्व की क्रिया के परिणामस्वरूप, मात्रा में गुण के प्रवेश और फैलाव द्वारा आते हैं। वह परिवर्तन निरन्तर उत्तरोत्तर विश्व की अन्तर्वस्तु में व्यवस्था और पुनर्व्यवस्था लाता है।

२४ मार्च, १९३२

*

हर क्षण विश्व उसकी समग्रता में और उसके हर भाग में सृष्ट किया जाता है।

*

विश्व में कोई दो संयोजन, कोई दो गतियां एक-सी नहीं हैं। किसी भी चीज की ठीक प्रतिकृति नहीं की जाती। सादृश्य होते हैं, साम्य होते हैं, परिवार होते हैं, गतियों के परिवार होते हैं जिन्हें स्पन्दनों के परिवार कह सकते हैं लेकिन कोई दो चीजें ऐसी नहीं हैं जो देश या काल में एकदम एक-सी हों। कोई चीज दोहरायी नहीं जाती अन्यथा अभिव्यक्ति न होगी, संभवन न होगा, एक ही वस्तु, केवल एक ही सृष्टि होगी।

अभिव्यक्ति ठीक यही विभिन्नता है, 'एक' ही अपने-आपको 'अनेकों' में, अनन्त रूप से खोलता जाता है।

*

भौतिक स्तर पर भगवान् अपने-आपको सौन्दर्य द्वारा, मानसिक स्तर पर ज्ञान द्वारा, प्राणिक स्तर पर शक्ति द्वारा और चैत्य स्तर पर प्रेम द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

जब हम पर्याप्त ऊपर उठ जाते हैं तो पता लगता है कि ये चारों पहलू एक ही चेतना में इकट्ठे हो जाते हैं जो प्रेम से भरपूर, प्रदीप्त, शक्तिशाली, सुन्दर, सभी को लिये हुए, सभी में व्याप्त होती है।

केवल वैश्व लीला की सन्तुष्टि के लिए ही यह चेतना स्वयं को विभिन्न दिशाओं या अभिव्यक्ति के भिन्न पहलुओं में विभक्त करती है।

*

यह जगत् एक गड़बड़झाला है जिसमें अंधकार और प्रकाश, मिथ्यात्व और सत्य, मृत्यु और जीवन, कुरूपता और सुन्दरता, घृणा और प्रेम आपस में इतने गुंथे हुए हैं कि एक से दूसरे को अलग पहचानना लगभग असम्भव है। और उन्हें सुलझाना और इस निर्दय संघर्ष जैसे भयंकर आलिंगन से छुड़ाना तो और भी अधिक कठिन है। यह और भी तीक्ष्ण हो जाता है क्योंकि वह परदे के पीछे छिपा है, विशेष रूप से मानव चेतना में जहां संघर्ष ज्ञान के लिए, शक्ति के लिए, विजय के लिए तीव्र व्यथा के एक ऐसे युद्ध का रूप ले लेता है जो अन्धकारपूर्ण और पीड़ादायक है। वह और भी ज्यादा नृशंस मालूम होता है क्योंकि वह निरर्थक लगता है। लेकिन उसका समाधान संवेदनों, संवेगों और विचारों से ऊपर, मन के

क्षेत्र के परे—भागवत चेतना में है।

२९ मार्च, १९३४

*

अभिव्यक्ति सभी कठिनाइयों पर विजय पा लेगी क्योंकि अभिव्यक्ति का अर्थ है सभी कठिनाइयों पर विजय।

*

एक भागवत चेतना यहां, धरती पर इन सब सत्ताओं द्वारा काम कर रही है। इन सभी अभिव्यक्तियों द्वारा अपना मार्ग तैयार कर रही है। आज के दिन यह पृथ्वी पर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक जोर से कार्यरत है।

२९ जनवरी, १९३५

*

मैं कहूंगी : धरती को इस बात का भान हो जाये कि भगवान् अभिव्यक्त हो रहे हैं।

८ अप्रैल, १९३५

*

ओह, हम सदा बदलते हुए ऊपरी दृश्यों को ही न देखा करें। हर चीज में और हर जगह केवल भगवान् की अपरिवर्तनशील एकता का ही मनन करें!

२९ सितम्बर, १९५४

*

अगर तुम बाहरी रूपों को केवल उनके अपने लिए, उन्हीं के अर्थ, केवल उनके रूप-रंग में न देखो बल्कि उन्हें एक अधिक गहरी, अधिक स्थायी सद्वस्तु की अभिव्यक्ति के रूप में देखो तो वे सब, और साथ ही सभी परिस्थितियां और घटनाएं उस शक्ति की प्रतीक बन जाती हैं जो उनके पीछे स्थित है और उन्हें अपनी अभिव्यक्ति के लिए काम में लाती है।

चेतना की एक अवस्था-विशेष में कोई भी परिस्थिति ऐसी नहीं होती,

कोई रूप, कोई क्रिया, कोई गति ऐसी नहीं होती जो ज्यादा गहरी या ज्यादा ऊंची, अधिक स्थायी, अधिक तात्त्विक और अधिक सत्य सद्वस्तु की अभिव्यक्ति न हो।

*

बाहरी रूप-रंग के पीछे एक सूक्ष्म सद्वस्तु है जो सत्य के अधिक निकट है। हम तुम्हें वही दिखलाने की कोशिश कर रहे हैं।

*

इस भ्रम के संसार को, इस निराशाजनक दुःस्वप्न को भगवान् ने अपनी परम सद्वस्तु प्रदान की है और जड़ द्रव्य के हर अणु में उनकी शाश्वतता का कुछ अंश है।

१४ नवम्बर, १९५४

*

क्या भगवान् के लिए जगत् की इस दुःखद अनेकता की रचना करने के लिए, अपने अकेले रहने के परम आनन्द का त्याग करना एक महान् बलिदान नहीं है?

*

बेचारा भगवान्! उस पर कितने बीभत्स कृत्यों का आरोप लगाया जाता है।

अगर ये आरोप सच्चे होते तो वह कैसा पिशाच होता, वही जो सचमुच सर्वकरुणामय है।

*

यह कहना गलत है कि यह जगत्, जैसा कि यह है, भगवान् की इच्छा के अनुसार बना है। अगर ऐसा होता तो,

(१) जगत् की समस्त दुष्टता भगवान् की दुष्टता होती।

(२) अपने-आपको या संसार को बदलने की कोई जरूरत न होती।

*

सब कुछ सोच-विचारकर, दुनिया जैसी है उसे देखकर और वह जैसी लगती है उसे लाइलाज मानकर, मानव-बुद्धि ने यही फैसला किया है कि यह जगत् भगवान् की एक भूल है और अभिव्यक्ति या सृष्टि निश्चय ही कामना का परिणाम है, अपने-आपको अभिव्यक्त करने की कामना, अपने-आपको जानने की कामना, अपने-आपका आनन्द लेने की कामना। अतः करने लायक बस एक ही चीज है, जितनी जल्दी हो सके, कामनाओं और उनके मारक परिणामों से चिपके रहने से इन्कार करके, इस भूल को समाप्त कर दिया जाये।

लेकिन परम प्रभु उत्तर देते हैं कि यह कॉमेडी अभी तक पूरी नहीं खेली गयी है, और फिर कहते हैं, "अन्तिम अंक के लिए प्रतीक्षा करो, तुम निःसन्देह, अपनी राय बदल लोगे।"

२३ जुलाई, १९५८

*

जब भौतिक जगत् भागवत भव्यता को अभिव्यक्त करेगा तब सब कुछ अद्‌भुत हो जायेगा।

*

जो अपने हृदय के अन्दर सुनना जानता है उससे सारी सृष्टि भगवान् की बातें करती है।

८ दिसम्बर, १९६५

*

'परम चेतना' को छोड़कर और कोई चेतना नहीं है।

'परम इच्छा' को छोड़कर और कोई इच्छा नहीं है।

'परम जीवन' को छोड़कर और कोई जीवन नहीं है।

'परम व्यक्तित्व' को छोड़कर और कोई व्यक्तित्व नहीं है, वही 'एक' और 'सर्व' है।

१७ दिसम्बर, १९६७

*

इस संसार में ऐसी कोई चीज नहीं है जो प्रकृति से परे के निदेशन के अधीन न हो—परन्तु अधिकतर मनुष्य इससे अनभिज्ञ हैं।

१८ सितम्बर, १९६७

*

भागवत उपस्थिति : वह अज्ञानी आंखों से अपने सदा-उपस्थित वैभव को छिपाती है।

*

तुम आनन्द की बात करते हो लेकिन जड़-भौतिक जगत् में आनन्द के जैसी कोई चीज है ही नहीं। फिर भी, आनन्द को अलग कर दो और सारी दुनिया ढह जायेगी।

प्रकृति और प्रकृति की शक्तियां

प्रकृति सुन्दर होने में खुश रहती है।

*

प्रकृति अपने सौन्दर्य में आनन्द लेती है।

*

सौन्दर्य प्रकृति का आनन्दपूर्ण निवेदन है।

*

प्रकृति की अन्तरात्मा सुन्दर रूप में खिलती है।

*

प्रकृति में सब कुछ सहज रूप से उदार है।

*

प्रचुरता : प्रकृति हमें एक साथ सब कुछ उदारता के साथ देती है और हमें प्रचुरता का आनन्द प्राप्त होता है।

*

प्रकृति में ज्योति के लिए सहज प्यास होती है।

*

प्रकृति जानती है कि एक दिन वह उपलब्धि प्राप्त करेगी।

*

मनुष्य ने ही प्रकृति को दुःखपूर्ण बना दिया है।

*

वैश्व प्रकृति के साथ घनिष्ठता : यह घनिष्ठता उन्हीं के लिए सम्भव है जिनकी चेतना विशाल है और जिनमें आकर्षण और विकर्षण नहीं है।

*

प्रकृति की तथाकथित शक्तियां ऐसी सत्ताओं के बाह्य क्रिया-कलाप के सिवा कुछ नहीं हैं जो मनुष्य की अपेक्षा आकार और शक्ति के हिसाब से बहुत बड़ी हैं।

*

(एक तूफान के बारे में जो पॉण्डिचेरी में १ मई, १९६६ को आया था।)

यह तूफान भू-प्रकृति की ओर से अपने कुछ सोये हुए मानव बालकों को जगाने के लिए एक धक्का था कि श्रीअरविन्द के इस कथन "भौतिक रूप में तुम कुछ भी नहीं हो, आध्यात्मिक रूप से सब कुछ हो" के आधार पर प्रगति करने की आवश्यकता है।

मई १९६६

*

(एक तूफान के बारे में जो पॉण्डिचेरी में नवम्बर १९६६ में आया)

प्रकृति अपने ही ढंग से सहयोग दे रही है। सब कुछ सहज सचाई और निष्कपटता के विकास के लिए है।

नवम्बर १९६६

*

तुम्हें चीजों को उसी तरह बढ़ने देना चाहिये जैसे प्रकृति में पौधे बढ़ते हैं। हम उनके समय से पहले उन पर बहुत कड़ाई या सीमा आरोपित करना चाहें तो वह उनके स्वाभाविक विकास में बाधक ही होगा जिसे देर या सवेर नष्ट करना ही होगा।

प्रकृतिस्थ भगवान् कोई चीज अन्तिम रूप से नहीं बनाते। हर चीज

अस्थायी है और साथ-ही-साथ उस समय की परिस्थितियों के अनुसार यथासम्भव पूर्ण होती है।

*

अपनी कार्यप्रणाली में हमें प्रकृति का दास न होना चाहिये। ये सब परीक्षण करने और बदलने, करने और बिगाड़ने, और फिर बार-बार करने, ऊर्जा, श्रम, सामग्री और धन का अपव्यय करने वाले तरीके, प्रकृति के तरीके हैं, भगवान् के तरीके नहीं। भागवत चेतना पहले कार्य के सत्य को देखती है और देखती है प्रदत्त परिस्थितियों के अनुसार करने का अच्छे-से-अच्छा तरीका। तब वह जो करती है वह अन्तिम होता है, जो हो चुका है उस पर वह कभी वापिस नहीं आती। वह आगे बढ़ती जाती है। सफलता और असफलता दोनों का ही एक नयी प्रगति के लिए, लक्ष्य की ओर एक और कदम के रूप में उपयोग करती है।

प्रगति करने के लिए प्रकृति नष्ट करती है जब कि भागवत चेतना वृद्धि को उत्तेजित करती और अन्ततः रूपान्तरित करती है।†

*

अगर तुम अपनी जिम्मेदारी का अनुभव नहीं करते और अगर तुम हमेशा सावधान और परिश्रमी नहीं रहते तो प्रकृति तुम्हारे साथ शरारत करेगी। अगर तुम प्रकृति की शरारत को बन्द करना चाहो तो तुम्हें अपना काम यथार्थता और जिम्मेदारी के भाव के साथ करना चाहिये। तुम्हें कुछ भी अधूरा न छोड़ना चाहिये। तुम्हें हमेशा सावधान और जाग्रत् रहना चाहिये तब तुम सुरक्षित रहोगे।†

देवता, उच्चतर सत्ताएं और विरोधी शक्तियां

देवता

जो अभी तक देवताओं पर विश्वास करते हैं वे, यदि उनकी इच्छा हो, निश्चय ही पूजा जारी रख सकते हैं। लेकिन उन्हें यह पता होना चाहिये कि इस मत और इस पूजा का श्रीअरविन्द की शिक्षा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, तथा अतिमानसिक सिद्धि के साथ भी कोई सम्बन्ध नहीं है।

१९६४

*

अगर धरती पर दिव्य सृष्टि को चरितार्थ करना है तो देवताओं को भी परम प्रभु के प्रति समर्पण करना होगा।

*

दीवाली, दशहरा, राखी पूनम आदि पर्वों का मूल और उनका महत्त्व क्या है?—कुछ पाश्चात्य पर्वों का भी? क्या देवता उन दिनों में मानव अभीप्सा का ज्यादा उत्तर देते हैं? तीसरे, इन पर्वों के आन्तरिक सत्य और बाह्य समारोहों के बीच क्या सम्बन्ध है? और इन पर्वों के प्रति हमारी क्या मनोवृत्ति होनी चाहिये?

मनुष्य पर्वों, त्योहारों को पसन्द करते हैं।

९ नवम्बर, १९६९

*

मैंने त्योहारों के महत्त्व के बारे में पूछते हुए आपको जो पत्र लिखा था उसके उत्तर में आपने लिखा है : "लोग त्योहार पसन्द करते हैं" तो क्या इसका मतलब यह है कि वे मनुष्यों की कल्पना और सनक हैं? क्या उनका कोई अर्थ और उपयोग नहीं होता?

त्योहार बने रहें इसलिए मनुष्य त्योहारों को न्यायसंगत ठहराने के लिए उन्हें अर्थ प्रदान करते हैं।

२१ नवम्बर, १९६१

कृष्ण और राधा

कृष्ण वैश्व भगवान् और अन्तरस्थ भगवान् दोनों का प्रतिनिधित्व करते हैं। हम उनसे अपनी सत्ता के अन्दर भी मिल सकते हैं और अभिव्यक्त जगत् में जो कुछ है उसमें भी।

और क्या तुम जानना चाहते हो कि उन्हें हमेशा बालक के रूप में ही क्यों चित्रित किया जाता है? इसलिए कि वे निरन्तर प्रगति करते रहते हैं। जिस हद तक संसार पूर्ण होता है, उनकी लीला भी पूर्ण होती है। बीते कल की लीला आगामी कल की लीला न रहेगी। उनकी लीला तब तक अधिकाधिक सामञ्जस्यपूर्ण, सौम्य और आनन्दपूर्ण होती जायेगी, जब तक कि संसार उसे उत्तर देने और भगवान् के साथ उसका रस लेने योग्य नहीं हो जाता।

*

कृष्ण की लीला : रूप रंगों के पीछे छिपी प्रगति की शक्ति।

*

जड़-भौतिक में कृष्ण की लीला : सुन्दरता, प्रेम और आनन्द साथी हैं, यह लीला तुम्हें विस्तृत करती और तुम्हारी प्रगति करवाती है।

*

भौतिक में कृष्ण की लीला : धरती पर अवतार का शासन यानी नये दिव्य जगत् की उपलब्धि।

*

क्या आप मुझे यह बतला सकती हैं कि राधा का अस्तित्व था या नहीं, यह प्रमाणित करने के लिए पोथियों-पर-पोथियां लिखी जा रही हैं कि उनका अस्तित्व नहीं था।

निश्चय ही राधा जीवित थीं और अब भी जीवित हैं।

*

राधा की चेतना भगवान् के साथ पूर्ण आसक्ति का प्रतीक है।

काली, महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती

जब लोग मेरे आगे आपके विरुद्ध बोलते हैं तो मुझे ऐसा लगता है कि मेरे अन्दर अनेक जिह्वाओंवाली ज्वाला उठ रही है और सामने खड़ा आदमी नरम पड़ जाता है।

तुम काली की शक्ति का आह्वान करते होगे।

*

'क' ने श्रीअरविन्द के बारे में जो पत्र लिखा है उसके गंवारूपन और बेमुरव्वती के बारे में मेरी जो प्रतिक्रिया हुई उसके सम्बन्ध में आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता हूं। मुझे याद है जब कई वर्ष पहले मेरी एक मित्र आप दोनों के बारे में अभद्रता के साथ बोली थी तो मैंने तुरत मौखिक रूप से ही उसकी बोलती बन्द कर दी थी, लेकिन मेरे अन्दर क्रोधावेश जलता रहा। वह मेरे सीने में आग की तलवार की तरह था जो घंटों वार करती रही। मेरा मन उसे केवल ठीक दिशा दे सकता था पर प्रहार में उसका कोई हाथ न था। अगले दिन उन महिला को बड़े जोर का अतिसार हो गया।

कल 'क' का पत्र पढ़कर मेरे सीने से फिर से वैसी ही लपट निकलने लगी। मुझे इस लपट को 'क' की पत्रिका की ओर भेजने में रत्ती भर भी संकोच न था, जिससे उसका भविष्य राख हो जाये।

यद्यपि मैंने 'ग' पर भी तलवार चलायी मानों उसे समाप्त कर देना चाहता हूं लेकिन मैंने उस आग्नेय हत्याकाण्ड को बढ़ावा नहीं दिया। मुझे सन्देह हो रहा है कि क्या मेरा किसी पर इस तरह आघात करना ठीक है। कई बार मैंने सोचा है कि मैंने बिलकुल न्यायसंगत काम किया है। कभी मुझे ऐसा लगा कि मुझे अपनी आग की तलवार आपको और श्रीअरविन्द को भेंट कर देनी चाहिये और अपने-आप एकाग्र होकर इसे 'क' की ओर मोड़ने की जगह आप दोनों के हाथों में छोड़ देना चाहिये। अगर मुझे आपसे पथ-प्रदर्शन के कुछ शब्द मिल जायें तो मैं कृतज्ञ होऊंगा। कृपया यह ख्याल रखिये कि मैं केवल क्रोध के आवेग की बात नहीं कर रहा। किसी ऐसी शक्ति का अनुभव होता है जो नष्ट करना चाहती है और जिसे लगता है कि उसमें नष्ट करने की सामर्थ्य है। निश्चय ही मैं कभी उसका उपयोग किसी निजी उद्देश्य के लिए करने की न सोचूंगा।

स्पष्ट है कि यह काली की शक्ति की क्रिया है जिसने तुम्हारे अन्दर यह आग सुलगायी है, उसकी क्रिया में कोई गलती नहीं है। यह तुम्हारा निजी क्रोध नहीं है, एक दिव्य शक्ति का प्रकोप है और उसे काम करने देना चाहिये। वस्तुतः, मेरा ख्याल है कि तुम चाहो भी तो उसे जलने से नहीं रोक सकते। इस आदमी ने उसे अपनी ओर खींचा है और जो हो रहा है उसमें कोई भूल नहीं है। इसके लिए वह स्वयं जिम्मेदार है। हां, इसका उपयोग किसी निजी उद्देश्य या स्वार्थपूर्ण ढंग से नहीं होना चाहिये।

८ अक्तूबर, १९५०

*

मां के सभी रूपों में से काली सबसे अधिक शक्ति के साथ स्पन्दनशील और सक्रिय प्रेम को प्रकट करती हैं और अपने कभी-कभी भयानक रूप के बावजूद वे अपने अन्दर सर्वशक्तिमान् प्रेम की स्वर्णिम भव्यता वहन करती हैं।

२४ फरवरी, १९६५

*

काली कभी-कदास ही मन में कार्य करती हैं। उच्चतर क्षेत्रों में वे प्रेम की शक्ति हैं जो प्रगति और रूपान्तर की ओर धकेलती है। प्राण में वे मिथ्यात्व, आडम्बर और दुर्भावना के विनाश की शक्ति हैं।

जो कुछ शुभ, सत्यमय और प्रगतिशील हो उसे वे कभी नष्ट नहीं करतीं, इसके विपरीत वे उसकी रक्षा करती और उसे बनाये रखती हैं।

५ जून, १९६५

*

सभी विनाशों के पीछे, चाहे वे प्रकृति के असीम विनाश हों, जैसे भूकम्प, ज्वालामुखी के विस्फोट, तूफान, बाढ़ आदि या क्रूरतापूर्ण मानव-विनाश हों, जैसे युद्ध, क्रान्तियां, विद्रोह आदि, मैं काली की शक्ति देखती हूं जो पार्थिव वातावरण में रूपान्तर की प्रगति को तेज करने के लिए काम कर रही है।

वह सब जो केवल तत्त्वतः ही नहीं, बल्कि चरितार्थता में भी दिव्य है वह इन विनाशों से ऊपर और उनसे अछूता रहता है। इस तरह विनाश का परिमाण अपूर्णता का परिमाण बताता है।

इन विनाशों के बार-बार आने से बचने के लिए सच्चा तरीका है उनसे मिलने वाला पाठ सीखना और आवश्यक प्रगति करना।

*

महालक्ष्मी की पूर्ण सम्पदा : क्रियाशीलता के सभी क्षेत्रों में भावों और कार्यों की सम्पदा—बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक और भौतिक।

*

महासरस्वती का उद्देश्य है संसार को पूर्णता की आवश्यकता का अहसास कराना, लेकिन स्वयं पूर्णता केवल परम प्रभु की चीज है। और कोई जान भी नहीं सकता कि वह क्या है।

*

माताजी, कृपया श्रीअरविन्द द्वारा 'द मदर' पुस्तक में वर्णित माता

के चार स्वरूपों को स्पष्टतया समझने में मेरी मदद कीजिये।

अधिमानस से ऊपर, उच्चतर लोकों में मां के स्वरूपों की आकृतियां अत्यन्त सरल हैं, उन आकृतियों में अनेक अंग नहीं होते।

सभी विस्तार और जटिलताएं ऐसे रूप हैं जिन्हें मनुष्य ने अदृश्य गुणों को प्रतीकात्मक अर्थ देने के लिए जोड़ दिया है।

२१ सितम्बर, १९६७

अवतार

अवतार : धरती पर शरीर में अभिव्यक्त परम पुरुष।

*

अवतार : किसी निश्चित उद्देश्य के लिए पार्थिव शरीर में अभिव्यक्त परम पुरुष—साधारणतः मानव शरीर में।

*

सर्वशक्तिमान् होने के नाते भगवान् धरती पर उतरने का झंझट किये बिना ही लोगों को ऊपर उठा सकते हैं। अवतारवाद का तभी कुछ अर्थ होता है जब वह सांसारिक व्यवस्था का एक अंग हो, भगवान् मानवजाति का भार अपने ऊपर लें और उसके लिए रास्ता खोलें।

६ मार्च, १९३५

*

मनुष्य धरती पर भगवान् की उपस्थिति को इसी शर्त पर सहते हैं कि भगवान् यहां पर कष्ट भोगें।

*

केवल तभी जब मनुष्य ऐकान्तिक रूप से, भगवान् पर निर्भर होंगे,

और किसी पर नहीं, अवतार के लिए यह जरूरी न रहेगा कि वह उनके लिए जान दे।

२ अगस्त, १९५२

*

"अवतार" का मुख्य उद्देश्य मनुष्य के आगे यह ठोस रूप से प्रमाणित करना है कि भगवान् धरती पर प्रकट हो सकते हैं।

१२ जुलाई, १९५४

*

जब तक कि धरती पर भगवान् की उपलब्धि तुम्हारा एकमात्र लक्ष्य न हो तब तक भगवान् के सन्देशवाहकों के बहुत नजदीक न आने में पूरी सावधानी बरतो, क्योंकि उनकी क्रिया तूफान जैसी होती है जो सभी स्थापित चीजों को उड़ा देता है।

७ मई, १९५७

उच्चतर सत्ताएं

मानवजाति उच्चतर सत्ताओं की उपस्थिति को इसी शर्त पर सहती और स्वीकार करती है कि वे उसकी सेवा में रहें।

४ फरवरी, १९६५

*

साधारण मनुष्य के लिए सन्त एक प्रकार का बुद्धिमानी के संगीत का डब्बा होता है जिसमें बस प्रश्न का एक पैसा डालो और यन्त्रवत् उत्तर पा लो।

*

लोग किसी देवता को तब स्वीकारते हैं जब उसके सिर के पीछे

प्रकाश का घेरा हो, किसी राजा को तब स्वीकारते हैं जब उसके हाथ में राजदण्ड हो।

*

जो व्यक्ति अहंकारपूर्ण न रहे उसका इस जगत् में कोई व्यक्तिगत स्थान नहीं रहता। कहने का आशय यह है कि उसकी निर्वैयक्तिकता के ठीक अनुपात में यह व्यक्तिगत जगत् उसके साथ कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं रखता। उसका जगत् के साथ, सत्ताओं और वस्तुओं के साथ सम्बन्ध होता है लेकिन वैसा ही जैसा वैश्व और निर्वैयक्तिक शक्तियों का होता है। उन्हीं की भांति वह सबमें क्रिया करता है, सबको अनुप्राणित करता है, सबको सहारा देता है लेकिन सामान्य रूप में वह जिन्हें अनुप्राणित करता है, सहारा देता है और क्रियाशील बनाता है उन सबके द्वारा पूरी तरह उपेक्षित रहता है।

यह बात नहीं है कि वह संसार को अब और नहीं चाहता, बल्कि संसार उसे अब और नहीं चाहता, यहां तक कि वह इस ओर ध्यान भी नहीं देता कि उसका अस्तित्व है।

विरोधी शक्तियां

हर बार जब हम आध्यात्मिक प्रगति में एक निर्णायक पग उठाते हैं तो भगवान् के अदृश्य शत्रु हमेशा बदला लेने की कोशिश करते हैं। जब वे अन्तरात्मा को नुकसान नहीं पहुंचा सकते तो शरीर पर प्रहार करते हैं। लेकिन उनके सारे प्रयास व्यर्थ हैं और अन्त में वे पराजित होंगे क्योंकि भागवत कृपा हमारे साथ है।

*

हमें विरोधी शक्तियों को अपनी शरारत करने का अवसर कभी न देना चाहिये—वे जरा-सी अचेतनता का भी लाभ उठाती हैं।

*

ईर्ष्या, स्वार्थपूर्ण असन्तोष और आहत दर्प तुम्हें भागवत संरक्षण से बाहर खींचकर चेतना के द्वार विरोधी आक्रमणों के लिए खोल देते हैं।

इन भ्रान्तिपूर्ण गतिविधियों को अपने अन्दर होने देने से इन्कार करके ही तुम विपरीत प्रभाव और उसके विपत्तिजनक परिणामों से छुटकारा पाने की आशा कर सकते हो।

*

महान् अज्ञान व्यक्ति से अन्धकार और विनाश की शक्तियों के सुझावों को उत्तर दिलवाता है। भगवान् की अपार दया के प्रति सच्ची कृतज्ञता के भाव द्वारा आदमी ऐसे संकटों से बच सकता है।

*

ये सुझाव क्या हैं जो कभी-कभी मेरे ऊपर आक्रमण करते हैं? क्या वे बाहर से नहीं आते?

हां, निश्चय ही वे बाहर से आते हैं, किसी प्राणिक सत्ता से जो उन्हें तुम्हारे पास भेजने में, यह देखने में कि तुम उन्हें कैसे लेते हो, मजा लेती है। जब मैंने तुम्हें फूल दिया था तो मैंने इस सुझाव को गुजरते हुए देखा था। मैंने उसे कोई महत्त्व नहीं दिया क्योंकि वह निरी मूर्खता थी—लेकिन मैं देखती हूं कि तुमने उसे ग्रहण कर लिया।

२८ अप्रैल, १९३४

*

महाकाली का प्रकोप समय-समय पर प्रकट होता है और ठीक क्रिया भी करता है लेकिन उसका प्रभाव टिकता नहीं क्योंकि जो लोग विरोधी शक्तियों को प्रत्युत्तर देते हैं वे सचमुच उनसे पिंड नहीं छुड़ाना चाहते—वे सच्चे, निष्कपट नहीं होते।

१ जुलाई, १९३५

*

माताजी, आक्रमण अनगिनत हैं और कल मैंने बहुत दुर्बलता का अनुभव किया।

अगर तुम आक्रमणों के बारे में कम सोचो तो वे इतने अधिक न होंगे।

७ अक्तूबर, १९३५

*

हमेशा विरोधी शक्तियों के बारे में सोचते रहना और उनसे डरना बहुत भयानक दुर्बलता है।

*

जैसा कि तुम कहते हो, स्वयं विरोधी शक्ति को जीतना और नष्ट करना होगा अन्यथा उसे ऐसे लोग हमेशा मिलते रहेंगे जो उसे अभिव्यक्त करें।

२८ मई, १९३६

*

विरोधी शक्तियों को संसार में इसीलिए सहा जाता है क्योंकि वे मनुष्य की सचाई की परख करती हैं। जिस दिन मनुष्य पूरी तरह सच्चा हो जायेगा वे चली जायेंगी, क्योंकि तब उनके अस्तित्व का कोई कारण न रह जायेगा।

१३ मार्च, १९४९

*

आज रात फिर से विरोधी शक्तियों का जोरदार आक्रमण हुआ। मेरी नींद बिलकुल गायब हो गयी। मैं पूरी सचाई के साथ आपसे प्रार्थना करता हूं कि मुझे इन कर्कशाओं के चंगुल से बचाइये। वे मेरे पेट, जंघाओं और घुटनों पर आक्रमण करती हैं। कृपया मुझे सलाह दीजिये जिसके लिए आप मुझे वचन दे चुकी हैं ताकि मैं हमेशा के लिए इनसे पिंड छुड़ा सकूं।

ये विरोधी शक्तियां काम-वासना से सम्बन्ध रखती हैं। वे उस ऊर्जा पर जीती हैं जो इस क्रिया में नष्ट होती है। एक विचार, एक मानसिक या प्राणिक कामना भी इसके लिए पर्याप्त है कि वे आकर वातावरण में बस जायें। इस तरह स्वयं मन के अन्दर ही शुद्धि होनी चाहिये।

मेरे आशीर्वाद।

१२ सितम्बर, १९५०

*

माताजी, कभी-कभी मैं एक अजीब चीज देखता हूं। मैं ऐसा क्षेत्र देखता हूं जहां मरी हुई मक्खियां जाती हैं। उनकी अवस्था बहुत दयनीय होती है। वे शिकायत करती हैं कि मैं इतनी सारी मक्खियों को मारता हूं।

ये अन्तर्दर्शन कल्पनाएं हैं जो सम्भवतः पुराने विचार-संस्कारों से आती हैं। मक्खियों के बारे में भावुक होने की जरूरत नहीं। ये ऐसी सत्ताएं हैं जिन्हें विरोधी शक्तियों ने रचा है और उन्हें धरती से गायब हो जाना चाहिये।

*

पार्थिव व्यवस्था में, हम कह सकते हैं कि कीड़े-मकोड़ों का जगत् प्राणिक जगत् में सीधा वैरी स्रष्टाओं का काम है। वे विरोधी और प्रायः पैशाचिक विचारों और कल्पनाओं के परिणाम हैं। वे मनुष्य के नहीं भगवान् के कार्य को निशाना बनाते हैं। प्रायः जो कीड़ा बिलकुल निर्दोष दीखता है वह अशुभ और दुर्भावनापूर्ण इच्छा का सन्देशवाहक होता है। उस हालत में तुम्हें उसके साथ सख्ती से व्यवहार करना चाहिये।

प्रेम सब कुछ सह सकता है—परन्तु क्रिया में भगवान् चुनते और निर्णय करते हैं। फिर भी, उनके ध्वंस-कार्य में भी शुद्ध प्रेम, उत्कृष्ट प्रेम चमकता है।

१४ अक्तूबर, १९५५

*

जब विरोधी शक्तियों के साथ ठीक तरह से व्यवहार किया जाता है, तो वह सब जो कुरूप और मिथ्या होता है केवल सत्य और सुन्दर के लिए स्थान छोड़कर गायब हो जाता है।

*

तुम्हारे अहंकार की आदत है कि अगर जरा-सी चीज भी उसे नाखुश कर दे तो वह तुम्हारी सत्ता के दरवाजे अक्खड़ और धृष्ट अविश्वास वाली एक अशुभ प्रेतात्मा के लिए खोल देता है। वह सभी पवित्र और सुन्दर चीजों पर कीचड़ और गन्दगी फेंकने में अपना समय बिताती है, विशेषकर तुम्हारी अन्तरात्मा की अभीप्सा और भागवत कृपा से मिलने वाली सहायता पर।

अगर इसे जारी रहने दिया जाये तो इसका अन्त अनर्थ और विध्वंस में होना निश्चित है। इसे समाप्त करने के लिए सख्ती से कदम उठाने पड़ेंगे और उसके लिए तुम्हारी अन्तरात्मा के सहयोग की जरूरत है। उसे जाग उठना चाहिये और दृढ़ निश्चय के साथ इस अशुभ प्रेतात्मा के लिए द्वार बन्द करके अहंकार के विरुद्ध लड़ाई में भाग लेना चाहिये।

९ अप्रैल, १९५८

*

आखिर स्वाधीनता क्या है? मनमानी करते चले जाना? लेकिन क्या तुम जानते हो कि यह "तुम" है कौन? क्या तुम जानते हो कि तुम्हारी अपनी इच्छा क्या है? क्या तुम जानते हो कि क्या तुम्हारे अन्दर से आता है और क्या कहीं और से? अगर तुम्हारे अन्दर प्रबल इच्छा-शक्ति होती तो मैं तुम्हें काम करने देती। लेकिन बात ऐसी नहीं है। केवल आवेग तुम्हें नचाते हैं और वे भी तुम्हारे अपने नहीं होते। वे बाहर से आते हैं और तुमसे सब तरह की बेहूदा चीजें करवाते हैं। तुम राक्षसों के हाथों में जा गिरते हो। पहले वे तुमसे बेहूदा चीजें करवाते हैं, फिर ऊपर से हंसते हैं। अगर तुम्हारे अन्दर प्रबल इच्छा-शक्ति हो, अगर तुम्हारी इच्छा-शक्ति, तुम्हारे आवेश और बाकी सब, चैत्य के चारों ओर संकेन्द्रित हों तब, और तभी

तुम्हें आजादी और स्वाधीनता का कुछ स्वाद मिल सकता है अन्यथा तुम गुलाम होते हो।†

*

अगर तुम भगवान् और उन्हें प्रकट करने वाले गुरु के आज्ञाकारी और समर्पित सेवक होने से इन्कार करते हो तो इसका अर्थ है कि तुम हमेशा अपने अहंकार के, अपने दर्प, अपनी धृष्ट महत्त्वाकांक्षाओं के गुलाम रहोगे। तुम राक्षसों के हाथ में खिलौना बने रहोगे जो तुम्हारे ऊपर कब्जा करने के प्रयास में तुम्हें चमक-दमक वाले चित्रों से लुभाते हैं—वे हमेशा असफल नहीं होते।

*

अगर तुम समझ पाते और ठीक प्रतिक्रिया करते तो तुम इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते और केवल इस विशेष कठिनाई से ही नहीं बल्कि सम्भवतः इस विरोधी प्रभाव से ही पूरी तरह छुटकारा पा लेते। लेकिन तुम असफल रहे और उसके अधिकार में आ गये। मेरे करने के लिए बस एक ही चीज बच रही थी, वह यह कि मैं तुम्हारे अन्दर शुद्ध प्रकाश की, पवित्रीकरण के श्वेत प्रकाश की बाढ़ ला देती और तुम्हारे अन्दर से घुसपैठियों को खदेड़ देती। शायद तुमने इसे हमारे सम्बन्ध को काटना, मेरे और तुम्हारे बीच अलग करने वाली दीवार मान लिया। ऐसी कोई चीज न थी। मैं हमेशा की तरह भेदती हुई तुम्हारे अन्दर थी लेकिन थी इस परम पवित्रता के रूप में जो उन सब चीजों के लिए बिलकुल विजातीय है जो भगवान् के विरुद्ध हैं, इतना ही नहीं, समस्त सामान्य मानव गतिविधियों के लिए भी।

यह विरोधी सत्ता केवल प्राणिक नहीं है। यह मानसिक भी है और अपनी कामनाओं का कुछ ऐसे युक्तियुक्त सिद्धान्तों द्वारा समर्थन करती है जो अपनी कठोरता के कारण बिल्कुल मूर्खतापूर्ण बन जाते हैं। जब यह चीज तुम्हें पकड़ती है तो ऐसा लगता है कि तुम अपनी सारी सामान्य बुद्धि और प्रारम्भिक समझ भी खो बैठते हो।

कोई दीवार बिलकुल नहीं है, केवल शुद्ध प्रकाश, पवित्रीकरण की

श्वेत ज्वाला पूरी तरह अन्दर भेदती हुई, बाहर से अन्दर और अन्दर से बाहर की ओर भेदती हुई।

मैं अब तुम्हें बतला सकती हूं कि क्या हुआ था क्योंकि कुछ सम्भावना है कि तुम समझ सकोगे।

*

(किसी साधक की दुर्घटना के बारे में)

मैंने जो कुछ कहा था उसका यह एक दुःखद परन्तु ज्वलन्त उदाहरण है।

यह मामला स्पष्ट है। किसी अहंकारपूर्ण कारण से उसने जितना वह कर सकता था उससे ज्यादा करने की कोशिश की।

अगर वर्ष *अच्छा* होता तो वह सफल हो सकता था।

साधारण या मध्यम वर्ष में वह सफल तो न होता पर स्वयं उसके लिए या औरों के लिए दुष्परिणाम भी न आते।

चूंकि यह वर्ष भयंकर रूप से बुरा है इसलिए परिणाम पूरे जोश से आये हैं। अब मैं बस यही कर सकती हूं कि इस स्थिति का अच्छे-से-अच्छा उपयोग करूं; लेकिन यह एक बड़ा संग्राम बन गया है।

जब मैंने कहा था तो मेरा यही मतलब था लेकिन बहुत कम लोग 'सावधान रहो' का अर्थ समझ पाये थे। मेरा मतलब था "तुम जितना अच्छे-से-अच्छा कर सकते हो करो और यथासम्भव कोई आध्यात्मिक भूल न करो।" इसके विपरीत अधिकतर लोग डरने लगे और यह अपने-आप में ही बहुत बड़ी आध्यात्मिक भूल थी। अधिक जागरूक और अधिक वफादार होने की जगह अधिकतर लोगों ने तुरन्त वैरी सुझावों के लिए द्वार खोल दिये और स्थिति को ज्यादा खराब बना दिया। कुछ तो इस हद तक गये कि यह कहने के लिए वे मुझे दोष देने लगे। वे यह नहीं समझ पाये कि अगर मैं यहां के लोगों को सावधान नहीं कर सकती और उन्हें उचित वृत्ति में दृढ़ रहने की सलाह नहीं दे सकती तो इसका अर्थ यह है कि वे सच्चे साधक नहीं हैं और उनकी वृत्ति में निष्कपटता नहीं है।

अपनी बात को अधिक स्पष्ट करने के लिए मैंने जो कहा था उसे

फिर से दोहराती हूं : इस तरह के वर्ष में, जब विरोधी शक्तियों ने अपनी पूरी क्षमता के साथ आक्रमण करने का निश्चय कर लिया है, जिन लोगों ने भागवत उपलब्धि के लिए लड़ने का निश्चय कर लिया है उनसे आशा की जाती है कि वे सावधानी के साथ समस्त भय को दूर रखें।

जब मैं वर्ष के आरम्भ में बोली थी तो मैंने विशेष रूप से जागरूक रहने की आवश्यकता पर बल दिया था क्योंकि जब बुरा समय हो उस समय आदमी जो भी भूल करे उसके तुरन्त पूरे परिणाम आते हैं। विरोधी आक्रमण की तीव्रता भागवत कृपा के कार्य में बाधा देती है। श्रद्धा अधिक पूर्ण होनी चाहिये, जागरूकता अधिक निरन्तर और भगवान् पर भरोसा अधिक निरपेक्ष।

१९५५

*

रही बात तुम्हारे ऊपर की ओर खुलने की—तो किसी चीज से न डरो, सब कुछ तुम्हारी सचाई पर निर्भर है। अगर तुम एकमात्र भगवान् को ही चाहते हो, कोई निजी लाभ नहीं चाहते तो एकमात्र भगवान् ही तुम्हारी पुकार का उत्तर देंगे, विरोधी उत्तरों का खतरा तभी होता है जब तुम्हारा उद्देश्य अहंकारपूर्ण हो।

मेरे आशीर्वाद सहित।

५ सितम्बर, १९६४

*

आज सवेरे तीन बजे के लगभग, थकी हुई, कुछ उत्तेजित अवस्था में मैंने आपको बुलाया। कुछ क्षणों के बाद, तीन बार मुझे ऐसा लगा कि कोई प्रबल शक्ति मुझे अशक्त और संस्तब्ध किये दे रही है और मुझे निश्चेतना में धंसा रही है। मैंने इसके विरुद्ध बहुत संघर्ष किया क्योंकि मुझे ऐसा लगा कि विरोधी शक्ति मेरे सूक्ष्म शरीर को ले जाना चाहती है। तीसरी बार जब मेरी एक आंख खुली तो मैंने एक लम्बे आदमी के नीले चोगे का कुछ सिरा देखा। यह आदमी

मुझे ले जाने के लिए प्रतीक्षा कर रहा था। ऐसा लगा कि 'क' से निकली हुई एक सत्ता उसके साथ थी।

यह कैसी बात है माताजी कि आपको बुलाने के बाद भी मुझे ऐसी अनुभूति हुई?

यह अपने-आपको कई गुह्य शक्तियों के प्रभाव तले रखने का नुकसान है।

पिछले जमाने में, बिना कारण यह नहीं कहा जाता था कि बड़ी सावधानी से एक आध्यात्मिक गुरु चुन लो और औरों से न मिलने की सावधानी बरतो ताकि प्रभावों के घालमेल से बचे रहो जो गम्भीर नुकसान पहुंचा सकता है। तथाकथित आधुनिक बुद्धिमत्ता, जो अज्ञान से पैदा होती है, सब प्रकार के प्रभावों की ओर खुली रहती है जो कभी-कभी परस्पर विरोधी होते हैं और परिणाम होता है महती अस्तव्यस्तता।

अब केवल एक ही समाधान है, सभी मानव प्रतिरूपों के परे जाकर भरसक सचाई के साथ सीधे परम के पास जाओ, और... परिणाम की प्रतीक्षा करो।

आशीर्वाद।

२५ मार्च, १९७०

धर्म[1] और गुह्यविद्या

धर्म

भगवान् अपने-आपको अपनी समस्त सृष्टि को देते हैं। किसी एक धर्म के पास उनकी कृपा का एकाधिकार नहीं है।

*

एक-दूसरे का बहिष्कार करने की जगह, धर्मों को एक-दूसरे को पूरा करना चाहिये।

*

आध्यात्मिक भावपूजा, भक्ति और निवेदन के धार्मिक भाव के विपरीत नहीं है। धर्म में गलती है मन की कट्टरता जो किसी एक सूत्र को ऐकान्तिक सत्य मानकर उससे चिपकी रहती है। तुम्हें हमेशा याद रखना चाहिये कि सूत्र केवल सत्य की मानसिक अभिव्यक्ति होते हैं और इस सत्य को हमेशा बहुत-से दूसरे तरीकों से भी अभिव्यक्त किया जा सकता है।

६ *दिसम्बर*, १९६४

*

तुम श्रीअरविन्द पर अपनी श्रद्धा अमुक शब्दों में अभिव्यक्त करते हो और तुम्हारे लिए ये ही इस श्रद्धा की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति हैं। यह बिलकुल ठीक है। लेकिन अगर तुम ऐसा मानते हो कि श्रीअरविन्द क्या हैं, इसे अभिव्यक्त करने के लिए केवल ये ही शब्द ठीक हैं तो तुम मतान्ध बन जाते हो और एक धर्म शुरू करने के लिए तैयार होते हो।

५ *मार्च*, १९६५

*

[1] यहां धर्म शब्द का उपयोग रिलीजन के लिए किया गया है।—अनु०

कड़े स्वर में :

"श्रीमतीजी, आप वचन दे रही हैं।"

बहुत शान्ति के साथ :

"मैं जानती हूं महाशय, जब मैं वचन देती हूं तो उसका पालन करती हूं। लेकिन मेरे लिए इन चीजों का बहुत महत्त्व नहीं है। मेरा किसी धर्म के साथ लगाव नहीं है और जब लगाव न हो तो हटाव भी नहीं होता। मेरे लिए सभी धर्म आध्यात्मिक जीवन के बहुत ज्यादा मानवीय रूप हैं। हर एक एकमेव शाश्वत सत्य के एक पक्ष को प्रकट करता है लेकिन अन्य पक्षों को अलग करके वह उसे विकृत और छोटा कर देता है। किसी को यह अधिकार नहीं है कि अपने-आपको एकमात्र सत्य कहे, उसी तरह किसी को अधिकार नहीं है कि दूसरों के अन्दर निहित सत्य से इन्कार करे। और वे सब मिलकर भी परम सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त न होंगे क्योंकि वह हर एक के अन्दर उपस्थित होते हुए भी समस्त अभिव्यक्ति के परे है।"

शुष्क लहजे में :

"श्रीमतीजी, मुझे खेद है, लेकिन इस क्षेत्र में मैं आपका अनुसरण नहीं कर सकता।"

मुस्कुराते हुए शान्ति से :

"मैं यह भलीभांति जानती हूं महाशय, मैंने आपसे यह सब केवल यह स्पष्ट करने के लिए कहा कि आप मुझसे जिस वचन की मांग कर रहे थे, उसे मैंने गम्भीरता से क्यों नहीं लिया।"

*

लोग पूजा क्यों करना चाहते हैं?

होना, पूजा करने से कहीं अधिक अच्छा है।

बदलने में आनाकानी ही पूजा करवाती है।

२४ जून, १९६९

*

आदमी पूजा करने से इसी शर्त पर अलग रह सकता है कि वह

बदले। लेकिन बहुत-से ऐसे हैं जो न तो बदलना चाहते हैं न पूजा करना!

जून १९६९

*

(धर्मों के बारे में अपनाने लायक मनोवृत्ति)

सभी पूजा करने वालों के प्रति हितैषितापूर्ण सद्‌भावना।

सभी धर्मों के प्रति प्रबुद्ध उदासीनता।

सभी धर्म उस एकमेव सत्य के आंशिक सादृश्य हैं जो उनसे बहुत ऊपर है।

अप्रैल १९६९

*

सभी पूजा करने वालों के प्रति हितैषितापूर्ण सद्‌भावना।

सभी धर्मों के प्रति प्रबुद्ध उदासीनता।

रही बात अधिमानस की सत्ताओं के साथ सम्बन्ध की, अगर पहले से ही तुम्हारा सम्बन्ध है तो, हर एक का अपना ही समाधान होना चाहिये।

*

लोग धर्म के साथ क्यों चिपटे रहते हैं?

धर्म ऐसे मतों पर आधारित होते हैं जो आध्यात्मिक अनुभूतियों को उस स्तर पर नीचे उतार लाते हैं जहां वे आसानी से समझ में आ सकें, लेकिन उसके लिए उन्हें अपनी समग्र शुद्धि और सत्य का मूल्य चुकाना होता है।

धर्मों का समय समाप्त हो गया है।

हम सार्वभौम आध्यात्मिकता के, अपनी आद्या शुद्धि में आध्यात्मिक अनुभूतियों के युग में आ गये हैं।

*

('नव युग में धर्म' नामक एक लेख के बारे में)

मैंने लेख पढ़ लिया है—वह ठीक है। मैंने केवल एक परिवर्तन किया है—अन्तिम पृष्ठ पर जहां तुम कहते हो "चूंकि यह भगवान् का युग होगा" (भगवान् अब भी बहुत धार्मिक हैं) मैंने कर दिया है 'एकमेव' का युग—क्योंकि यह सचमुच एकता का युग होगा।

*

मैं 'आर्य होम' में इस प्रथा[१] को जारी रखने की अनुमति देती हूं बशर्ते कि जो वहां रहते हैं उन्हें अपने विश्वास के अनुसार उसमें भाग लेने या न लेने की *पूरी छूट हो*। इस प्रकार की प्रथाएं अगर आदत या मजबूरी से की जायें तो उनका कोई आध्यात्मिक मूल्य नहीं रहता, भले वह *मानसिक* मजबूरी ही क्यों न हो। मेरे कहने का मतलब यह है कि किसी तरह के प्रोपेगेंडे का बिलकुल उपयोग न किया जाये।

आशीर्वाद सहित।

*

धार्मिक विचारों का तब तक उपयोग नहीं किया जा सकता जब तक वे धर्मों के प्रभाव से मुक्त न हों।

*

धर्म की धारणा प्रायः भगवान् की खोज के साथ सम्बद्ध होती है। क्या धर्म को केवल इसी प्रसंग में समझना चाहिये? वस्तुतः आजकल अन्य प्रकार के धर्म नहीं हैं क्या?

हम धर्म को जगत् या विश्व के सम्बन्ध में किसी ऐसी धारणा को कहते हैं जिसे ऐकान्तिक सत्य माना जाता है जिसमें व्यक्ति की पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिये क्योंकि साधारणतः यह घोषणा की जाती है कि वह किसी

[१] अग्निहोत्र

अन्तःप्रकाश का परिणाम है।

अधिकतर धर्म भगवान् की उपस्थिति को और उसकी आज्ञा मानने के नियम को स्वीकार करते हैं लेकिन कुछ भगवान्‌हीन धर्म भी हैं जैसे सामाजिक-राजनीतिक संगठन जो आदर्श या राज्य के नाम पर उसी भांति आज्ञापालन की मांग करते हैं।

मनुष्य को अधिकार है कि वह स्वतन्त्र रूप से दिव्य सत्य की खोज करे और स्वतन्त्र रूप से अपने ही ढंग से उसकी ओर बढ़े। लेकिन हर एक को जानना चाहिये कि उसकी खोज केवल उसी के लिए अच्छी है, उसे औरों पर आरोपित नहीं करना चाहिये।

१३ मई, १९७०

*

तुम्हें धार्मिक और आध्यात्मिक शिक्षा में घालमेल नहीं कर देना चाहिये।

धार्मिक शिक्षा भूतकाल की चीज है और प्रगति को रोकती है।

आध्यात्मिक शिक्षा भविष्य की शिक्षा है—वह चेतना को आलोकित करती है और उसे भावी उपलब्धि के लिए तैयार करती है।

आध्यात्मिक शिक्षा धर्मों से ऊपर है और सार्वभौम दिव्य सत्य की ओर बढ़ने का प्रयास करती है।

वह हमें भगवान् के साथ सीधा सम्बन्ध जोड़ने की शिक्षा देती है।

१५ जुलाई, १९७२

गुह्यविद्या

गुह्यविद्या तब तक सचमुच नहीं खिलती जब तक वह भगवान् को समर्पित न हो।

फिर भी एक सादृश्य है। जैसे तुम भले पियानो-वादन की कला के बारे में यथासम्भव सभी पुस्तकें पढ़ लो लेकिन अपने-आप पियानो न बजाओ तो तुम कभी पियानोवादक नहीं बन सकते, उसी तरह तुम गुह्य-विद्या के बारे में लिखा हुआ सारा साहित्य पढ़ जाओ लेकिन अपने-आप

उसका अभ्यास न करो तो तुम कभी गुह्यवेत्ता न बनोगे।

नवम्बर, १९५७

*

पूर्व-दृष्टि : अपनी चेतना को भविष्य में प्रक्षिप्त करने की शक्ति।

*

मुझे ये दिखावटी चमत्कार पसन्द नहीं हैं। वे बहुधा दिव्य शक्ति के दबाव तले दयनीय रूप से असफल होते हैं। पहला प्रभाव है अहंकार का भयानक रूप से फूल उठना। इन सबके आगे केवल एक वृत्ति है अपनाने योग्य—अपना अच्छे-से-अच्छा प्रयास करो और परिणाम प्रभु के हाथों में छोड़ दो।

*

हम कई सन्तों के जीवन-वृत्तान्त में पढ़ते हैं कि भक्त ने पूरे विश्वास के साथ यह निश्चय किया कि जब तक भगवान् भोग न लगायेंगे तब तक वह न खायेगा। तब भगवान् प्रकट हुए, उन्होंने खाया और मनुष्य की तरह व्यवहार किया। क्या ऐसी कथाओं में कुछ सत्य है?

एक मनोवैज्ञानिक सत्य क्योंकि अगर तुम निश्चय करो तो कोई भी तुम्हारे लिए भगवान् बन सकता है। व्यक्तिपरक दृष्टिकोण को सामान्य रूप में जितना स्वीकार किया जाता है, वह उससे कहीं अधिक व्यापक है।

*

मैंने तुम्हारे भेजे हुए कागज देख लिये हैं।

इन कागजों का ऐतिहासिक भाग सच्चा मालूम होता है। संस्थापक को काबला और एशिया कोचक के कुछ गुह्यविदों का परिचय रहा होगा। ऐसा मालूम होता है कि मूल लैटिन में था जिसमें काबला सम्पर्क के कारण कुछ हिब्रू शब्द भी आ गये। लेकिन ओसिरिस-आइसिस का भाग मुझे हाल में, शायद पचास साठ वर्ष पहले, जोड़ा गया लगता है।

सारी चीज शुरू से ही सुनिर्मित, सुदृढ़, विस्तृत, *मानसिक रचना* है जिसे बड़े शक्तिशाली रूप में बनाया गया है ताकि व्यक्तियों के बाहर और भीतर के प्राणिक तत्त्वों और शक्तियों को पकड़ सकें, उन पर शासन और उनका उपयोग कर सकें और प्राण के द्वारा भौतिक पर आंशिक अधिकार पा सकें।

अनेकों हैं इस प्रकार की रचनाएं। वे धरती पर गुप्त संगठनों के रूप में अनूदित होती हैं। मैंने इस प्रकार के बहुत-से संगठन देखे हैं जो कुछ-कुछ प्राचीन, थोड़े-बहुत सशक्त रूप से संगठित थे परन्तु थे सब एक ही प्रकार के। वे अपनी प्रकृति में आध्यात्मिक नहीं होते। अगर उनमें कोई आध्यात्मिकता हो तो वह *स्वयं रचना* के कारण नहीं बल्कि संगठन में आध्यात्मिक स्वभाव या उपलब्धिवाले किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की उपस्थिति से आती है।

*
* *

प्राचीनकाल में महान् आध्यात्मिक सत्यों की शिक्षा गुप्त रखी जाती थी, अल्पसंख्यक दीक्षित लोगों के लिए ही आरक्षित रहती थी।

अब भी ऐसी चीजें हैं जो कही जाती हैं लेकिन लिखी नहीं जा सकतीं, छापने का तो सवाल ही नहीं।

*

अपने दैनिक अभ्यासों में हम 'भागवत अवतार' के महान् रहस्य को प्रकट करने का प्रयास कर रहे हैं।

*

अन्तिम विश्लेषण में, सूत्रबद्ध ज्ञान केवल एक भाषा है जो इस ज्ञान के विषय पर कार्य करने की शक्ति देता है।

*

(किसी साधक ने लिखा कि लोग माताजी और श्रीअरविन्द के चित्रों के सामने, देवी-देवताओं की तरह पूजा-अर्चना करते हैं। यथाविधि

पूजा में देवता का आवाहन करने के लिए कोई बीजमन्त्र होना चाहिये। तो क्या 'माताजी' 'श्रीअरविन्द' के लिए कोई ऐसा बीजमन्त्र है? माताजी ने उत्तर दिया :)

मैं हमेशा यही सलाह देती हूं कि मन्त्र को हृदय की गहराइयों से सच्ची अभीप्सा के रूप में उठने दो।

*

मेरी इच्छा हो रही है कि मैं आपसे जप के लिए कोई बीजमन्त्र मांगूं।

ॐ।

*

ॐ 'प्रभु' का हस्ताक्षर है।

*

(प्रणाम के बारे में—भगवान् के प्रति श्रद्धा, सम्मान का संकेत)

यह मुद्रा, यदि पूरी सचाई के साथ की जाये तो समस्त सृष्टि में विद्यमान प्रभु के प्रति समर्पण होता है। यही, हां, यही इस चीज का आरम्भ है...। सृष्टि में विद्यमान भगवान् का सम्मान, सम्मान और उनके प्रति समर्पण।

यही सच्चा अर्थ है। स्पष्ट है कि बाह्य रूप में हजार में से एक भी इस भाव से नहीं करता... लेकिन इस मुद्रा का सच्चा अर्थ यही है। (ध्वन्यांकित)

१९ मार्च, १९७३

ज्योतिष

अपने जीवन के लिए डरो मत—ज्योतिषियों का कहा हमेशा सच नहीं होता।

७ नवम्बर, १९३९

*

ग्रहों का कोई निर्णायक प्रभाव नहीं होता। जब आदमी भगवान् पर विश्वास नहीं करता तभी यह मानकर अपने-आपको अनावश्यक यातना देता रहता है कि वे उसके जीवन का निर्णय करते हैं।

मेरा हिन्दुस्तान और यूरोप दोनों जगह अनेकों ज्योतिषियों से परिचय रहा है। अभी तक कोई भी ठीक-ठीक भविष्य नहीं बांच सका। असफलता के तीन कारण हैं: पहला, ज्योतिषी ठीक तरह से भविष्य बांचना नहीं जानते। दूसरे, जन्मपत्री हमेशा गलत बनी होती है—अगर आदमी में गणित की प्रतिभा हो तो और बात है—और ऐसे आदमी के लिए भी जन्मपत्री बनाना काफी कठिन होता है। तीसरे, जब लोग कहते हैं कि जन्म के समय इस या उस राशि में अमुक ग्रह थे और वे तुम्हारे जीवन पर शासन करते हैं तो यह बात बिलकुल गलत होती है। तुम जिस ग्रहदशा में पैदा हुए हो वह तो केवल भौतिक परिस्थितियों का "ध्वन्यांकन" मात्र है। वह अन्तरात्मा के भविष्य पर शासन नहीं करती। कोई चीज उनके भी परे है जो स्वयं ग्रहों और अन्य सभी चीजों पर शासन करती है। अन्तरात्मा इस 'परम सत्ता' से सम्बन्धित है। और अगर वह 'योग' कर रही हो तब तो उसे ग्रहों की या किसी और की शक्ति में कभी भी विश्वास न करना चाहिये।

जो ज्योतिषी तुम्हारे लिए अनर्थ की भविष्यवाणी करता है वह मसखरे की तरह है। बहुत-से मसखरे ऐसी बातें कहते हैं, "आज तुम अपनी गरदन तोड़ लोगे!" लेकिन उनके मजाक के बावजूद होता कुछ नहीं।

केवल एक महान् 'योगी' ही तुम्हारा भविष्य ठीक-ठीक बतला सकता है। लेकिन उसके ऊपर भी 'परम संकल्प' है, केवल वही सब पर नियन्त्रण करता और हर चीज का निश्चय करता है।†

८ सितम्बर, १९६१

*

'क' ज्योतिष का अध्ययन करता है। उसने मेरी जन्मपत्री बनायी है। मैं उसे आपके पास देखने के लिए भेज रहा हूं। मेरे भविष्य के बारे में उसने जो संकेत दिये हैं आपके ख्याल से उनका कुछ मूल्य है?

जन्मपत्री काफी अस्पष्ट और तुम्हारे भविष्य के बारे में मानसिक विचार बनाने के लिए काफी अच्छा आधार है।

जन्मपत्री में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज होती है ज्योतिषी की स्वयंस्फूर्त ज्ञान की क्षमता।

६ मई, १९६४

*

तुम ज्योतिषियों की बात पर विश्वास ही क्यों करते हो? यह विश्वास ही मुश्किल लाता है।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि मनुष्य अपने बारे में जो सोचता है वही बन जाता है।

१९६५

*

जो लोग योग-साधना करते हैं उनके लिए जन्मपत्रियों का कोई मूल्य नहीं होता, क्योंकि योग के द्वारा जो प्रभाव काम करता है वह ग्रहों के प्रभाव से कहीं अधिक शक्तिशाली होता है।

सामुद्रिक शास्त्र

सामुद्रिक शास्त्र एक बड़ी मजेदार कला है लेकिन वह अपनी यथार्थता और सचाई के लिए पूरी तरह उसका अभ्यास करनेवाले की योग्यता पर निर्भर होती है। और फिर, उसका सम्बन्ध केवल भौतिक नियति से होता है और यह नियति उच्चतर शक्तियों के हस्तक्षेप से बदली जा सकती है।

३ जनवरी, १९५१

संख्याएं

१. एकमेव

२. 'सृजन' का निश्चय

३. 'सृष्टि' का आरम्भ
४. अभिव्यक्ति
५. शक्ति
६. सृष्टि
७. सिद्धि
८. गुह्य रचना
९. अचल परिपूर्ति की शक्ति
१०. अभिव्यञ्जना की शक्ति
११. प्रगति
१२. स्थायी पूर्ण अभिव्यक्ति

*

१. उद्भव
२. 'सृजनात्मक चेतना' का प्रादुर्भाव
३. सच्चिदानन्द
४. अभिव्यक्ति
५. शक्ति
६. नूतन सृजन
७. सिद्धि
८. दोहरा अहाता (बाहरी और भीतरी शत्रुओं से रक्षा)
९. नूतन जन्म
१०. पूर्णता
११. प्रगति
१२. दोहरी पूर्णता (आध्यात्मिक और भौतिक)
१४. रूपान्तर†

*

आज सवेरे प्रणाम के बाद आपने मुझे सचाई के चार फूल देकर आशीर्वाद दिया। मुझे लगता है कि इसका कुछ विशेष अर्थ है, लेकिन मैं उसे जान नहीं सका। क्या आप बताने की कृपा करेंगी?

जब मैंने तुम्हें देने के लिए फूल उठाये तो मुझे लगा कि कई फूल आ रहे हैं तो मैंने इच्छा की "यह सत्ता के उन स्तरों की संख्या हो जिनमें सचाई (भगवान् के प्रति निवेदन में सचाई) निश्चित रूप से स्थापित होगी।" चार का अर्थ है पूर्णता : सत्ता की चार अवस्थाएं मानसिक, चैत्य, प्राणिक और भौतिक।

२७ दिसम्बर, १९३३

रंग

क्या यह जाना जा सकता है कि पीला रंग कब मन का प्रतीक होता है और कब प्रकाश का?

हरा-पीला मानसिक है।

नारंगी-पीला प्रकाश का प्रतीक है।

प्रतीक

लिफाफे पर लोमड़ी का अर्थ है चालाकी।

८ जनवरी, १९३२

*

यह खरगोश है—"समझदारी"।

९ फरवरी, १९३२

*

माताजी, हरिण का क्या अर्थ है?

गति की सौम्यता और तेजी।

*

साधारणतः सांप मिथ्यात्व की गति का प्रतीक होता है। जब स्वभाव में कोई चीज मिथ्यात्व से सादृश्य रखती है तो सांप आकर्षित होते हैं। मिथ्यात्व की प्रकृति का संकेत सांप की प्रकृति और उस स्तर से मिलता है जहां वह प्रकट होता है।

३० अगस्त, १९३२

*

कृपया मुझे बताइये कि घोड़े का क्या अर्थ है?

घोड़ा व्यक्तिगत सत्ता की उन शक्तियों का प्रतीक है जिन्हें वश में करना चाहिये (लगाम लगानी चाहिये)।

१ जनवरी, १९३३

*

आपने मुझे जो लिफाफा भेजा था उस पर जो चित्र था उसका क्या अर्थ है?

वह *मेमना* है, जिसका अर्थ है "शुद्धि"।

४ जनवरी, १९३३

*

आपने जो चित्र मुझे भेजा है उसका क्या अर्थ है?

यह सूअर कामनाओं का प्रतीक है।

१९३३

*

(बाज का प्रतीक)

तीक्ष्ण दृष्टि।

१९३३

*

सांप शक्ति का नहीं, *ऊर्जा* का प्रतीक है और जैसे अन्धकारमयी और विकृत ऊर्जाएं होती हैं उसी तरह सांप भी संस्कारशून्य और भागवत विरोधी शक्तियों का प्रतीक हो सकता है।

२९ मई, १९३४

*

क्या वास्तव में गाय में कोई विशेष पवित्रता होती है या यह केवल आर्थिक आवश्यकताओं पर आधारित परम्परा है?

पुराने प्रतीकों पर आधारित परम्परा मात्र।

*
* *

माताजी, इस चित्र में मकान का क्या अर्थ है?

मुझे याद नहीं मैंने कौन-सा चित्र भेजा था। साधारणत: मकान विश्राम और सुरक्षा का स्थान होता है।

*

स्वस्तिक के तीन चित्र

शुभ   बुरा   अशुभ

हिटलर

*

यह छोटा-सा बिल्ला जैसा है वैसा ही चुना गया था—अनगिनत रेशमी धागों से लटकती हुई एक गेंद—इसके कारण ये हैं।

गेंद—गोला—सार्वभौमिकता, समग्रता और अनन्तता का चिह्न है। एक, यह उस 'परम ऐक्य' का प्रतीक बन जाता है जो सत्ता के सभी क्षेत्रों में अभिव्यक्त है और बहुलता—रेशमी डोरी द्वारा प्रदर्शित है।

*

'आपके' यहां से आज मुझे जो चित्र मिला है उसमें मैं देखता हूं कि कोई दोनों हाथों से एक पूरा खिला हुआ लाल कमल, एक कमल की कली और एक माला अर्पण कर रहा है। चित्र की जमीन पीली है। इस सबका क्या अर्थ है?

लाल कमल अवतार का प्रतीक है और लाल कमल अर्पण करने का मतलब है अवतार के प्रति पूर्ण समर्पण। पीली जमीन अतिमानसिक अभिव्यक्ति का प्रतीक है।

८ नवम्बर, १९३३

*

आपने मुझे जो चित्र दिया है उसमें झरने का क्या अर्थ है? क्या यह आपकी आनन्दमयी शान्ति और आपकी दिव्य शक्ति नहीं है जो मुझे हमेशा सराबोर किये रहती है?

हां, यह भौतिक स्तर पर दिव्य शक्तियों के अवतरण का प्रतीक है।

२५ जनवरी, १९३४

*

जल बहुत-सी चीजों का प्रतीक है, जैसे तरलता, नमनीयता, सुनम्यता, पवित्र करने वाला तत्त्व। यह चालक शक्ति है और व्यवस्थित जीवन के आरम्भ का चिह्न है।†

*

जल प्राण के अनुरूप है, मन वायु के, अग्नि चैत्य, पृथ्वी भौतिक द्रव्य के और आकाश आत्मा के अनुरूप है।

२० अगस्त, १९५५

*

हीरा शुद्ध आध्यात्मिक प्रकाश का प्रतीक है। कोई भी विरोधी शक्ति उसे पार नहीं कर सकती। अगर तुम यह प्रकाश किसी विरोधी शक्ति पर डालो तो वह बिलकुल गल जाती है। लेकिन हीरे के प्रकाश का उपयोग जैसे-तैसे बिना विवेक के हर जगह नहीं किया जा सकता। क्योंकि जो मनुष्य इन शक्तियों को आश्रय देते हैं उन पर बड़ा भयंकर प्रभाव पड़ता है।

निश्चय ही मैं भौतिक हीरों की बात नहीं कर रही।†

*

'अतिमानसिक प्रकाश' और सूर्य के प्रकाश में क्या सम्बन्ध है?

सूर्य का प्रकाश 'अतिमानसिक प्रकाश' का प्रतीक है।

९ जुलाई, १९६५

*

हम सूर्य के प्रकाश का, 'परम प्रभु' के प्रतीक का आवाहन करते हैं ताकि वे हमें 'दिव्य सत्य का प्रकाश' प्रदान करें।

*

प्रतीक एक प्रथा या परम्परा हैं और उनका मूल्य वही है जो भाषाओं का होता है।

१० अप्रैल, १९६६

नैतिकता और युद्ध

नैतिकता

तुम्हें नैतिकता को छोड़ देने का तब तक कोई अधिकार नहीं है जब तक कि अपने-आपको किसी भी नैतिक विधि-विधान से ऊंचे और बहुत अधिक कठोर विधान के आधीन न कर लो।

२८ मई, १९४७

*

तुम नैतिक नियमों को तभी तोड़ सकते हो जब तुम भागवत विधान का पालन करो।

*

दिव्य सत्य की दृष्टि से नैतिक नियमों का बहुत ही सापेक्ष मूल्य है। और फिर देश, काल और वातावरण के अनुसार उनमें बहुत भेद होते हैं।

वाद-विवाद प्रायः निष्फल और निष्प्रयोजन होते हैं। अगर हर एक पूर्ण सचाई, ईमानदारी और सद्भावना से व्यक्तिगत प्रयास करे तो काम के लिए सबसे अच्छी परिस्थितियां प्राप्त हो जायेंगी।

अगस्त १९६६

*

कभी रूप-रंग के आधार पर निर्णय न करो, गप के आधार पर तो और भी नहीं।

जो एक देश में नैतिक है वही किसी और देश में अनैतिक।

भगवान् की सेवा आत्म-आहुति की ऐसी सचाई की मांग करती है जिसका किसी नैतिकता को पता भी नहीं है।

२६ फरवरी १९६९

युद्ध और हिंसा

अभी बहुत दिन नहीं हुए, इस शताब्दी के आरम्भ में, शायद सबसे बड़ी खूनी लड़ाई में कई बार करोड़ों आदमियों के भाग्य का निर्णय युद्धरत राज्यों के प्रमुखों की वित्तीय सट्टेबाजी के द्वारा हुआ करता था।

*

हे मनुष्यो! तुम "शान्ति" जैसे उदात्त शब्द का उच्चारण भी कैसे कर सकते हो जब कि तुम्हारे हृदयों में शान्ति नहीं है।

युद्ध समाप्त हो गया, ऐसा तुम कहते हो, लेकिन फिर भी हर जगह मनुष्य मनुष्य की हत्या कर रहा है और केन[१] अब भी अपने भाई का रक्त बहा रहा है।

*

बाइबल में भगवान् केन को बुलाकर पूछते हैं, "तुमने अपने भाई के साथ क्या किया?"

आज मैं मनुष्य को बुलाती हूं और उससे पूछती हूं, "तुमने धरती के साथ क्या किया है?"

*

उन सब लोगों के लिए जिन्हें भागवत कृपा ने उस भयानक संघर्ष से दूर रखा है जो मनुष्यों को चीर-फाड़ रहा है, अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का एक ही उपाय है, वह है भगवान् के काम के लिए अपनी पूरी सत्ता को पूर्णतया अर्पित कर दें।

मई १९४०

*

[१] केन—आदम और हौवा का बड़ा बेटा। ईर्ष्या से उसने अपने भाई आबेल को मार डाला, फिर शरणार्थी बन गया। माना यह जाता है कि धरती पर यह पहली हत्या थी।

हिटलर के बारे में चिन्ता न करो। कोई आसुरी शक्ति हमेशा के लिए भागवत शक्ति के सामने खड़ी नहीं रह सकती, उसकी पराजय की घड़ी अवश्यम्भावी है।

२७ मई, १९४०

*

The 15th August 1945

The Victory has come, Thy Victory, O Lord, for which we render to Thee infinite thanksgiving.

But now our ardent prayer rises towards Thee. It is with Thy force and by Thy force that the victors have conquered. Grant that they do not forget it in their success and that they keep the promises which they have made to Thee in the hours of danger and anguish. They have taken Thy name to make war, may they not forget Thy grace when they have to make the peace.

M. —

विजय आ गयी है, तेरी विजय, हे नाथ, जिसके लिए हम तुझे अनन्त धन्यवाद देते हैं।

लेकिन अब हमारी तीव्र प्रार्थना तेरी ओर उठती है। तेरी शक्ति द्वारा और तेरी शक्ति से ही विजयी लोगों ने विजय पायी है। वर दे कि वे अपनी सफलता में इसे भूल न जायें और उन्होंने तेरे आगे संकट की तीव्र व्यथा के समय जो प्रतिज्ञाएं की हैं उन्हें वे भूल न जायें। उन्होंने युद्ध करने के लिए तेरा नाम लिया है, वर दे कि वे शान्ति स्थापित करते समय तेरी कृपा को भूल न जायें।

१५ अगस्त, १९४५

*

परमाणु-बम

परमाणु-बम अपने-आपमें एक बहुत अद्‌भुत उपलब्धि है; वह जड़ प्रकृति पर मनुष्य की बढ़ती हुई शक्ति का प्रतीक है। लेकिन खेद की बात यह है कि यह जड़-भौतिक प्रगति और प्रभुत्व आध्यात्मिक प्रगति और प्रभुत्व का परिणाम या उसके साथ मेल खाती हुई चीज नहीं है। केवल आध्यात्मिक शक्ति में ही इस प्रकार की खोज से आने वाले भयानक संकट का विरोध और प्रतिवाद करने की सामर्थ्य है। हम प्रगति को न तो रोक सकते हैं न रोकना ही चाहिये लेकिन हमें उसे भीतर और बाहर के सन्तुलन में प्राप्त करना चाहिये।

३० अगस्त, १९४५

*

किसी उद्देश्य की विजय के लिए हिंसा कभी भी बहुत अच्छा साधन नहीं होती। कोई अन्याय द्वारा न्याय, घृणा द्वारा सामञ्जस्य प्राप्त करने की आशा कैसे कर सकता है?

९ अक्तूबर, १९५१

*

'क' ने पूछा है कि क्या आपने हाल में संसार की स्थिति के बारे में कुछ कहा है। वह जानना चाहता है कि क्या एक और विश्वयुद्ध या किसी गम्भीर विपदा की सम्भावना है?

उससे कह दो कि मैं भविष्यवक्ता बनने से इन्कार करती हूं।

३ फरवरी, १९६२

*

यह पुराना विचार कि शक्ति को प्रभावकारी बनाने के लिए विध्वंस आवश्यक है, एक ऐसा सीमाबन्धन है जिसे पार करना चाहिये।

*

विनाश का स्वागत करने का कोई सवाल ही नहीं है, हमें उसके दिये पाठ को सीखना चाहिये।

*

मैं हिंसा को पूरी तरह अस्वीकार करती हूं। जिस लक्ष्य को पाने की हम अभीप्सा करते हैं उसकी ओर जाने वाले मार्ग पर हर हिंसात्मक क्रिया पीछे की ओर कदम है।

भगवान् हर जगह हैं और हर जगह परम रूप से सचेतन। ऐसा कोई काम न करना चाहिये जो भगवान् के सामने न किया जा सके।

६ मई, १९७१

*

जब तक तुम किसी व्यक्ति को पीटने की योग्यता रखते हो, तब तक तुम खुद भी पीटे जाने के लिए दरवाजा खोले रहते हो।

*

सार्वजनिक प्रस्फोट : कीचड़ की दानवी क्रूरता जो प्रकाश से द्वेष और घृणा करती है।

*

हिंसा और क्रूरता में फर्क है। हिंसात्मक मानसिक अवस्था में मनुष्य भारी भयानक क्रिया कर सकता है लेकिन बाद में उसके लिए बहुत दुःखी होता है, जब कि क्रूर व्यक्ति ठण्डे दिमाग के साथ नृशंस रूप से कार्य करता है। हर चीज पूर्वायोजित होती है और मानों करने के लिए की जाती है।†

सुरक्षा और संरक्षण

बमबारी के समय, उन लोगों से जो अपनी चमड़ी के लिए डरकर भाग निकलते हैं :

तुम ही सकुशल क्यों रहो, जब सारा संसार संकट में है? तुम्हारा विशेष पुण्य, तुम्हारा विशेष गुण क्या है जिसके लिए तुम्हें विशेष रूप से संरक्षण दिया जाये?

भगवान् के अन्दर ही संरक्षण है, उन्हीं की शरण लो और समस्त भय को दूर फेंक दो।

२६ मई, १९४२

*

(उन लोगों के सम्बन्ध में जिन्होंने सितम्बर १९६५ के भारत-पाक युद्ध के समय पॉण्डिचेरी आने की स्वीकृति मांगी थी।)

वे पॉण्डिचेरी आ सकते हैं लेकिन जो डरते हैं वे सब जगह डरते हैं और जिसमें श्रद्धा है वह हर जगह सुरक्षित है।

९ सितम्बर, १९६५

*

सर्वोत्तम सुरक्षा है भागवत कृपा में अचल श्रद्धा।

*

संरक्षण सक्रिय है और वह तभी प्रभावकारी हो सकता है जब तुम्हारी ओर से स्थायी और सम्पूर्ण *श्रद्धा हो*।

*

आओ, हम अपने-आपको पूरी तरह और सचाई के साथ भगवान् को दे दें, तब हम उनका भरपूर संरक्षण पायेंगे।

*

पूर्ण संरक्षण: वह जिसे केवल भगवान् ही दे सकते हैं।

*

चैत्य सुरक्षा : भगवान् के प्रति समर्पण के परिणामस्वरूप मिलने वाली सुरक्षा।

*

भौतिक सुरक्षा भगवान् के प्रति सम्पूर्ण समर्पण और कामनाओं के अभाव से सम्भव होती है।

*

हमेशा भागवत उपस्थिति पर एकाग्र होओ तो सुरक्षा अपने-आप आ जायेगी।

*

समस्त गतिविधियों का ऐकान्तिक रूप से भगवान् की ओर मुड़ना : कुशलक्षेम पाने का सबसे पक्का उपाय है।

*

जो कुछ भगवान् को दिया गया है उसके सिवा कुछ भी सुरक्षित नहीं है।

सम्पत्ति और सरकार

सम्पत्ति और अर्थशास्त्र

Money is not meant to make money, money is meant to make the earth ready for the advent of the new creation.

धन धन कमाने के लिए नहीं है, धन धरती को नयी सृष्टि के आगमन के लिए तैयार करने के लिए है।

*

समस्त धन-सम्पदा भगवान् की है, भगवान् उसे जीवित प्राणियों को उधार देते हैं और स्वभावतः उसे उन्हें भगवान् के पास लौटा देना चाहिये।

*

चैत्य प्रभाव के अधीन धन-सम्पत्ति : अपने सच्चे स्वामी, भगवान् के पास लौटने के लिए तैयार धन-सम्पदा।

*

एक दिन आयेगा जब इस धरती की समस्त धन-सम्पदा, अन्ततः भागवत विरोधी शक्तियों की दासता से मुक्त होकर अपने-आपको सहज

और पूर्ण रूप से धरती पर भगवान् के 'कार्य' के लिए अर्पित कर देगी।

६ जनवरी, १९५५

*

तुम जो कुछ हो, तुम्हारे पास जो कुछ है, वह सब दे दो। तुमसे इससे ज्यादा की मांग नहीं की जाती लेकिन इससे कम की भी नहीं।[1]

६ जनवरी, १९५६

*

सच्ची सम्पदा वह है जिसे मनुष्य भगवान् को अर्पित करता है।

*

तुम उसी धन से धनवान् बनते हो जिसे तुम भागवत कार्य के अर्पण करते हो।

३० जनवरी, १९५९

*

तुम जो सम्पदा अपने अधिकार में रखते हो उसकी अपेक्षा जो सम्पदा देते हो उससे अधिक धनवान् बनते हो।

*

(श्रीअरविन्द सोसायटी के पहले अधिवेशन के लिए सन्देश)

सच्ची सम्पदा है ठीक तरह से खर्च करना।

तुम सचमुच धनवान् तब बनते हो जब अपने धन को अच्छे-से-अच्छे तरीके से खर्च करते हो।

फरवरी १९६२

*

[1] माताजी ने यह सन्देश ६ जनवरी एपीफेनी (प्रभु प्रकाश) के उत्सव के दिन बांटा था और कहा था कि यह भौतिक जगत् का भगवान् के प्रति अर्पण का उत्सव है।

समृद्धि (ऋद्धि-सिद्धि) हमेशा केवल उसी के साथ रहती है जो उसे भगवान् के अर्पण करता है।

*

निःस्वार्थ समृद्धि : जो उसे प्रचुर मात्रा में पाता है, वह जैसे ही पाता है वैसे ही सब दे देता है।

*

उदारता अपने-आपको देती है और बिना मोल-भाव के देती है।

*

अच्छे कामों के लिए प्रचुर मात्रा में धन को आने और जाने दो।

*

मेरी दृष्टि में कोई भी काम अपने खर्च की अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है—चाहे उसमें अत्यधिक खर्च क्यों न हो। इस तरह के निर्णयों के लिए धन को कभी मानदण्ड नहीं बनाना चाहिये। अगर हम कहें कि हम अमुक चीज को उसकी कीमत के कारण नहीं कर सकते तो हम भागवत कृपा के प्रति ग्रहणशीलता को सीमित कर देते हैं और उसके कार्य में बाधा देते हैं। धन केवल विनिमय का साधन है, वह बिलकुल सापेक्ष है और भगवान् के साधन अखूट हैं। क्या यह मनोवृत्ति ठीक है?

तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है और मैं तुम्हारी मनोवृत्ति का समर्थन करती हूं।

* * *

अपने विचार में *आध्यात्मिक शक्ति* और *धन* को कभी मत मिलाओ, क्योंकि यह सीधा विध्वंस की ओर ले जाता है।

*

मिथ्याभिमान से दिया गया उपहार न तो देने वाले के लिए लाभदायक होता है न पाने वाले के लिए।

*

मैं उसे यह समझाना और अनुभव कराना चाहती थी कि दी हुई चीज की अपेक्षा उपहार के साथ जाने वाले विचार, भावना और शक्ति बहुत अधिक मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण होते हैं।

*

बहुधा मेरे आगे एक व्यावहारिक समस्या आती है : जो आदमी योग करने की तैयारी में लगा है, जिसने यह सामान्य नियम बना लिया है कि हर चीज आपको अर्पित कर देगा और पूरी तरह आप पर निर्भर रहेगा, क्या वह औरों के पास से आने वाले धन या वस्तुओं के उपहार स्वीकार कर सकता है? क्योंकि अगर वह स्वीकार कर ले तो वह व्यक्तिगत अहसानों और कर्तव्यों के आधीन हो जाता है। क्या साधक ऐसी चीज होने दे सकता है? क्या वह अपने-आपसे कह सकता है : "भगवान् के देने के अनेक तरीके हैं"।

अगर कोई इस कारण झगड़ने लगे कि मैंने एक से तो उपहार ले लिया और दूसरे को मना कर दिया तो क्या किया जाये? अपने चारों ओर इस तरह की कटुता से कैसे बचा जाये जो बार-बार मना करने से आती है।

"भगवान् के देने के अनेक तरीके हैं।"

यह ठीक बात है। तुम्हारा किसी के प्रति आभार नहीं होता। आभार होता है केवल *भगवान्* के प्रति, पूर्ण रूप से उसी के प्रति। जब कोई उपहार *बिना शर्त* के दिया जाता है तो तुम हमेशा उसे भगवान् से आये हुए उपहार के रूप में ले सकते हो और यह भगवान् पर छोड़ सकते हो कि उसके बदले में या उसके प्रत्युत्तर में क्या जरूरी है।

रही बात दुर्भावना, ईर्ष्या, झगड़े और तानों की, तो तुम्हें *सचाई* के *साथ* इन सबसे ऊपर उठना चाहिये और कड़वे-से-कड़वे शब्दों के उत्तर में

भी एक सद्भावनापूर्ण मुस्कान देनी चाहिये और जब तक तुम अपने और अपनी प्रतिक्रियाओं के बारे में बिलकुल निश्चित न होओ साधारण नियमानुसार चुप रहना ही ज्यादा अच्छा है।

६ अक्तूबर, १९६०

*

लोग कहते हैं: "भगवान् गरीब के मित्र हैं" लेकिन यह बात गलत और झूठी मालूम होती है। भगवान् अमीर के मित्र हैं। पता नहीं हमारा स्थान कहां है।

अमीर को भगवान् धन देते हैं, लेकिन गरीब के लिए अपने-आपको दे देते हैं। सब कुछ इस पर निर्भर है कि गरीब धन को ज्यादा मूल्य देता है या भगवान् को।

२२ अगस्त, १९६४

*

धनाढ्यों और व्यापारियों को भविष्य के साथ सहयोग करने की सम्भावना प्रदान की गयी है लेकिन उनमें से अधिकतर लोग इन्कार करते हैं। उन्हें विश्वास है कि धन की शक्ति भविष्य की शक्ति से अधिक प्रबल है।

लेकिन भविष्य उन्हें अपनी अदम्य शक्ति से कुचल देगा।

***

इस जड़-भौतिक जगत् में मनुष्यों के लिए धन भगवान् की इच्छा से अधिक पवित्र है।

१२ मार्च, १९६५

*

धन के लिए लोभ: अपने ईमान को कम करने और अपनी प्रकृति को संकीर्ण बनाने का सबसे निश्चित तरीका।

*

मैं धन पर ब्याज लेने के पक्ष में नहीं हूं।

*

मैंने थोड़ी सट्टेबाजी की लेकिन कंगाल होकर निकला। कुछ समय के लिए मैंने जो सट्टा किया उसने मेरी जेब में काफी बड़ा छेद कर दिया। काश, मैं उसमें न पड़ा होता। क्या आप सचमुच उसके एकदम विरुद्ध हैं?

तुम्हें यह पता होना चाहिये कि मैं सट्टेबाजी का बिलकुल समर्थन नहीं करती—लेकिन जो हो गया सो हो गया।

१७ दिसम्बर, १९३९

*

क्या चेतना के सुधार से आदमी की आर्थिक स्थिति सुस्थिर हो जाती है?

यदि "चेतना के सुधार" का मतलब है बढ़ी हुई, विशालतर चेतना, उसकी अधिक अच्छी व्यवस्था तो परिणामस्वरूप बाहरी चीजों पर जिनमें "आर्थिक स्थिति" भी आ जाती है, स्वाभाविक रूप से ज्यादा अच्छा नियन्त्रण होगा। लेकिन जब "ज्यादा अच्छी चेतना" होगी तो स्वाभाविक है कि व्यक्ति अपनी आर्थिक स्थिति के जैसी चीजों के साथ कम व्यस्त रहेगा।

*

आर्थिक समस्या का समाधान :

दो समस्याओं के समन्वय पर पहुंचना :

१. उत्पादन का आवश्यकताओं के साथ समन्वय।

२. आवश्यकताओं का उत्पादन के साथ समन्वय।

*

सरकार और राजनीति

दूसरों पर शासन करने की आशा करने से पहले तुम्हें अपने ऊपर नियन्त्रण कर सकना चाहिये।

*

१. दूसरों पर नियन्त्रण रख सकने के लिए स्वयं *अपने ऊपर पूर्ण नियन्त्रण पाना* अनिवार्य शर्त है।

२. कोई *पसन्द न होना*, एक को पसन्द और दूसरे को नापसन्द न करना, हर एक के साथ *समान होना*।

३. हर एक के साथ धीरज रखना और सहिष्णु होना।

और साथ ही केवल वही बोलना जो एकदम अनिवार्य हो, उससे अधिक नहीं।

मार्च १९५४

*

जिन लोगों के जीवन पर तर्क-बुद्धि का राज है उनकी बातों को आदमी गम्भीरता से लेता है, लेकिन जो लोग वास्तव में अपने सनकी आवेगों के खिलौने हैं उनके तथाकथित निश्चयों को कोई कैसे महत्त्व दे सकता है?

*

चिन्तन: सभी व्यवस्थापकों के लिए आवश्यक; व्यवस्था या संगठन का गुण उसी के गुण पर निर्भर होता है।

*

व्यवस्थित करने की अपेक्षा दबा देना ज्यादा आसान है, लेकिन सच्ची व्यवस्था दबा देने की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट है।

३० जून, १९५४

*

समस्त उपलब्धि के लिए संगठन और अनुशासन आवश्यक नींव हैं।

अच्छी तरह हुकुम देना जानने से पहले अच्छी तरह आज्ञापालन करना जानना चाहिये।

*

केवल वही जो आज्ञापालन करना जानता है शासन करने योग्य है।

*

To those whose work is to govern or to lead.

When you want to please the people, you let things go as they are, waiting for Nature to impose her progress upon man. But this is not the truth of the creation. The true mission of man is to impose his progress on Nature

2.12.54

उनके नाम जिनका काम शासन या नेतृत्व करना है।

जब तुम लोगों को खुश करना चाहते हो तो तुम चीजें जैसी हैं वैसी चलने देते हो, और प्रतीक्षा करते हो कि प्रकृति अपनी प्रगति मनुष्यों पर आरोपित करे। लेकिन यह सृष्टि का सत्य नहीं है। मनुष्य का सच्चा उद्देश्य है प्रकृति पर अपनी प्रगति आरोपित करना।

२ दिसम्बर, १९५४

*

मनुष्य अपनी साधारण चेतना में, किसी ऐसी सत्ता को स्वीकार नहीं

कर सकते, चाहे वह कितनी भी युक्तियुक्त क्यों न हो, जो किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में हो जिसे वे अपने ही स्तर का समझते हैं।

दूसरी ओर, मानव सत्ता औरों पर उचित रूप से अपना रौब छांट सके उसके लिए यह जरूरी है कि वह कम-से-कम इतनी प्रबुद्ध, निष्पक्ष और अहंकाररहित हो कि कोई भी आसानी से उसके मूल्य को चुनौती न दे सके।

*

केवल वही अपनी आज्ञा मनवाने के अधिकार का दावा कर सकता है जिसमें सच्चे न्याय का भाव हो।

*

जब मैं कहती हूं कि "प्रज्ञावान्" लोगों को संसार पर राज्य करना चाहिये तो मैं राजनीतिक दृष्टिकोण से नहीं, आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कहती हूं।

सरकारों के विभिन्न रूप जैसे हैं वैसे ही रह सकते हैं; यह गौण महत्त्व की बात है, लेकिन जो लोग शासनतन्त्र में हैं वे चाहे किसी भी सामाजिक स्तर के क्यों न हों, उन्हें अपनी प्रेरणा ऐसे लोगों से प्राप्त करनी चाहिये जिन्होंने सत्य को पा लिया है, जिनकी इच्छा परम प्रभु की इच्छा से भिन्न नहीं है।

१७ सितम्बर, १९५१

*

राजनीति में बने रहो और राजनीति में सत्य को लाने की कोशिश करो, यह प्रभावकारी आध्यात्मिकता की ओर बहुत निश्चित मार्ग है।

*

सार्वजनिक रूप से लोगों की वाणी या लेखनी द्वारा बुरा-भला कहने की यह सामान्य, गंवारू राजनीतिक आदत पूरी तरह छोड़ दो। तुम्हें *व्यक्तित्वों* का युद्ध नहीं, विचारों का युद्ध करना चाहिये ताकि सत्य की विजय हो।

*

मधुर मां,

आपने युवक-शिविरों[१] के बारे में कहा है कि वहां राजनीति पर चर्चा नहीं होनी चाहिये।

इस सन्दर्भ में आपसे कुछ और पथ-प्रदर्शन के लिए प्रार्थना करता हूं। मधुर मां, सिर्फ उनके लिए नहीं जो युवक-शिविरों में बोलते हैं बल्कि सामान्यतः उन सबके लिए भी जो श्रीअरविन्द कर्मधारा के सिलसिले में देश भर में भाषण देने जाते हैं।...

अभी तक हमारी दृष्टि में "राजनीति" में ऐसे क्रिया-कलाप की गिनती होती है जिसके द्वारा व्यक्ति दूसरों पर अपना या अपने दल का आधिपत्य जमाता है। इनमें कुचक्र और अनाचार भी आ जाते हैं। इसमें यह माना जाता है कि हमारी विचार-सरणी ही सच्ची है, बाकी सब गलत है।

इस प्रकार की राजनीति से हमें पूरी तरह से बचना चाहिये, है न?

हां।

लेकिन श्रीअरविन्द ने ऐसे विषयों को बहुत ही ऊंचे दृष्टिकोण से देखा है जिसमें उन्होंने यह देखा है कि हर उपगमन और हर विचारधारा में सत्य क्या है और उन्होंने इन सब आंशिक सत्यों के सच्चे एकीकरण के वास्तविक समन्वय का मार्ग दिखलाया है। अगर हम उनसे सीख सकें और उनके पथ का अनुसरण करें तो हम ऐसे विषयों पर सचमुच विचार कर सकते हैं और हमें उनसे कतराने की आवश्यकता नहीं होगी। क्या हमारा इस चीज को इस तरह लेना और समझना ठीक है?

हां।

जब हमसे बैंकों के राष्ट्रीयकरण, राजाओं की निजी आमदनी, प्रेस विधेयक आदि के बारे में सीधे प्रश्न किये जाते हैं तो जब तक हमें

[१] श्रीअरविन्द और माताजी की किताबों का अध्ययन करने के लिए कई-कई दिन के सेमिनार।

आपका या श्रीअरविन्द का उत्तर न मालूम हो तो हम यही कह देते हैं कि ये सब ऊपरी सतह की चीजें हैं और व्यवस्था की बातें हैं। अपने-आपमें ये उन समस्याओं को हल नहीं कर सकतीं। केवल चेतना के परिवर्तन से या कम-से-कम सत्य के लिए अभीप्सा और उसके परिणामस्वरूप परिवर्तन की ओर उद्‌घाटन से ही इन समस्याओं को हल किया जा सकता है। किसी योजना या व्यवस्था का रूप कैसा भी क्यों न हो उसे पूरा करने वाले तो मनुष्य ही होते हैं। अगर मनुष्य अन्धकार और मिथ्यात्व में बने रहें तो कोई भी योजना या व्यवस्था—वह चाहे कितनी भी अच्छी क्यों न लगती हो—सफल नहीं हो सकती।

तो सभी समस्याओं का एक ही समाधान है, और वह आपका दिया हुआ है—केवल शाश्वत की आज्ञा मानो और सत्य के अनुसार जीवन बिताओ।

क्या यह उत्तर ठीक और पर्याप्त है?

हां, सच है।

अमुक विषयों पर जहां आपने या श्रीअरविन्द ने सीधे उत्तर दिये हैं, हम भी ठीक-ठीक उत्तर दे देते हैं, जैसे, भारत और पाकिस्तान की एकता एक ऐसा सत्य है जिसके बिना बांगला देश आदि की समस्याओं का हल नहीं हो सकता, या भाषाओं का प्रश्न है जिस पर आपने राष्ट्र के लिए कहा है कि, १. क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम हो। २. संस्कृत राष्ट्रभाषा हो और ३. अंग्रेजी अन्तर्राष्ट्रीय भाषा।

क्या इस प्रकार के प्रश्नों के पूछे जाने पर हमारा यह उत्तर देना ठीक है?

हां।

आशीर्वाद।

बोलो कम, सच्चे बनो, सचाई से काम करो।

४ अक्तूबर, १९७१

*

यह सोचना कि साम्यवाद एकमात्र सत्य है वही भूल है जो सभी धार्मिक कट्टरताओं ने की है और यह साम्यवाद को अन्य सभी धर्मों के स्तर पर लाकर रख देता है... दिव्य सत्य से बहुत दूर।

मानव-एकता

अमरीका के नाम सन्देश

यह सोचना छोड़ दो कि तुम पश्चिम के हो और दूसरे पूर्व के। सभी मनुष्य एक ही दिव्य कुल के हैं और धरती पर हम इस मौलिक एकता को व्यक्त करने के लिए हैं।

४ अगस्त, १९४९

*

धरती स्थायी और सजीव शान्ति तभी पायेगी जब मनुष्य यह समझ लेंगे कि उन्हें अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में भी सच्चा और निष्कपट होना चाहिये।

सरकारों के लिए ईमानदारी केवल इसी में नहीं है कि वे जो करती हैं वही कहें, बल्कि वही करें भी जो वे कहती हैं।

*

अगर कूटनीति छल-कपट और मिथ्यात्व पर आधारित होने की जगह दिव्य सत्य और भागवत कृपा का यन्त्र बन जाये तो यह मानव एकता और सामञ्जस्य की ओर एक बड़ा कदम होगा।

१५ अप्रैल, १९५५

शान्ति के बारे में

धरती पर सच्ची और स्थायी शान्ति केवल मानव एकता की चेतना की वृद्धि और प्रतिष्ठा के द्वारा ही चरितार्थ हो सकती है। इस लक्ष्य की ओर ले जाने वाले सभी साधनों का स्वागत है यद्यपि बाहरी साधनों का

बहुत ही सीमित प्रभाव होता है, फिर भी, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, अत्यावश्यक और अनिवार्य है स्वयं मानव चेतना का रूपान्तर, उसकी कार्यसरणि का प्रबुद्ध और रूपान्तरित होना।

इस बीच कुछ बाहरी कदम उपयोगी रूप में उठाये जा सकते हैं। दोहरी राष्ट्रीयता की स्वीकृति उनमें से एक है। इसके विरुद्ध मुख्य आपत्ति हमेशा यही रही है कि उन लोगों की कैसी विकट स्थिति होगी जिन्होंने दोहरी राष्ट्रीयता अपना ली है, और जिन देशों की राष्ट्रीयता अपनायी है उनमें युद्ध छिड़ जाये।

लेकिन जो लोग सचाई के साथ शान्ति चाहते हैं उन्हें यह समझ लेना चाहिये कि युद्ध के बारे में सोचना, युद्ध की बात करना, युद्ध का पहले से ही अनुमान करना उसके लिए द्वार खोलना है।

इसके विपरीत, युद्ध के उन्मूलन में जितने अधिक लोगों को सक्रिय रस होगा, स्थायी शान्ति के अवसर उतने ही प्रभावकारी होंगे। यह तब तक रहेगा जब तक मनुष्य में नयी चेतना का आगमन युद्ध को असम्भव न बना दे।

२४ अप्रैल, १९५५

*

समस्त संकीर्णता, स्वार्थपरता, सीमाबन्धन को झाड़ फेंको और मानव एकता की चेतना के प्रति जागो। शान्ति और सामञ्जस्य पाने का यही एक रास्ता है।

मई, १९५५

*

हमसे राष्ट्रों के स्तर पर बात कीजिये।

खेद है, अगर मैं ऐसे बोलूं तो वह बहुत ऊंचे स्तर से न होगा।

अभी तक राष्ट्र किसी सच्चे आध्यात्मिक सन्देश को सुनने के लिए तैयार नहीं मालूम होते।

११ मई, १९५७

*

राष्ट्रों की कृतघ्नता के बारे में :

जो तुम्हारा भला करता है उससे नाराज न होने के लिए चरित्र की उदात्तता की जरूरत होती है।

*

(श्रीअरविन्द सोसायटी की पहली विश्व-परिषद् के लिए सन्देश)

धरती का भविष्य चेतना के परिवर्तन पर निर्भर है।

भविष्य के लिए एकमात्र आशा है आदमी की चेतना में परिवर्तन और परिवर्तन अवश्यम्भावी है।

लेकिन यह निश्चय मनुष्यों के हाथ में छोड़ा गया है कि वे इस परिवर्तन के लिए सहयोग दें या इसे उन पर कुचलती हुई परिस्थितियों की शक्ति द्वारा आरोपित किया जाये।

तो, जागो और सहयोग दो!

आशीर्वाद।

अगस्त १९६४

*

(माताजी ने उस सभा में भाग लेने वालों के विचारार्थ निम्नलिखित प्रश्न और उनके अपने उत्तर दिये थे।)

मानवजाति एक कैसे हो सकती है?

अपने मूल के बारे में सचेतन होकर।

मनुष्य के अन्दर मानव एकता की चेतना को विकसित करने का क्या तरीका है?

आध्यात्मिक शिक्षा यानी ऐसी शिक्षा जो किसी भी धार्मिक और नैतिक सीख या भौतिक तथाकथित ज्ञान की अपेक्षा आत्मा के विकास को अधिक महत्त्व देती हो।

चेतना का परिवर्तन क्या है?

चेतना का परिवर्तन नवजन्म का समानार्थक है यानी सत्ता के ज्यादा ऊंचे क्षेत्र में जन्म लेना।

चेतना का परिवर्तन धरती पर जीवन को कैसे बदल सकता है?

मानव चेतना में परिवर्तन धरती पर उच्चतर शक्ति, शुद्धतर प्रकाश, अधिक सम्पूर्ण सत्य की अभिव्यक्ति को सम्भव बनायेगा।

अगस्त १९६४

*

मानवजाति जिस भयंकर दुर्दशा में धंसी हुई है उससे चेतना के आमूल परिवर्तन के सिवा उसे कोई नहीं बचा सकता।

*

ये सब तथाकथित व्यावहारिक उपाय बचकाने हैं जिनके द्वारा मनुष्य अपने-आपको अन्धा बना लेते हैं ताकि वे सच्ची आवश्यकता और एकमात्र उपचार को न देख सकें।

*

स्थायी विश्व-ऐक्य पाने का सच्चा उपाय क्या है?

एकमेव की चेतना को प्राप्त करना।

१३ अक्तूबर, १९६५

*

(श्रीअरविन्द सोसायटी ने श्रीअरविन्द की जन्म-शताब्दी के अवसर पर उनके चित्रों और सन्देशों का एक सेट तैयार किया था और उसे देश-विदेश के अनेकों दूतावासों को भेजा था। यह सन्देश उसी से सम्बन्ध रखता है।)

सत्य पर आधारित और मिथ्यात्व की दासता से इन्कार करने वाला एक नया संसार जन्म लेना चाहता है।

सभी देशों में ऐसे लोग हैं जो इसे जानते हैं, कम-से-कम अनुभव करते हैं।

उन्हें हमारी टेर है :

क्या तुम सहयोग दोगे? १९७२

'वर्ल्ड यूनियन'[१] (विश्व ऐक्य) को सन्देश

संसार एक इकाई है। वह हमेशा इकाई रहा है और अब भी है। इस समय भी है। ऐसी बात नहीं है कि उसमें एकता नहीं है और उसे कहीं बाहर से लाना और उस पर आरोपित करना होगा।

केवल, संसार अपनी एकता के बारे में सचेतन नहीं है। उसे सचेतन बनाना है।

हम समझते हैं कि इस प्रयास के लिए यह समय सबसे अधिक शुभ है।

क्योंकि, तुम इस तत्त्व को जो चाहो कह लो, एक नयी शक्ति या चेतना या ज्योति संसार में अभिव्यक्त हुई है और अब संसार में अपनी एकता के बारे में सचेतन होने की क्षमता है।

२५ मार्च, १९६०

*

तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है। इस नये काम के लिए पुरानी पद्धतियां नहीं चल सकतीं। केवल इतना ही नहीं कि कोई सचमुच प्रभावकारी चीज करने से पहले नयी चेतना को स्थिर रूप से स्थापित होना होगा बल्कि नयी पद्धति भी खोजनी होगी।

१५ जनवरी, १९६१

*

[१] नवम्बर १९५८ में स्थापित एक धर्मादाय संस्था जो आध्यात्मिक शिक्षा के आधार पर संसार में शान्ति और एकता लाने के सपने देखती है। अपने इस कार्य में उसे श्रीअरविन्द की पुस्तक 'मानव एकता का आदर्श' से प्रेरणा मिली है।

'विश्व ऐक्य' के कार्य से सम्बन्ध रखने वालों के नाम

तुम्हारे सभी भेद शुद्ध रूप से मानसिक हैं और तुम उन्हें जो अत्यधिक महत्त्व देते हुए मालूम होते हो *उसके* बावजूद, वस्तुतः उनका बहुत ही कम महत्त्व है और अगर *हर एक* जरा विशाल होने की कोशिश करे और यह समझे कि वह जो कुछ सोचता है वह प्रश्न का एक दृष्टिबिन्दु भर है और प्रभावशाली होने के किसी भी प्रयास में अन्य दृष्टिबिन्दुओं का भी स्थान होना चाहिये और उसे उन सबका समन्वय करना चाहिये तो उन पर विजय पायी जा सकती है।

अन्यथा तुम्हारी बुद्धि का जो भी गुण हो, तुम निराशाजनक रूप से संकीर्ण और संकुचित हो। यह बात हर एक पर लागू होती है जिसने अतिमानसिक चेतना प्राप्त नहीं की है और जो उच्चतर गोलार्द्ध में नहीं चला गया है।

तुम सब मिलकर सामञ्जस्य के साथ, हंसी-खुशी, अपने भेदों को भूलकर काम करो। *हर एक अपने ही* काम के बारे में सोचे और अपने विचार के अनुसार अच्छे-से-अच्छा करे लेकिन मौन रूप से दूसरों के विचारों के औचित्य को मान्यता दे और उन सबका समन्वय करने की आवश्यकता को स्वीकार करे।

६ *अप्रैल, १९६१*

*

जो एक है उसे विभक्त मत करो। विज्ञान (सायंस) और आध्यात्मिकता दोनों का एक ही लक्ष्य है—परम देवत्व। उनमें फर्क बस इतना है कि आध्यात्मिकता उसे जानती है और विज्ञान नहीं जानता।

दिसम्बर १९६२

*

मैं तुमसे पहले ही कह चुकी हूं कि 'वर्ल्ड यूनियन' उन लोगों के लिए एक बाह्य आन्दोलन है जिन्हें अपनी श्रद्धा को अधिक ठोस वास्तविकता देने के लिए बाहरी क्रिया-कलाप और संगठन की जरूरत है।

यह ऐसे लोगों के लिए आदर्श कार्य है जो मानवजाति में, जैसी वह

है उसमें, सामञ्जस्य लाना चाहते हैं ताकि उसे भावी सम्पूर्ण प्रगति के लिए तैयार कर सकें।

कुछ दूसरे—बहुत ही कम—आन्तरिक व्यक्तिगत तैयारी और प्रगति पर अधिक जोर देते हैं। वे अग्रदूत हैं जो जगत् को मार्ग दिखाते हैं। उन्हें उनकी एकाग्रता में से बाहर नहीं खींचना चाहिये। उन्हें 'वर्ल्ड यूनियन' का सहानुभूतिपूर्ण साक्षी रहना चाहिये, सक्रिय सहभागी नहीं।

१ जुलाई, १९६३

*

करुणामयी मां, हमें आपका पथ-प्रदर्शन चाहिये जो हमें इस योग्य बनाये कि हम अपनी अभीप्सा के प्रति तब भी निष्ठावान् बने रहें जब हमें उनके साथ काम करना पड़े जिनके काम का तरीका आवश्यक रूप से हमारी अभीप्सा के साथ मेल न खाता हो या कभी-कभी उससे भिन्न भी हो। कृपया हमें मार्गदर्शक सूत्र बतलाइये।

यह रही मेरी व्याख्या जो आदर्श वाक्य और कार्यक्रम का काम भी दे सकती है।

एक ऐसा विश्व ऐक्य जो आत्मा के सत्य को चरितार्थ करती हुई मानव एकता के तथ्य पर आधारित हो।

आशीर्वाद सहित।

अप्रैल १९६४

*

मैं तुमसे कहना चाहती हूं कि उच्चतर दृष्टि से समस्त जगत् तेजी से आमूल परिवर्तन की ओर बढ़ रहा है। अगर 'वर्ल्ड यूनियन' को ठीक तरह चलाया जाये तो परिवर्तन में उसका विशेष स्थान हो सकता है।

२४ जुलाई, १९६४

*

एकता किसी बाहरी व्यवस्था से नहीं आती, वह आती है शाश्वत

'ऐक्य' के बारे में सचेतन होने से।

१२ अगस्त, १९६४

*

इन सब सिद्धान्तों के पीछे कुछ सत्य है, लेकिन कोई भी अपने-आपमें पूर्ण नहीं है।

एक सुनम्य, प्रगतिशील और विशाल समन्वय प्रतिपादित करना चाहिये लेकिन मनमाने मानसिक ढंग से नहीं, जीवन्त अनुभूति और आन्तरिक प्रगति द्वारा।

पूर्णतर उपलब्धि की ओर आगे बढ़ने के संकल्प के साथ हम अभी जो हैं उसी को लेकर शुरू कर सकते हैं।

अक्तूबर १९६४

*

(श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र के विद्यार्थियों को एक स्थानीय गोष्ठी में भाग लेने के लिए निमन्त्रित किया गया था जिसका विषय था "१९६५–अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का वर्ष"।)

मुझे इस प्रदर्शन में 'वर्ल्ड यूनियन' के, तुम्हारे या 'क' के भाग लेने में कोई आपत्ति नहीं है लेकिन मैंने उसमें विद्यार्थियों के भाग लेने की एकदम मनाही कर दी है क्योंकि जहां संसार की समस्याओं का प्रश्न हो वहां मैं बोले गये या लिखे गये वचनों की उपयोगिता को नहीं मानती।

मैं इस बात पर आग्रह करती हूं कि अपने अन्दर एकता की चेतना पाने का प्रयत्न करना और परिणामस्वरूप अपने कर्म का रूपान्तर करना भाषणों और लेखों से अनन्तगुना अधिक प्रभावकारी है।

जनवरी १९६५

*

बड़े दिन के लिए लिखे गये सन्देश का इसी उद्देश्य से ब्लॉक बनवाया गया था। तुम्हें उसका उपयोग करना चाहिये।

अगर तुम धरती पर शान्ति चाहते हो
तो पहले अपने हृदय में शान्ति स्थापित करो।
अगर तुम जगत् में ऐक्य चाहते हो
तो पहले स्वयं अपनी सत्ता के विभिन्न भागों को एक करो।

फरवरी १९६५

*

जो कहा जाता है उसे बहुत अधिक महत्त्व न दो। शब्द केवल शब्द हैं और हर एक मन में वे अलग ही रंग लेते हैं।

फरवरी १९६६

*

तुम आपस में एक होकर संसार के आगे यह सिद्ध करो कि 'एकता' सम्भव है।

१९ फरवरी, १९६६

*

मानवजाति की एकता मूलभूत और विद्यमान तथ्य है।

लेकिन मानवजाति की बाह्य एकता मनुष्य की सचाई और सद्भावना पर निर्भर है।

१२ अगस्त, १९६७

*

विभाजन की शक्ति अस्थिर और अस्थायी है।

ऐक्य स्थिर शक्ति और सामञ्जस्यपूर्ण भविष्य के लिए काम करता है।

२५ अप्रैल, १९६९

*

जब मनुष्य उस मिथ्यात्व से घृणा करने लगेंगे जिसमें वे निवास करते हैं, तब संसार 'सत्य' के राज्य के लिए तैयार होगा।

१४ अगस्त, १९७१

*

अगर तुम संसार में एकता चाहते हो तो पहले अपनी निजी सत्ता के विभिन्न भागों में एकता लाओ।

१७ दिसम्बर, १९७१

*

अगर तुम अपने अन्दर से उन चीजों का उन्मूलन कर दो जो संसार में भ्रान्तिपूर्ण हैं तो संसार भ्रान्तिपूर्ण न रहेगा।

२३ अप्रैल, १९७२

आज का संसार

श्रीअरविन्द के शब्दों में हम "भागवत मुहूर्त" में जी रहे हैं और सारे संसार के रूपान्तरकारी विकास ने एक तेज और तीव्र गति अपना ली है।

*

यह सच है कि "हम" कठिन समय में से गुजर रहे हैं ("हम" का अर्थ है संसार) लेकिन जो डिगेंगे नहीं वे उसमें से पहले की अपेक्षा *बहुत अधिक मजबूत* होकर निकलेंगे।

*

निश्चय ही हम ऐसे काल में नहीं जी रहे जब मनुष्यों को उनके अपने साधनों पर छोड़ दिया गया हो।

भगवान् ने उन्हें प्रबुद्ध करने के लिए अपनी चेतना को नीचे भेजा है। जो भी उससे लाभ उठा सकते हों उन्हें लाभ उठाना चाहिये।

*

समस्त उथल-पुथल के बावजूद सत्य की विजय होगी।

*

अस्तव्यस्तता के अन्दर भी भागवत व्यवस्था का बीज है।

*

अन्दर से चीजें सुधरती हुई मालूम होती हैं लेकिन बाहर से तो ऐसा लगता है कि विघटन द्वार पर खड़ा है। आखिर हम हैं कहां?

एक सुन्दर उपलब्धि के सामने।

*

हर रोज चीजें ज्यादा ज्यादा बिगड़ती हुई मालूम होती हैं। वस्तुतः हमें पुरानी सड़ती हुई दुनिया से अधिकाधिक घृणा होती जा रही है और हमें एक ऐसे नये जगत् की स्थापना की आवश्यकता का अधिकाधिक विश्वास होता जा रहा है जो घिसे-पिटे रास्तों से दूर, जीवन का एक नया पहलू हो जिसमें नयी और अधिक सच्ची ज्योति अभिव्यक्त हो सके, एक नया जगत् आ सके जो स्वार्थभरी प्रतियोगिताओं और अहंकारपूर्ण संघर्षों पर आधारित न होकर सभी के कल्याण, ज्ञान और प्रगति के लिए व्यापक उत्सुक प्रयास पर आधारित हो, एक ऐसा समाज हो जो धन के लोभ और भौतिक शक्ति की जगह आध्यात्मिक अभीप्सा पर आधारित हो।

*

मैं जो देखती हूं वह आगामी कल की दुनिया है, लेकिन बीते कल की दुनिया अभी तक जिन्दा है और अभी कुछ समय और जीती रहेगी। पुरानी व्यवस्थाओं को तब तक चलने दो जब तक वे जिन्दा हैं।

धरती पर परिवर्तन धीरे-धीरे आते हैं।

चिन्ता न करो—भविष्य के लिए आशा बनाये रखो।

*

ठहरो और प्रतीक्षा करो। परिणाम निश्चित है—लेकिन मार्ग और समय अनिश्चित हैं।

अन्धकार और प्रकाश

रात के बावजूद आध्यात्मिक 'प्रकाश' मौजूद है।

*

प्रकाश को चाहिये कि चेतना को प्रदीप्त करे और अज्ञान की छायाएं सबमें से विलीन हो जायें।

३० दिसम्बर, १९३६

*

अपना हृदय खोलो तो प्रकाश अन्दर प्रवेश करेगा और उसमें निवास करेगा।

१२ जनवरी, १९४८

*

जीवन रात्रि के अन्धकार में एक यात्रा है। भीतरी प्रकाश के प्रति जागो।

१४ अप्रैल, १९५४

*

सभी पर्दों को विलीन हो जाना चाहिये और सभी के हृदयों में प्रकाश को पूरी तरह चमकना चाहिये।

२४ जून, १९५४

*

हर बाधा को गायब हो जाना चाहिये, सत्ता के हर भाग में अज्ञान के अन्धकार का स्थान भगवान् के ज्ञान को ले लेना चाहिये।

१२ अक्तूबर, १९५४

*

प्रकाश हर जगह है, शक्ति हर जगह है और संसार इतना छोटा-सा है।

१९५८

*

जगत् पर एक नये प्रकाश का उदय हो रहा है। उसे पाने तथा उसका स्वागत करने के लिए जागो और एक हो जाओ।

१९५९

*

ज्ञान की खोज में, अपने अन्धेपन में कुछ लोग उस प्रकाश को त्याग देते हैं जिसमें वे हैं—और उसमें प्रवेश करते हैं जो उनके लिए एक नया अन्धकार है।

१२ अक्तूबर, १९६४

*

अपने अन्धेपन में लोग 'प्रकाश' को छोड़ देते हैं और ज्ञान पाने के लिए अन्धकार में चले जाते हैं!

भूत, वर्तमान और भविष्य

भूत

भूत का उपयोग भविष्य में छलांग मारने के लिए कूदने के तख्ते की तरह करो।

२५ दिसम्बर, १९५३

*

बहुधा हम उस चीज से चिपके रहते हैं जो थी, हमें पिछली अनुभूति के परिणाम को खोने का डर रहता है, एक विशाल और उच्च चेतना को खोकर फिर से घटिया स्थिति में जा गिरने का डर रहता है। लेकिन हमें हमेशा सामने देखना और आगे बढ़ना चाहिये।

१३ अक्तूबर, १९५४

*

कभी-कभी पुरानी अनुभूति की स्मृति तक को विचारों से झाड़-बुहार डालने की जरूरत होती है ताकि वह सतत पुनर्निर्माण के काम में बाधा न डाले। सापेक्षताओं के इस जगत् में केवल वही भगवान् की पूर्ण अभिव्यक्ति को सम्भव बनाता है।

२१ नवम्बर, १९५४

*

स्मृतियों के सम्मोहन से सावधान। पुरानी अनुभूतियां जो चीज छोड़ जाती हैं वह है चेतना के विकास पर उस समय का उनका प्रभाव। लेकिन जब तुम अपने-आपको फिर से वैसी ही परिस्थितियों में रख कर उसी स्मृति को पुनरुज्जीवित करना चाहते हो तो तुम्हें पता लगता है कि अब वे सम्मोहन और शक्ति से खाली हैं। अब प्रगति के लिए उनका उपयोग खतम हो चुका।

*

चिरजीवी स्मरण : उसका स्मरण जिसने सत्ता को प्रगति करने में सहायता दी हो।

*

भावुकतापूर्ण स्मरण : इस स्मृति का विषय केवल वही परिस्थितियां होनी चाहियें जिन्होंने भगवान् की खोज करने में हमारी सहायता की।

*

किन्हीं कालों में समस्त पार्थिव जीवन चमत्कारिक रूप से ऐसी स्थितियों में से गुजरता है जिन्हें पार करने में अन्य कालों में उसे हजारों वर्ष लग जाते।

११ दिसम्बर, १९५४

*

हर क्षण तुम्हें सब कुछ पाने के लिए सब कुछ खोना जानना चाहिये, ज्यादा महान् प्रचुरता में नया जीवन पाने के लिए भूतकाल को एक मृत शरीर की तरह छोड़ना जानना चाहिये।

१२ दिसम्बर, १९५४

*

हर आदमी के लिए सब कुछ यह जानने पर निर्भर है कि वह उस भूतकाल का है जो अपने-आपको बनाये रखना चाहता है, वर्तमान का है जो अपने-आपको समाप्त कर रहा है या भविष्य का है जो जन्म लेने का इच्छुक है।

१६ फरवरी, १९६३

*

योग करने के लिए जो चीजें प्राप्त करना सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है उनमें से एक है भूतकाल के साथ आसक्ति से पिण्ड छुड़ाना।

बीती को बीत जाने दो, तुम्हें जो प्रगति करनी है केवल उसी पर

केन्द्रित होओ, भगवान् के प्रति उस समर्पण पर केन्द्रित होओ जो तुम्हें चरितार्थ करना है।

मेरे आशीर्वाद और मेरी सहायता सदा तुम्हारे साथ हैं।

सप्रेम।

१० जनवरी, १९६७

*

जब तक कि हम भूतकाल की आदतों और मान्यताओं से नाता न तोड़ लें तब तक भविष्य की ओर तेजी से आगे बढ़ने की आशा कम ही है।

२३ दिसम्बर, १९६७

*

वास्तव में भूतकाल को भूल जाना और सोचने की आदत से पिण्ड छुड़ाना कठिन काम है और उसके लिए कठोर "तपस्या" की जरूरत होती है। लेकिन अगर तुम्हें भागवत कृपा पर श्रद्धा है और तुम पूरे हृदय से उसके लिए याचना करो तो तुम ज्यादा आसानी से सफल होओगे।

आशीर्वाद।

२२ नवम्बर, १९६८

*

भूतकाल की लहरों को अपने पास से बह कर दूर चले जाने दो, जो समस्त आसक्तियों और समस्त दुर्बलताओं को भी अपने साथ बहा ले जायें।

भागवत चेतना का आलोकमय आनन्द उनका स्थान लेने के लिए प्रतीक्षा कर रहा है।

*

क्या पिछले कर्म साधना के मार्ग में आड़े नहीं आयेंगे?

तुम भूतकाल में जो कुछ भी रहे हो उसे भगवान् के प्रति पूर्ण निवेदन पोंछ डालता है।

*

मेरे प्रिय बालक,

तुम्हारी प्रार्थना सुन ली गयी है। तुम्हारा भूतकाल गायब हो गया है। चेतना में, प्रकाश में, शान्ति में विकसित होने की तैयारी करो।

हमारे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

*

बीती को बीत जाने दो।

केवल शाश्वत पर एकाग्र होओ।

आशीर्वाद।

१० दिसम्बर, १९७१

*

जब तुम वैश्व सामञ्जस्य के सम्पर्क में जीते हो तो समय कोई निशान छोड़े बिना बीत जाता है।

वर्तमान

भाग्य की घड़ी पर एक ही मिनट दो बार नहीं बजता।

*

जीवन में कुछ अनुपम क्षण होते हैं जो स्वप्न की तरह गुजर जाते हैं। तुम्हें उन्हें उड़ते समय ही पकड़ लेना चाहिये क्योंकि वे कभी लौटते नहीं।

*

वर्तमान ही जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण है।

१२ फरवरी, १९५२

*

जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण क्षण कौन-सा है? वर्तमान क्षण। क्योंकि

भूत का अब कोई अस्तित्व नहीं रहा और भविष्य का अभी तक अस्तित्व नहीं है।

१९५२

*

भय और संकोच के बिना, हमेशा अधिक ऊंचे, अधिक दूर तक उड़ो!

आज की आशाएं भावी कल की उपलब्धियां हैं।

भविष्य

भविष्य अनिवार्य रूप से भूत से अच्छा होता है। हमें केवल आगे बढ़ना है।

*

आगे बढ़ो, ज्यादा अच्छे भविष्य की ओर, कल की उपलब्धियों की ओर आगे बढ़ो।

*

हम एक-एक कदम करके, सत्य से सत्य की ओर बिना रुके चढ़ते चलेंगे जब तक कि हम आगामी कल की पूर्ण उपलब्धि तक न जा पहुंचें।

*

भविष्य : अभी तक अनुपलब्ध आश्वासन।

*

भविष्य आश्वासन से भरा है।

*

भविष्य उन लोगों के लिए सम्भावनाओं से भरा होता है जो अपने-आपको उसके लिए तैयार करना जानते हैं।

*

हर नयी उषा एक नयी प्रगति की सम्भावना लेकर आती है।

हम बिना जल्दबाजी के आगे बढ़ते हैं, क्योंकि हम भविष्य के बारे में विश्वस्त हैं।

*

मैं प्रस्ताव करती हूं कि हम केवल वही करें जो ठीक और उचित हो, भविष्य के बारे में बहुत अधिक न सोचें, उसे भागवत कृपा के संरक्षण में रहने दें।

प्रगति और पूर्णता

प्रगति

प्रगति सृष्टि में भागवत प्रभाव का चिह्न है।

*

प्रगति : वह कारण जिसके लिए हम धरती पर हैं।

*

पार्थिव जीवन का उद्देश्य है प्रगति। अगर तुम प्रगति करना बन्द कर दो तो तुम मर जाओगे। प्रत्येक क्षण जो तुम प्रगति किये बिना गुजारते हो तुम्हारी कब्र की ओर एक और कदम होता है।

*

जैसे ही तुम सन्तुष्ट हो जाते हो और किसी चीज के लिए अभीप्सा नहीं करते, तुम मरना शुरू कर देते हो। जीवन गति है, जीवन प्रयास है, वह आगे कूच कर रहा है, भावी रहस्योद्‌घाटनों और उपलब्धियों की ओर चढ़ रहा है। आराम करना चाहने से बढ़कर खतरनाक कुछ नहीं है।

*

तुम्हें हमेशा कुछ सीखना होता है, कुछ प्रगति करनी होती है और हर स्थिति में हम सबक सीखने और प्रगति करने का अवसर पा सकते हैं।

११ सितम्बर, १९३४

*

प्रगति : हर क्षण मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए जो कुछ तुम हो और जो कुछ तुम्हारे पास है उसे छोड़ने के लिए तैयार रहना।

२१ जून, १९५०

*

प्रगति का कोई अन्त नहीं है और हर रोज, तुम जो कुछ करते हो उसे ज्यादा अच्छी तरह करना सीख सकते हो।

२६ अप्रैल, १९५४

*

यह न सोचो कि तुम क्या थे, केवल उसी के बारे में सोचो जो तुम होना चाहते हो और तुम निश्चय ही प्रगति करोगे।

१ जून, १९५४

*

पीछे मत देखो, हमेशा आगे देखो, तुम जो करना चाहते हो उसे देखो —तो तुम निश्चय ही प्रगतिशील होओगे।

२ जून, १९५४

*

आओ, हम अपने हृदयों में प्रगति की अग्नि को प्रज्ज्वलित रखें।

२१ जून, १९५४

*

जो आज नहीं किया जा सकता, निश्चय ही वह बाद में किया जायेगा। प्रगति के लिए किया गया प्रयास कभी व्यर्थ नहीं हुआ।

२५ जून, १९५४

*

आओ, हम स्वयं प्रगति करें, औरों से प्रगति करवाने का यह सबसे अच्छा उपाय है।

२३ जुलाई, १९५४

*

गतिरोध का अर्थ है सड़ांध।

प्रगतिशील हुए बिना कोई उद्यम फल-फूल नहीं सकता।

हमेशा प्रगतिशील पूर्णता की ओर आगे बढ़ो।

२१ फरवरी, १९५७

*

कोई संस्था प्रगतिशील हुए बिना जीवित नहीं रह सकती।

सच्ची प्रगति है हमेशा भगवान् के अधिक निकट आना।

हर गुजरता हुआ वर्ष पूर्णता की ओर नयी प्रगति की पहचान होना चाहिये।

२१ फरवरी, १९५७

*

जो कुछ नया हो, रूढ़िवादी उसका विरोध करेंगे ही। अगर हम इस विरोध के आगे झुक जायें तो संसार कभी एक कदम भी आगे न बढ़ेगा।

७ नवम्बर, १९६१

*

जगत् इतनी तेजी से प्रगति करता है कि हमें किसी भी क्षण हम जो कुछ जानते हैं उसे पीछे छोड़ देने के लिए तैयार रहना चाहिये ताकि हम ज्यादा अच्छी तरह जान सकें।

३ मार्च, १९६३

*

विश्व के सतत आगे बढ़ते रहने में अभी तक जो कुछ प्राप्त हुआ है वह एक अधिक बड़ी उपलब्धि की ओर पहले कदम से अधिक नहीं है।

*

हर बीतते वर्ष को होना चाहिये—और वह अनिवार्य रूप से होता है—एक नयी विजय।

*

हर व्यक्ति और हर चीज हमेशा प्रगति कर सकते हैं। और मैं हमेशा सम्भव सुधार के लिए यह जानते हुए काम करती रहती हूं कि बड़ी-से-बड़ी कठिनाई हमेशा बड़ी-से-बड़ी विजय लाती है और मुझे विश्वास है कि इसके लिए तुम मेरे साथ हो।

पूर्णता

मिलने-जुलने से तुम पूर्ण नहीं बन जाओगे—पूर्णता को अन्दर से आना चाहिये।

१ मार्च, १९३६

*

पूर्णता पराकाष्ठा या अति नहीं है। वह सन्तुलन और सामञ्जस्य है।

*

पूर्णता कोई शिखर नहीं है, वह कोई पराकाष्ठा नहीं है। कोई पराकाष्ठा है ही नहीं। तुम जो भी करो, हमेशा उससे अच्छा करने की सम्भावना रहती है। और प्रगति का अर्थ यही है—ज्यादा अच्छे की सम्भावना।

*

पूर्णता शाश्वत है, जगत् का प्रतिरोध ही उसे क्रमिक प्रगतिशील बनाता है।

*

जब नीचे की ग्रहणशीलता ऊपर से आती हुई उस शक्ति के बराबर हो जाये जो अभिव्यक्त होना चाहती है तो कहा जा सकता है कि पूर्णता प्राप्त हो गयी है, यद्यपि वह प्रगतिशील बनी रहती है।

३ जनवरी, १९५१

*

जब तक तुम स्वयं पूर्ण न होओ तब तक तुम और किसी से पूर्ण

होने की आशा नहीं कर सकते। और पूर्ण होने का अर्थ है ठीक वैसा होना जैसा प्रभु चाहते हैं।

३ जून, १९५८

*

पूर्णता वह सब है जो हम अपनी उच्चतम अभीप्सा में होना चाहते हैं।

९ अक्तूबर, १९६६

*

पूर्णता की प्यास : सतत और बहुविध अभीप्सा।

सफलता

लक्ष्य को कभी न भूलो। अभीप्सा करना कभी बन्द न करो, अपनी प्रगति में कभी न रुको और निश्चय ही तुम सफल होओगे।

*

सफलता की शक्ति : उन लोगों की शक्ति जो अपने प्रयास को जारी रखना जानते हैं।

*

केवल कोशिश करना काफी नहीं है, तुम्हें सफल होना चाहिये।

*

तुम्हें केवल सफलता के लिए कभी कोशिश न करनी चाहिये।

७ अप्रैल, १९५२

*

(किसी ने सुझाव दिया कि आश्रम की अमुक पत्रिका के ग्राहकों से उनकी प्रतिक्रिया और उनकी आशाएं और सुझाव मांगे जायें तो वह

अधिक लोकप्रिय बन सकेगी। जब यह बात माताजी को बतायी गयी तो उन्होंने उत्तर दिया :)

चलो, हम जितने अधिक ओछे बन सकते हैं बन जायें। तब सफलता अवश्य आयेगी।

१६ जनवरी, १९५५

*

वह सब जो जनता को खुश करने के लिए और सफलता पाने के लिए किया जाता है ओछा होता है और मिथ्यात्व की ओर ले जाता है। इस विषय पर अधिक गहरा दृष्टिकोण संलग्न है।[१]

आशीर्वाद।

१८ जनवरी, १९६५

*

तुम्हें जो परिस्थिति दी गयी है उसका सत्य के पथ पर अच्छे-से-अच्छा उपयोग करो, उसका लाभ उठाना और बात है।

सारी सफलता तुम्हारे सत्य के परिमाण पर निर्भर है।

*

सफलता पूरी तरह सचाई पर निर्भर है।

२७ जून, १९७२

*

[१] यह रहा एक उपाय उन लोगों के लिए जो मिथ्यात्व से पिंड छुड़ाने के लिए उत्सुक हैं।

अपने-आपको खुश करने की कोशिश न करो, औरों को खुश करने की कोशिश भी न करो। केवल प्रभु को खुश करने की कोशिश करो।

क्योंकि केवल वे ही सत्य हैं। हम सब, हममें से हर एक, भौतिक शरीर में मनुष्य, प्रभु को छिपाने वाला मिथ्यात्व का लबादा है।

चूंकि वे ही अपने प्रति सच्चे हैं इसलिए हमें उन्हीं पर एकाग्र होना चाहिये, मिथ्यात्व के लबादों पर नहीं।

अतिमानसिक कार्यों में सफलता : धैर्यपूर्ण परिश्रम और पूर्ण निवेदन का परिणाम।

*

आध्यात्मिक सफलता है भगवान् के साथ सचेतन ऐक्य।

*

सफलता में से गुजरना दुर्भाग्य में से गुजरने की अपेक्षा अधिक कठिन अग्नि-परीक्षा है।

सफलता की घड़ी में मनुष्य को अपने-आपसे ऊपर उठने में अधिक जागरूक रहना चाहिये।

*

जैसे ही तुम यह सोचो कि तुम्हें किसी चीज में सफलता मिल गयी है, कि विरोधी शक्तियां उस पर आक्रमण करके उसे बिगाड़ने का निश्चय कर लेती हैं। और फिर जब तुम सफलता की बात सोचते हो तो अपनी अभीप्सा में भी ढीले पड़ जाते हो और जरा-सी ढील भी सारा खेल बिगाड़ देने के लिए काफी है। सबसे अच्छा यह है कि उसके बारे में सोचो मत, बस अपना कर्तव्य पूरा करते जाओ। लेकिन कभी-कभी जब तुम अपनी त्रुटियों और असफलता के बारे में सोचते जाते हो और उदास हो जाते हो तो सफलता को अपनी नाक के आगे रखकर कहो, "यह देखो।"†

विजय

हम शान्ति के लिए नहीं, विजय के लिए आये हैं क्योंकि विरोधी शक्तियों द्वारा शासित जगत् में विजय को शान्ति से पहले आना चाहिये।

फरवरी, १९३०

*

तुम्हें दो चीजें कभी न भूलनी चाहियें : श्रीअरविन्द की अनुकम्पा और दिव्य मां का प्रेम। इन दो चीजों के साथ तुम शत्रुओं को निश्चित रूप से पराजित करने और चिरस्थायी विजय पाने तक लगातार, धैर्य के साथ युद्ध करते रहोगे।

बाहर साहस, भीतर शान्ति और भागवत कृपा पर मूक अटल विश्वास।

१९ मई, १९३३

*

शत्रु के बारम्बार आक्रमणों के सामने तुम्हें अपनी श्रद्धा को अक्षुण्ण बनाये रखना और विजय पाने तक डटे रहना चाहिये।

२ फरवरी, १९४२

*

भगवान् की परम विजय निस्सन्देह, निश्चित है।

६ अप्रैल, १९४२

*

विजय निश्चित है और इस निश्चिति के साथ धैर्यपूर्वक हम कितने ही गलत सुझावों और विरोधी आक्रमणों का सामना कर सकते हैं।

*

विजय की निश्चिति अधिकाधिक ऊर्जा के साथ अनन्त धैर्य प्रदान करती है।

*

आओ, हम सच्ची, निष्कपट अभीप्सा के साथ सतत सद्भावना रखें, विजय निश्चित है।

१९ मई, १९५४

*

बीते कल की विजय आगामी कल की विजय की ओर एक सोपान मात्र है।

७ सितम्बर, १९५४

*

विजय की निश्चिति हमारे विश्वास की सचाई में है।

३ अक्तूबर, १९५४

*

ऐसी कोई चीज नहीं जो अन्ततः भगवान् की सम्पूर्ण विजय की ओर ले जाने का यन्त्र न हो।

जुलाई १९५६

*

मधुर मां,

आपने लिखा है :

"आदर्श बालक साहसी होता है। उसे चाहे बहुत बार पराजित होना पड़े, वह हमेशा अन्तिम विजय के लिए लड़ता रहता है।"

यहां "अन्तिम विजय" का क्या मतलब है? विजय और पराजय क्या हैं? हमारे खेलकूद में ये किस चीज की प्रतीक हैं?

मैं खेलों में विजय की बात नहीं कर रही थी। मैं कर रही थी अज्ञान और मूढ़ता पर चेतना की विजय की बात।

१९ मार्च, १९७०

*

भागवत विजय सभी विघ्न-बाधाओं को पार कर लेगी।

रूपान्तर और अतिमानस

रूपान्तर

There is a
Supreme Divine Consciousness.
We want to manifest this
Divine Consciousness in the
physical life.

Blessings

एक परम दिव्य चेतना है। हम इस दिव्य चेतना को भौतिक जीवन में अभिव्यक्त करना चाहते हैं।

आशीर्वाद।

*

अपने-आपको भागवत चेतना में खो देना लक्ष्य नहीं है। लक्ष्य है भागवत चेतना को जड़ द्रव्य में प्रविष्ट होने देना और उसे रूपान्तरित करना।

*

भागवत चेतना तुम्हारा रूपान्तर करने के लिए काम कर रही है, उसे अपने अन्दर निर्बाध रूप से काम करने देने के लिए तुम्हें उसकी ओर खुलना चाहिये।

१७ अक्तूबर, १९३७

*

सभी चीजों में सबसे अधिक कठिन है भागवत चेतना को भौतिक जगत् में उतारना; क्या इसीलिए इस प्रयास को छोड़ देना चाहिये? हर्गिज नहीं।

२ जुलाई, १९५५

*

तुम उस आध्यात्मिक स्थिति के हो जिसे जड़ द्रव्य को अस्वीकार करने की जरूरत पड़ती है और उससे बच निकलना चाहती है। आगामी कल की आध्यात्मिकता जड़ द्रव्य को लेकर उसे रूपान्तरित करेगी।

३० जुलाई, १९६५

*

सच्ची आध्यात्मिकता जीवन को रूपान्तरित करती है।

***

मानवीय तरीकों के छिछलेपन और अक्षमता के एक वर्ष के अनुभव के बाद समय आ गया है कि अब सच्चे लक्ष्य, रूपान्तर की ओर ले जाने वाली खड़ी चढ़ाई पर चढ़ना शुरू किया जाये।

*

रूपान्तर : सृष्टि का लक्ष्य।

*

नया जगत् : रूपान्तर का परिणाम।

*

तीन शर्तें

एक ऐसा कार्य जिसका लक्ष्य है पार्थिव प्रगति, तब तक नहीं शुरू किया जा सकता जब तक उसे भगवान् की स्वीकृति और सहायता प्राप्त न हो।

वह तब तक नहीं टिक सकता जब तक ऐसी निरन्तर भौतिक वृद्धि न हो जो दिव्य प्रकृति की इच्छा को सन्तुष्ट करे।

उसे मानवीय दुर्भावना के सिवा कुछ भी समय से पहले नष्ट नहीं कर सकता। यह दुर्भावना ही भगवान् की विरोधी शक्तियों के यन्त्र का काम करती है जो भगवान् की अभिव्यक्ति और पृथ्वी के रूपान्तर में यथासम्भव देर लगाना चाहती हैं।

*

तुम्हें एक बात जान लेनी चाहिये और उसे कभी न भूलना चाहिये : रूपान्तर के कार्य में जो कुछ सत्य और निष्कपट है उसे हमेशा रखा जायेगा, जो कुछ मिथ्या और कपटपूर्ण है वह गायब हो जायेगा।

*

जैसे-जैसे रूपान्तर प्रगति करेगा वैसे-वैसे धुंधलापन अधिकाधिक गायब होता जायेगा।

*
* *

तुममें से हर एक उन कठिनाइयों में से एक-एक का प्रतिनिधित्व करता है जिन्हें रूपान्तर के लिए पार करना होगा।

*

जब तक तुम्हारे अन्दर अनन्त धैर्य और अटल अध्यवसाय न हो तब तक रूपान्तर के पथ पर न चलना ही ज्यादा अच्छा है।

*

हर एक दुःख रूपान्तर का रास्ता तैयार करे।

३ जुलाई, १९५४

*

स्थिर-शान्त रहो और केवल काम के लिए ही नहीं, रूपान्तर सिद्ध करने के लिए भी बल और सामर्थ्य जुटाओ।

२८ जुलाई, १९५५

*

पूर्ण समग्र सन्तुलन : तुम रूपान्तर के लिए तैयार हो।

*

रूपान्तर के लिए भगवान् को निरन्तर याद रखना अनिवार्य है।

*

बस, भगवान् के सच्चे आज्ञाकारी बने रहो—यह तुम्हें रूपान्तर के मार्ग पर दूर तक ले जायेगा।

*

बाहर के सारे रव को नीरव कर दो, भगवान् की सहायता के लिए अभीप्सा करो। जब वह आये तो उसकी ओर पूर्ण रूप से खुलो और उसकी क्रिया के आगे समर्पण करो। यह प्रभावकारी रूप से तुम्हारा रूपान्तर कर देगी।

*

भागवत प्रेम में होती है रूपान्तर की परम शक्ति।

*

रूपान्तर की शक्ति भागवत प्रेम में होती है। उसके अन्दर यह शक्ति इसलिए होती है क्योंकि उसने अपने-आपको जगत् के रूपान्तर के लिए

अर्पित कर दिया है और हर जगह अभिव्यक्त हुआ है। उसने अपने-आपको केवल मनुष्य में ही नहीं बल्कि द्रव्य के प्रत्येक अणु-परमाणु में उंडेल दिया है ताकि जगत् को उसके मौलिक 'सत्य' में वापिस ले आये। जिस क्षण तुम उसकी ओर खुलते हो, तुम्हें उसकी रूपान्तर की शक्ति भी प्राप्त होती है। लेकिन तुम उसे मात्रा के हिसाब से नहीं नाप सकते, जो चीज अनिवार्य है वह है सच्चा सम्पर्क। क्योंकि तुम देखोगे कि उसके साथ सच्चा सम्पर्क तुम्हारी सारी सत्ता को एकदम पूरी तरह भर देने के लिए काफी है।

*

और जब परम प्रेम की अभिव्यक्ति का दिन आयेगा, परम प्रेम के पारदर्शक, सघन अवतरण का दिन, तो वस्तुतः वही रूपान्तर का क्षण होगा। क्योंकि कोई चीज उसका प्रतिरोध न कर सकेगी।

रूपान्तर और सत्ता के भाग

क्या रूपान्तर बहुत उच्च स्तर की अभीप्सा, समर्पण और ग्रहणशीलता की मांग नहीं करता?

रूपान्तर सम्पूर्ण और समग्र समर्पण की मांग करता है। लेकिन क्या सभी सच्चे निष्कपट साधकों की यही अभीप्सा नहीं होती?

समग्र समर्पण का अर्थ है सत्ता की सभी अवस्थाओं में, जड़तम भौतिक से लेकर सूक्ष्मतम तक, सीधी खड़ी रेखा में समर्पण।

सम्पूर्ण समर्पण का अर्थ है क्षैतिज रूप में सभी विभिन्न और बहुत बार परस्पर विरोधी भागों का समर्पण, जिनसे सत्ता का बाहरी, भौतिक, प्राणिक और मानसिक भाग बनता है।

*

चैत्य के चारों ओर व्यवस्थित सत्ता : रूपान्तर का पहला चरण।

*

मानसिक उद्घाटन : रूपान्तर की ओर मन का पहला चरण।

*

मानसिक प्रार्थना : रूपान्तर की अभीप्सा करने वाले मन के अन्दर सहज।

*

समझने की प्यास : रूपान्तर के लिए बहुत उपयोगी।

*

भौतिक मन में ईमानदारी : रूपान्तर के लिए अनिवार्य प्राथमिक अवस्था।

*

प्राण का सम्पूर्ण समर्पण : रूपान्तर के मार्ग में एक महत्त्वपूर्ण स्थिति।

*

भावुकतापूर्ण कामनाओं का त्याग : रूपान्तर के लिए अनिवार्य।

*

केवल मन और प्राण ही नहीं, शरीर को भी अपने सभी कोषाणुओं में भागवत रूपान्तर के लिए अभीप्सा करनी चाहिये।

*

भौतिक नमनीयता : रूपान्तर के लिए आवश्यक अवस्थाओं में से एक।

*

भौतिक अपने-आपको निष्कपट रूप से भगवान् के अर्पित करे तो वह रूपान्तरित हो जायेगा। यह अपने-आपको अहं से मुक्त करने के संकल्प का प्रमाण है।

*

भौतिक प्रकृति में भगवान् के प्रति नम्रता : रूपान्तर के लिए आवश्यक पहली वृत्ति।

*

भौतिक गतिविधियों में चैत्य-प्रकाश : भौतिक के रूपान्तर के लिए पहला चरण।

*

जड़-भौतिक गतिविधियों में चैत्य का प्रकाश : रूपान्तर के लिए अनिवार्य स्थिति।

*

जड़-भौतिक में चैत्य प्रबोध : आध्यात्मिक जीवन के प्रति खुला जड़-भौतिक।

*

अतिमानसिक निदेशन तले जड़-भौतिक : उसके रूपान्तर के लिए आवश्यक अवस्था।

*

अवचेतना में अतिमानसिक प्रकाश : रूपान्तर के लिए अनिवार्य शर्त।

*

अवचेतना में अतिमानसिक प्रभाव : अपने विनीत रंग-रूप में यह रूपान्तर के लिए महान् शक्ति है।

*

रूपान्तर वह परिवर्तन है जिसके द्वारा सत्ता के सभी तत्त्व और सभी गतिविधियां अतिमानसिक सत्य को अभिव्यक्त करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

अतिमानस

सिद्धि : पृथ्वी पर अतिमानसिक सत्य की स्थापना।

*

अतिमानसिक सत्य में सभी मिथ्यात्व विलीन हो जायेंगे।

*

अतिमानस अपने-आपमें केवल सत्य ही नहीं, बल्कि मिथ्यात्व का नितान्त निषेध भी है। अतिमानस ऐसी चेतना में न कभी उतरेगा, न प्रतिष्ठित और अभिव्यक्त होगा जो मिथ्यात्व को आश्रय देती हो।

स्वभावत: मिथ्यात्व को जीतने की पहली शर्त है झूठ न बोलना, यद्यपि यह केवल प्रारम्भिक कदम ही है। अगर लक्ष्य को पाना ही है तो सत्ता में और उसकी सभी गतिविधियों में निरपेक्ष, समग्र निष्कपटता को स्थापित करना ही होगा।

१८ अप्रैल, १९३२

*

लड़ाई-झगड़े नहीं : अतिमन के आगमन को सहज बनाने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण शर्त।

*

धरती पर अतिमानसिक प्रकाश के अवतरण के लिए शर्तें हैं, अन्धकार-रहित ज्योतिर्मयी चेतना जो अतिमानसिक प्रकाश की ओर मुड़ी हो और अतिमानसभावापन्न नमनीयता से भरी हो।

*

हमें कभी यह न भूलना चाहिये कि हमारा लक्ष्य है अतिमानसिक सद्वस्तु को अभिव्यक्त करना।

२५ मई, १९५४

*

दिव्य शक्ति अभिव्यक्त होने के लिए प्रतीक्षा कर रही है। हमें नये-नये रूपों की खोज करनी चाहिये जिनके द्वारा 'वह' अभिव्यक्त हो सके।

१२ जून, १९५४

*

नयी शक्ति की अभिव्यक्ति के लिए नये रूपों की जरूरत है।

२६ जून, १९५४

*

अतिमानसिक शक्ति अभिव्यक्त होने के लिए तैयार है। आओ, हम भी तैयार हो जायें और वह अभिव्यक्त होगी।

७ जुलाई, १९५४

*

जब अतिमानस अभिव्यक्त होता है तो पृथ्वी पर अद्वितीय आनन्द फैल जाता है।

८ जुलाई, १९५४

*

समस्त भय, सारी अनबन, सभी झगड़े छोड़ दो। अपनी आंखें और अपने हृदय खोलो—अतिमानसिक शक्ति मौजूद है।

९ जुलाई, १९५४

*

धीरज, बल, साहस और शान्त तथा अदम्य शक्ति के साथ हम अपने-आपको अतिमानसिक शक्ति को ग्रहण करने के लिए तैयार करेंगे।

१० जुलाई, १९५४

*

नये विचारों को व्यक्त करने के लिए नये शब्दों की जरूरत होती है,

नयी शक्तियों को अभिव्यक्त करने के लिए नये रूप जरूरी हैं।

१ अगस्त, १९५४

*

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि हम यहां पर अतिमानसिक सत्य और ज्योति की सेवा करने और अपने अन्दर तथा धरती पर उसकी अभिव्यक्ति की तैयारी करने के लिए हैं।

१३ अगस्त, १९५४

*

वैश्व अभिव्यक्ति में हर नयी प्रगति का अर्थ होता है एक नये आविर्भाव की सम्भावना।

२१ अगस्त, १९५४

*

धरती इतनी अधिक तमिस्रा से घिरी है कि केवल अतिमानसिक अभिव्यक्ति ही उसे विलीन कर सकती है।

२६ अगस्त, १९५४

*

हम बिना रुके, हमेशा अधिक पूर्ण अभिव्यक्ति की ओर, हमेशा पूर्णतर और उच्चतर चेतना की ओर आगे बढ़ते रहें।

३१ अगस्त, १९५४

*

अतिमानसिक शक्ति में वह सामर्थ्य होती है जो अधिक-से-अधिक अंधेरी घृणा को ज्योतिर्मयी शान्ति में बदल सकती है।

११ अक्तूबर, १९५४

*

हम सारे अज्ञान से मुक्त होने के लिए, अपने अहंकार से मुक्त होने के लिए अभीप्सा करते हैं ताकि हम अतिमन की महिमामयी अभिव्यक्ति के द्वारों को पूरा-पूरा खोल सकें।

२३ अक्तूबर, १९५४

*

हमारा सारा जीवन, हमारे सारे कर्म अतिमानसिक पूर्णता पाने की ओर एक सतत अभीप्सा होने चाहियें।

२४ अक्तूबर, १९५४

*

प्रशान्त और निष्कंप चेतना जगत् की सीमाओं पर शाश्वतता के स्फिंक्स[१] की तरह नजर रखती है। फिर भी वह किसी-किसी को अपना रहस्य बता देती है।

इसलिए हमें यह निश्चिति प्राप्त है कि जो किया जाना है वह अवश्य किया जायेगा और हमारी वर्तमान व्यक्तिगत सत्ता को वास्तव में इस महान् विजय में, इस नूतन अभिव्यक्ति में सहयोग देने के लिए निमन्त्रण मिला है।

११-१२ नवम्बर, १९५४

*

सत्ता को अभिव्यक्ति की समस्त सम्भावना के समग्र प्राचुर्य को पाने के लिए एक-एक करके सभी बाधाओं को गिराना होगा।

१४ दिसम्बर, १९५४

*

धरती पर एक नया प्रकाश आयेगा, सत्य और सामञ्जस्य का प्रकाश।

२४ दिसम्बर, १९५४

*

[१] प्राचीन मिस्र की मान्यता के अनुसार एक प्राणी जिसके रहस्य को जानना प्रायः असम्भव है।

अतिमानसिक अभिव्यक्ति : इसका स्वागत होगा।

*

धरती पर अतिमानस के अभिव्यक्त होने से पहले इन प्रश्नों का उत्तर भला कैसे दिया जा सकता है? केवल उसकी अभिव्यक्ति के बाद ही हम जान सकते हैं कि वह कैसे आया और वह कैसे अभिव्यक्त होता है?

धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति

२९ फरवरी, १९५६

बुधवार के सम्मिलित ध्यान के समय

आज की शाम, ठोस और भौतिक भागवत उपस्थिति तुम्हारे बीच उपस्थित थी। मेरा रूपाकार जीवन्त स्वर्ण का हो गया था जो विश्व से बड़ा था, और मैं एक बृहत् तथा विशालकाय सोने के दरवाजे के सामने खड़ी थी जो जगत् को भगवान् से अलग कर रहा था।

जैसे ही मैंने दरवाजे की ओर देखा, मैंने चेतना की एक ही गति में जाना और संकल्प किया कि "*समय आ गया है*", और दोनों हाथों से एक बहुत बड़े सोने के हथौड़े को उठाकर मैंने एक प्रहार किया, दरवाजे पर मात्र एक प्रहार और दरवाजा टुकड़े-टुकड़े हो गया।

तब अतिमानसिक 'प्रकाश', 'शक्ति' और 'चेतना' तीव्र गति से धरती पर उतरीं और अबाध गति से बह निकलीं।[1]

[1] १९५६ के अधिवर्ष में लिखा यह वक्तव्य पहली बार धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति के पहले वार्षिकोत्सव २९ फरवरी, १९६० के सन्देश के रूप में सार्वजनिक रूप से बांटा गया था।

1956

29 février – 29 mars

Seigneur, Tu as voulu et je réalise :
Une lumière nouvelle point sur la terre,
Un monde nouveau est né,
Et les choses promises sont accomplies.

29 February – 29 March

Lord, Thou hast willed, and I execute :
A new light breaks upon the earth,
A new world is born.
The things that were promised are fulfilled

१९५६

२९ फरवरी—२९ मार्च

प्रभु तूने चाहा और मैं चरितार्थ कर रही हूं।
धरती पर एक नया प्रकाश फूट रहा है।
एक नया जगत् जन्म ले चुका है।
जिन चीजों के लिए वचन दिया गया था वे चरितार्थ हो गयी हैं।

*

24th April 1956

The manifestation of the Supramental upon earth is no more a promise but a living fact, a reality.

It is at work here, and one day will come when the most blind, the most unconscious, even the most unwilling shall be obliged to recognise it.

२४ अप्रैल, १९५६

धरती पर अतिमानस का अवतरण अब एक आश्वासन भर नहीं है बल्कि एक जीवन्त तथ्य, एक यथार्थता बन चुका है।

वह यहां काम में लगा है, और एक दिन आयेगा जब बिल्कुल अन्धा, बिल्कुल अचेतन, यहां तक कि बिलकुल अनिच्छुक व्यक्ति भी उसे पहचानने को बाधित होगा।

*

मैं ऐसी अतिमानसिक अभिव्यक्ति की बात कर रही हूं जो सबके लिए, यहां तक कि अधिक-से-अधिक अज्ञानी के लिए भी प्रत्यक्ष हो—जिस तरह जब मानव अभिव्यक्ति हुई थी तो वह सबके लिए प्रत्यक्ष थी।

*

उन सबको जो अभीप्सा करते हैं

अपने-आपको नयी 'शक्ति' के प्रति खोलो। उसे अपने अन्दर रूपान्तर का अपना कार्य करने दो।

अप्रैल १९५६

*

अपने-आपको उस नये प्रकाश के प्रति खोलो जो धरती पर उदित हुआ है और तुम्हारे सामने एक ज्योतिर्मय पथ प्रशस्त हो जायेगा।

२८ मई, १९५६

*

काल की परवाह न करते हुए, देश के भय से रहित, अग्नि-परीक्षा की ज्वालाओं से पवित्र होकर उठते हुए, हम बिना रुके, अपनी लक्ष्य-सिद्धि—अतिमानसिक विजय—की ओर उड़ेंगे।

२४ अप्रैल, १९५६

*

वर दे कि नया प्रकाश धरती पर फैले और मानव जीवन की अवस्था को बदल दे।

६ जनवरी, १९५७

*

निस्सन्देह, यह अतिमानसिक प्रकाश है।

अपने-आपको तनाव की स्थिति में न रखो, खुले रहो, निष्क्रिय बनकर इसे अपने शरीर में गहरे पैठने दो। इसमें तुम्हारे अन्दर बल और स्वास्थ्य को लौटा लाने की शक्ति है।

*

एक नये जगत् का जन्म हो चुका है—वे सब जो इसमें स्थान पाना चाहते हैं उन्हें सचाई के साथ इसके लिए अपने-आपको तैयार करना होगा।

१५ अगस्त, १९५७

*

एक नये जगत् के जन्म की घोषणा करते हुए, हम उन सबको जो उसमें स्थान पाना चाहते हैं, सचाई के साथ अपने-आपको तैयार करने के

लिए आमन्त्रित करते हैं।

१५ अगस्त, १९५७

*

पिछली रात मुझे इसका अन्तर्दर्शन हुआ कि अगर लोग पर्याप्त रूप से तैयार न हुए तो अतिमानसिक जगत् कैसा होगा। जो हो सकता है उसके अनुपात में जगत् की वर्तमान अस्तव्यस्तता कुछ भी नहीं है। जरा कल्पना करो एक बहुत ही शक्तिशाली इच्छा की जिसमें अपनी मर्जी के अनुसार जड़-भौतिक को बदलने का सामर्थ्य हो! अगर सामूहिक एकता शक्ति की वृद्धि के अनुपात में नहीं बढ़ी तो उसके परिणामस्वरूप आने वाले संघर्ष हमारे सभी जड़-भौतिक संघर्षों से कहीं अधिक तीव्र और अस्तव्यस्त होंगे।

१५ फरवरी, १९५८

*

अनित्य शरीर का जन्मोत्सव मनाना हृदय की कुछ निष्ठापूर्ण भावनाओं को सन्तुष्ट कर सकता है।

शाश्वत चेतना की अभिव्यक्ति का उत्सव विश्व-इतिहास के प्रत्येक मुहूर्त में मनाया जा सकता है।

लेकिन एक नवीन जगत् के, अतिमानसिक जगत् के आगमन का उत्सव मनाना एक अद्‌भुत और असाधारण सौभाग्य की बात है।

२१ फरवरी, १९५८

*

वह चाहे जिस नाम से पुकारा जाये, अतिमानस एक सत्य और तथ्य है और उसका राज्य निश्चित है।

२७ मार्च, १९५९

*

नये जगत् का आगमन अवश्यम्भावी तथ्य है और उसे चाहे जो नाम

दे लो, उसकी विजय निश्चित है।

*

अतिमानसिक प्रभाव मनुष्य को उस सबसे मुक्त करता है जो उसे पशु बने रहने के लिए पीछे खींचता है।

*

अतिमानसिक क्रिया—ऐसी क्रिया जो ऐकान्तिक नहीं अपितु समग्र है।

*

अतिमानसिक ज्ञान : सभी समस्याओं का अचूक अन्तर्दर्शन।

*

अतिमानसिक चेतना : भव्य रूप से जाग्रत् और शक्तिशाली, यह आलोकित है, अपने बारे में निश्चित और अपनी गतिविधियों में अचूक है।

*

अतिमानसिक चेतना के प्रकाश में एक अधिक अच्छे भविष्य के निर्माता बनना।

*

(धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति के प्रथम वार्षिकोत्सव के लिए सन्देश)

स्वर्णिम दिवस

अब से २९ फरवरी परम प्रभु का दिवस होगा।

१९६०

*

आपने २९ फरवरी १९६० को जो पदक बांटे थे उनमें श्रीअरविन्द के प्रतीक में एक परिवर्तन है। बीच के दो त्रिकोण जिनके बीच के समचतुष्कोण में कमल होता है वे त्रिकोण नहीं हैं और उनके स्थान पर सूर्य की किरणें हैं जो समचतुष्कोण से फूट रही हैं। निश्चय ही आपने यह विशिष्ट परिवर्तन किसी महत्त्वपूर्ण कारण से किया होगा? क्या आप बतायेंगी कि इस परिवर्तन का क्या कारण है?

श्रीअरविन्द का प्रतीक देने का मेरा कोई इरादा न था।

पदक पर दिये गये चित्र का अर्थ है—

अवतार की अभिव्यक्ति से नव-सर्जन की बारह किरणें निकल रही हैं।

कमल—अवतार

समचतुष्कोण—अभिव्यक्ति

बारह किरणें—नयी सृष्टि

'बुलेटिन' के नवम्बर १९५७ के अंक में आपने अपनी वार्ता 'सच्चा अभियान' में कहा है :

"पिछले वर्ष जब मैंने तुम्हारे सामने अतिमानसिक चेतना, प्रकाश और शक्ति की अभिव्यक्ति की घोषणा की थी तो मुझे यह जोड़ देना चाहिये था कि यह घटना एक नये जगत् के जन्म की अग्रगामिनी है।"

इसका यह अर्थ हुआ कि नये जगत् का जन्म अतिमानसिक चेतना की अभिव्यक्ति के बाद हुआ। आपने २९ फरवरी, १९५६ अतिमानसिक अभिव्यक्ति की तारीख निश्चित की है। उसके बाद नये जगत् के जन्म की कौन-सी तारीख माननी चाहिये?

आधे घण्टे बाद।

'बुलेटिन' के १९५८ के नवम्बर अंक में आपने अपने उत्तर 'नया जन्म' में कहा है :

"तुम्हें आश्वासन देने के लिए मैं कह सकती हूं कि इस एक तथ्य

से कि तुम धरती पर इस क्षण जी रहे हो... तुम जिस हवा में सांस लेते हो उसके साथ-साथ इस नये अतिमानसिक तत्त्व को ग्रहण करते हो जो धरती के वातावरण में फैल रहा है और जो तुम्हारे अन्दर उन चीजों को तैयार कर रहा है जिन्हें तुम अचानक, उस समय अभिव्यक्त करोगे जब तुम निर्णायक कदम उठाओगे।

"यह तुम्हें निर्णायक कदम उठाने में सहायता करेगा या नहीं यह एक और प्रश्न है जिस पर अध्ययन करना होगा, क्योंकि अनुभूतियां अभी भी हो रही हैं और अब अधिकाधिक होंगी क्योंकि ये एकदम नयी तरह की हैं, व्यक्ति पहले से यह नहीं कह सकता कि क्या होगा; पहले उसे अध्ययन करना होगा, बारीक अध्ययन के बाद ही वह निश्चित रूप से यह कह सकने में समर्थ होगा कि यह अतिमानसिक तत्त्व नये जन्म के कार्य को सरल बनायेगा या नहीं। इसके बारे में मैं तुम्हें कुछ समय बाद बताऊंगी। फिलहाल ज्यादा अच्छा है कि इन चीजों पर आश्रित न होओ, बल्कि आध्यात्मिक जीवन में जन्म लेने का मार्ग अपनाओ।"

क्या अब आप निश्चितता के साथ कह सकती हैं कि यह अतिमानसिक तत्त्व इस नये जन्म की सिद्धि के लिए निर्णायक रूप से सहायता करेगा या नहीं?

स्पष्ट रूप से।

२६ मार्च, १९६०

*

आपने कहा है कि हमें "अतिमानसिक शक्तियों के स्पन्दन के साथ एक घनिष्ठ, निरन्तर, निरपेक्ष, अपरिहार्य ऐक्य को विकसित करना चाहिये।" इस स्पन्दन को अनुभव करने की क्षमता कैसे प्राप्त की जाये? अतिमानसिक अभिव्यक्ति द्वारा नये जगत् के सर्जन और जगत् की नयी अवस्थाओं के कारण साधना की प्रक्रिया में कोई परिवर्तन आया है क्या? नयी अवस्थाओं में इस प्रगति को तेज करने के लिए साधक को क्या करना चाहिये?

हां, साधना में बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है, क्योंकि तुम्हें अब स्वयं भौतिक में साधना करनी पड़ेगी।

भौतिक रूपान्तर पर एकाग्र होओ; भौतिक से मेरा मतलब है—मानसिक, प्राणिक और शारीरिक चेतना पर।

तुम अपने मन में अनुभूति पाने की कोशिश कर रहे हो, लेकिन मन उसे नहीं पा सकता। अपने मन से बाहर निकल आओ और तुम समझ जाओगे कि मैं क्या कहना चाहती हूं।

*

मनुष्य को यह समझना चहिये कि अपनी सभी बौद्धिक उपलब्धियों के बावजूद वह अतिमानसिक स्पन्दनों का अनुभव कर सकने में उतना ही अक्षम है जितना पशु मानसिक स्पन्दनों का अनुभव कर सकने में उस समय अक्षम था जब मानवजाति के आने से पहले धरती पर उनका राज्य था।

*

कोई बारहसिंगा पानी पीने के लिए किसी जंगल में से गुजरता है, लेकिन वह वहां से गुजरा है इसे प्रमाणित करने के लिए वहां क्या है? अधिकतर लोग कोई चिह्न नहीं देखेंगे; शायद उन्हें यह भी मालूम न हो कि बारहसिंगा होता क्या है, और जो यह जानते हैं वे शायद यह न कह सकें कि वह इस रास्ते से गुजरा था। लेकिन वह जिसने शिकार का विशेष अध्ययन किया है, जो पदचिह्न पहचानता है, स्पष्ट चिह्न देखेगा और वह न केवल यह बतला सकेगा कि किस तरह का बारहसिंगा गुजरा है बल्कि उसका आकार, उसकी उम्र, उसका नर या मादा होना इत्यादि भी बता देगा। उसी तरह ऐसे लोग भी जरूर होंगे जिनमें शिकारी जैसा आध्यात्मिक ज्ञान होता है, जो यह बता सकें कि व्यक्ति अतिमानस के सम्पर्क में है या नहीं, जब कि साधारण मनुष्य, जिन्होंने अपने मन को प्रशिक्षित नहीं किया इस चीज को नहीं देख पायेंगे। कहा गया है कि अतिमानस धरती पर उतर आया है, उसने अपने-आपको अभिव्यक्त कर दिया है। इस

विषय के बारे में जितना लिखा गया है मैंने वह सारा पढ़ा है, लेकिन मैं ऐसे अज्ञानियों में से हूं जो कुछ देख नहीं पाते, किसी चीज का अनुभव नहीं करते। क्या कोई ऐसा व्यक्ति जिसका अन्तर्दर्शन अधिक प्रशिक्षित हो, मुझे यह नहीं बता सकता कि किन लक्षणों से मैं यह जान सकता हूं कि व्यक्ति अतिमानस के सम्पर्क में है?

दो अकाट्य लक्षण यह प्रमाणित करते हैं कि व्यक्ति अतिमानस के सम्पर्क में है :

१. पूर्ण और सतत समता,

२. ज्ञान में निरपेक्ष दृढ़ निश्चितता।

समता को पूर्ण होने के लिए, सभी परिस्थितियों, सभी घटनाओं, भौतिक या मनोवैज्ञानिक सम्पर्कों के प्रति, उनके स्वभाव या प्रभाव की परवाह न करते हुए अपरिवर्तनशील, सहज और प्रयासहीन होना चाहिये।

तादात्म्य द्वारा अचूक ज्ञान का निरपेक्ष और अकाट्य दृढ़ विश्वास।

फरवरी १९६१

*

सभी परिस्थितियों में चाहे वे जड़-भौतिक हों या मनोवैज्ञानिक, एक पूर्ण समता और ज्ञान में निरपेक्षता, ऐसा ज्ञान जो मन के द्वारा नहीं बल्कि तादात्म्य द्वारा आता है। जिस व्यक्ति का अतिमानस के साथ सम्पर्क होगा उसमें ये दो गुण होते हैं।

तुम तब तक नहीं समझ सकते जब तक तुम्हें अनुभूति न हो।

२३ फरवरी, १९६१

*

क्या यह पहली बार नहीं है कि अतिमानस धरती पर उतरा है?

निश्चित रूप से सारी पृथ्वी के रूपान्तर की व्यापक शक्ति के रूप में अतिमानस पहली बार धरती पर उतरा है। पार्थिव सृष्टि में यह एक नया आरम्भबिन्दु है।

लेकिन हो सकता है कि पहले भी एक बार वचनबद्धता या उदाहरण के रूप में अतिमानसिक शक्ति किसी व्यक्ति के अन्दर आंशिक और अस्थायी रूप में अभिव्यक्त हुई हो।

२६ अक्तूबर, १९६४

*

१९५६ में आपने कहा था : "अतिमानसिक 'प्रकाश', 'चेतना' और 'शक्ति' अभिव्यक्त हो गये हैं। अतिमानसिक 'आनन्द' अब तक नहीं आया।"

४.५.६७ एक बहुत महत्त्वपूर्ण तारीख मानी जाती है जब किसी विशेष चीज के होने की आशा है। क्या आप कृपया बतायेंगी कि क्या उस तारीख को अतिमानसिक 'आनन्द' अभिव्यक्त होगा?

पहले अतिमानसिक अवतरण का वार्षिकोत्सव हर चार साल के बाद आता है (अधिवर्ष)। मुझे नहीं समझ में आता कि इस मामले में ७ की संख्या का क्या स्थान है। यह साल १९६४ (अधिवर्ष) पहले अवतरण का दूसरा वार्षिकोत्सव था। अगला २९ फरवरी १९६८ को होगा—और पहली अभिव्यक्ति के ठीक बारह वर्ष हो जायेंगे, तब हम देखेंगे कि क्या होता है।

१४ नवम्बर, १९६४

*

४.५.६७ के लिए सन्देश

पार्थिव जीवन एक महान् देवत्व का अपना चुना हुआ निवास-स्थल है और उस देवत्व का शाश्वत संकल्प है कि इसे अन्ध कारागार से अपने मनोहर प्रासाद तथा उच्च स्वर्गचुंबी मन्दिर में परिवर्तित कर दे।

—श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द ने जिस देवत्व की बात कही है वह कोई व्यक्ति नहीं है बल्कि एक अवस्था है जो उन सभी को प्राप्त होगी जिन्होंने उसे ग्रहण करने के लिए अपने-आपको तैयार कर लिया है।

मई १९६७

*

क्या मैं जान सकता हूं कि रोमन कैथोलिकों द्वारा ४ मई बृहस्पतिवार को मनाया गया ईसामसीह के अलौकिक स्वर्गारोहण के दिन का ४.५.६७ की महान् तारीख के साथ किसी तरह का कोई सम्बन्ध है? या फिर यह केवल संयोग है?

श्रीअरविन्द के लिए "संयोग" अस्तित्व नहीं रखते। जो कुछ घटता है वह भागवत 'चेतना' की क्रिया का परिणाम होता है। वह शक्ति जो इस समय काम कर रही है सामञ्जस्य की शक्ति है जो एकता की ओर बढ़ रही है —उन सभी प्रतीकों की एकात्मता जो भागवत 'सत्य' को अभिव्यक्त करते हैं।

५ मई, १९६७

*

"१९६७ में अतिमानस चरितार्थ करने वाली शक्ति की अवस्था में प्रवेश करेगा।" "चरितार्थ करने वाली शक्ति" का सचमुच क्या अर्थ है?

मनुष्यों के मन और घटनाक्रम पर निर्णायक रूप से क्रिया करना।

चरितार्थ करने वाली शक्ति का माताजी की अपनी भौतिक सत्ता पर क्या प्रभाव होगा और फिर दूसरों पर और व्यापक रूप में जगत् पर (आज के जगत् की मुख्य समस्याओं पर भी) कैसा प्रभाव पड़ेगा?

हम जरा धीरज के साथ प्रतीक्षा कर सकते हैं और तब हम जान जायेंगे।

क्या यह तारीख (४.५.६७) उस नयी जाति के आरम्भ का चिह्न है जिसे माताजी और श्रीअरविन्द ने नयी जाति—अतिमानव जाति—कहा है?

कुछ महीनों से जो बच्चे, विशेषकर हमारे लोगों में, जन्म ले रहे हैं वे बहुत ही विशेष प्रकार के हैं।

*

(धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति के तीसरे वार्षिकोत्सव के लिए सन्देश)

केवल 'सत्य' ही जगत् को भागवत 'प्रेम' को प्राप्त करने और उसे अभिव्यक्त करने की शक्ति दे सकता है।

२९ फरवरी, १९६८

नयी चेतना[1]

बिना विकृत किये नयी चेतना को प्राप्त कर सकना :

व्यक्ति को बिना कोई परछाई डाले परम चेतना के प्रकाश में स्थित रह सकना चाहिये।

१६ अप्रैल, १९६९

*

केवल एक ही नया तथ्य है—इस वर्ष के आरम्भ से एक नयी चेतना अभिव्यक्त हुई है और वह नयी सृष्टि के लिए धरती को तैयार करने के

[1] धरती पर नयी चेतना १ जनवरी, १९६९ को अभिव्यक्त हुई। उसके लक्षण जनवरी १९६९ की बहुत-सी वार्ताओं में उल्लिखित हैं। माताजी ने इसे अतिमानव की चेतना कहा है। ये वार्ताएं शताब्दी खण्ड ११, 'पथ पर' में प्रकाशित हुई हैं।

लिए पूरे जोश के साथ कार्य कर रही है।

१७ अप्रैल, १९६९

*

कुछ समय से मैं निरन्तर यह अनुभव करता हूं कि मेरे शरीर में ऊपर से एक शक्ति प्रवाहित हो रही है जो ठोस रूप में एक मीठे द्रव की-सी अनुभूति देती है। वह निरन्तर मेरे सारे शरीर में बहती है और कभी-कभी मैं उससे पूरी तरह सराबोर और तरबतर हो जाता हूं। यह द्रव बहुत सुखद और शामक संवेदना लाता है मानों किसी तरह का आनन्द ऊपर से मेरे अन्दर बह रहा है। इससे मुंह में एक मीठा स्वाद आ जाता है।

मैं ठीक तरह से नहीं जानता कि इस अनुभूति का क्या अर्थ है। क्या यह वह नयी चेतना है जिसके बारे में आपने कहा था कि वह इस वर्ष की पहली जनवरी को आयी थी? या फिर यह कोई नया अवतरण है जो हाल ही में हुआ है? या फिर यह कोई व्यक्तिगत चीज है?

यह वह चेतना है जो जनवरी से कार्य में लगी है। लेकिन उसकी क्रिया अब कहीं अधिक तीव्र हो गयी है।

२६ नवम्बर, १९६९

*

१९१९ में श्रीअरविन्द ने लिखा था कि अस्तव्यस्तता और विपत्तियां शायद एक नयी सृष्टि की प्रसव-वेदना हैं। यह स्थिति कब तक चलती रहेगी? यह वेदना आश्रम में, भारत में और अन्त में जगत् में कब तक चलेगी?

यह तब तक चलती रहेगी जब तक जगत् नयी सृष्टि का स्वागत करने के लिए तैयार और इच्छुक न हो; इस नयी सृष्टि की चेतना धरती पर इस वर्ष के आरम्भ से कार्य कर ही रही है। अगर प्रतिरोध करने की बजाय

लोग सहयोग दें तो काम ज्यादा जल्दी होगा।

लेकिन मूढ़ता और अज्ञान बहुत दुराग्रही हैं!

२९ नवम्बर, १९६९

*

माताजी, 'जगत् एक बड़े परिवर्तन के लिए तैयारी कर रहा है, क्या तुम सहायता करोगे?'[१] *वह महान् परिवर्तन कौन-सा है जिसके बारे में आपने कहा है? और हम उसमें किस प्रकार सहायता कर सकते हैं?*

यह महान् परिवर्तन जगत् में एक नयी जाति का प्रादुर्भाव करेगा जो मनुष्य के लिए वैसी ही होगी जैसा पशु के लिए मनुष्य है। इस नयी जाति की चेतना धरती पर उन लोगों को प्रबुद्ध करने के लिए कार्य कर रही है जो उसे प्राप्त करने और उसकी ओर ध्यान देने में समर्थ हैं।

१९७०

*

आपने हमसे सहायता करने के लिए कहा है। मैं आपकी सहायता किस तरह कर सकता हूं? मुझे क्या करना है?

एकाग्र रहना और नयी विकसनशील चेतना को ग्रहण करने के लिए खुला रहना, उन नयी चीजों को ग्रहण करना जो नीचे उतर रही हैं।

३ मार्च, १९७०

*

परिवर्तन को आने के लिए हमारी सहायता की आवश्यकता नहीं है, लेकिन हमें अपने-आपको चेतना के प्रति खुला रखने की आवश्यकता है ताकि उसका आगमन हमारे लिए व्यर्थ न हो।

*

[१] १९७० का नये साल का सन्देश।

पिछले साल जो नयी चेतना उतरी थी उसकी क्रिया को मुक्त रूप से कार्य करने देने के लिए साधक को क्या करना चाहिये?

१. ग्रहणशील बनो
और
२. नमनीय बनो।

१९७०

*

नयी चेतना को ग्रहण करने के लिए, स्वयं को तैयार करने के लिए पहली अनिवार्य शर्त है सच्ची और सहज नम्रता जो हमें गभीर रूप से इसका अनुभव कराती है कि हमें जो अद्‌भुत वस्तुएं प्राप्त करनी हैं उनके सामने हम कुछ भी नहीं जानते और कुछ नहीं हैं।

अतिमानस और नयी सत्ता

आओ, हम नयी सत्ता के आगमन के लिए अपने-आपको यथासम्भव अच्छे-से-अच्छी तरह तैयार करें।

मन को निश्चल-नीरव करना चाहिये और उसके स्थान पर सत्य चेतना को आना चाहिये जो समग्र की चेतना और ब्योरे की चेतना का सामञ्जस्य हो।

*

मन को निश्चल-नीरव रहना होगा ताकि अतिमानसिक चेतना अपना स्थान ले सके।

*

'सत्य-चेतना' को समस्त सत्ता पर छा जाना चाहिये, सभी गतिविधियों को वश में करना चाहिये और चंचल भौतिक मन को शान्त करना चाहिये।

अभिव्यक्ति के लिए ये प्रारम्भिक शर्तें हैं।

*

भौतिक मन में प्रज्ञा: धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति की ओर बढ़ा एक पहला चरण।

*

(धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति के चौथे वार्षिकोत्सव के लिए सन्देश)

जब अतिमानस दैहिक-मन में अभिव्यक्त होगा केवल तभी उसकी उपस्थिति स्थायी हो सकती है।

२९ फरवरी, १९७२

*

हर एक के लिए अपने चैत्य को ढूंढ़ना और उसके साथ निश्चित रूप से तादात्म्य पाना अनिवार्य है। अतिमानस अपने-आपको चैत्य द्वारा ही अभिव्यक्त करेगा।

२४ जून, १९७२

*

'सत्य चेतना' केवल उन्हीं में अभिव्यक्त हो सकती है जिन्होंने अहं से पीछा छुड़ा लिया हो।

*

मनुष्य और मन सृष्टि की अन्तिम सीमा नहीं हैं। एक अतिमानसिक सत्ता तैयार हो रही है।

२५ दिसम्बर, १९७२

*

मन सचमुच नहीं जानता; निष्कपट रूप से अतिमन की अभीप्सा करो।

जनवरी १९७३

*
**

अतिमानवता : हमारी अभीप्साओं का लक्ष्य।

*

जो है और जिसे चरितार्थ करना है, मनुष्य उन दोनों के बीच की मध्यवर्ती सत्ता है।

३० अगस्त, १९५४

*

धरती पर मनुष्य अन्तर्वर्ती सत्ता है अतः उसके विकासक्रम में उसके बहुत से उत्तरोत्तर स्वभाव आये जिन्होंने ऊपर उठते हुए घुमाव का अनुसरण किया और मनुष्य तब तक इसी तरह ऊपर उठता जायेगा जब तक कि वह अतिमानस की देहली पर न पहुंच जाये और अतिमानव में रूपान्तरित न हो जाये। यह घुमाव सर्पिल मानसिक विकास है। हर एक सहज अभिव्यक्ति, जो किसी चुनाव या किसी पूर्वनिश्चित निश्चय का परिणाम न हो, यानी जिसमें मानसिक क्रिया का हस्तक्षेप न हो उसे "स्वाभाविक" कहने की हमारी प्रवृत्ति है। इसीलिए, जब किसी व्यक्ति के अन्दर प्राणिक सहजता हो जो बहुत अधिक मानसिक न हो तो वह अपनी सरलता में हमें अधिक "स्वाभाविक" लगता है। लेकिन यह ऐसी स्वाभाविकता है जो पशु की स्वाभाविकता से ज्यादा मिलती है और जो मानव क्रमविकास की ृंखला की एकदम तली में होती है।

*

तुम्हें यह कभी न भूलना चाहिये कि बाहरी व्यक्ति शाश्वत सद्वस्तु का केवल एक आकार और प्रतीक है, और यह भी कि भौतिक रूप से गुजर कर तुम्हें उस सद्वस्तु के प्रति मुड़ना है। भौतिक सत्ता शाश्वत सद्वस्तु को

सचमुच तब तक प्रकट नहीं कर सकती जब तक वह अतिमानसिक अभिव्यक्ति द्वारा पूरी तरह रूपान्तरित न हो जाये। और तब तक तुम्हें *उससे* गुजर कर ही सत्य को ढूंढ़ना होगा।

*

मधुर मां, "परम क्षमताएं" क्या हैं?

सन्दर्भ देखे बिना उत्तर देना मुश्किल है। तुम किन "परम क्षमताओं" के बारे में कह रहे हो? उनके बारे में जो अतिमानव बनने के मार्ग पर चलने वाले मानव में होती हैं या फिर वे जो अतिमानव को प्राप्त होंगी जब वह धरती पर प्रकट होगा?

पहली हालत में, ये वे क्षमताएं हैं जो मनुष्य में तब विकसित होती हैं जब वह उच्चतर मन और अधिमन की ओर खुलता है और उनके द्वारा सत्य का प्रकाश प्राप्त करता है। ये क्षमताएं परम सत्य की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति नहीं होतीं बल्कि उसकी अनुकृति, उसकी अप्रत्यक्ष प्रतिच्छाया होती हैं। इनमें अन्तःप्रेरणा, पूर्वज्ञान, तादात्म्य द्वारा ज्ञान और कुछ दूसरी शक्तियां भी आ जाती हैं जैसे स्वस्थ करने या अमुक हद तक परिस्थितियों पर क्रिया करने की क्षमता।

अगर वह अतिमानसिक सत्ता की परम क्षमताओं के सन्दर्भ में हो तो हम उनके बारे में बहुत कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि अभी हम उनके बारे में जो कुछ कह सकते हैं वह ज्ञान के राज्य की अपेक्षा कल्पना के राज्य की वस्तु अधिक है क्योंकि यह सत्ता अभी तक धरती पर अभिव्यक्त नहीं हुई है।

२३ अप्रैल, १९६०

*

मधुर मां,

निम्नलिखित मजेदार प्रश्न उठता है : "जड़-भौतिक में अतिमानस के अवतरण के साथ, और यह मान लेने पर कि जब नये विधान और क्रियाएं प्रभाव डालने लगेंगे तो क्या हम ऐसी सत्ताओं की

कल्पना कर सकते हैं जिनका अपने शरीर पर इतना अधिकार होगा कि वे विकिरणशीलता (रेडियो ऐक्टिविटी) को अपने अन्दर लेने या उसे निष्प्रभाव करने में या वैश्व किरणों (कॉस्मिक रेज़) के प्रति खुले रह सकने में समर्थ होंगे?"

आश्रम के किसी विद्वान् ने कहा है कि विकिरण से मुक्त होना "असम्भव" है क्योंकि भौतिक जड़ द्रव्य निम्न प्रकृति द्वारा शासित होता है। मैं आपसे यह सुनने की आशा रखता हूं कि हमारे लिए कुछ भी "असम्भव" नहीं है।

दोनों बातें सच हैं।

१. जब तक कि जड़-भौतिक जैसा है वैसा ही रहेगा, उसे निरापद नहीं बनाया जा सकता। लेकिन २. आशा की जाती है कि अतिमानसिक शक्ति (अन्ततोगत्वा) जड़-भौतिक शरीर को भी रूपान्तरित कर देगी और जब यह हो जाये तो हर चीज सम्भव हो जाती है या यूं कहें, कुछ भी असम्भव नहीं है।

आशीर्वाद।

२६ अगस्त, १९६१

*

अगर विश्व-युद्ध छिड़ जाये तो उससे न केवल मानवता का अधिकांश नष्ट हो सकता है बल्कि जो बचे रहेंगे उनके लिए भी आणविक निक्षेप के प्रभाव के कारण जीने की परिस्थितियां असम्भव हो उठेंगी। अगर ऐसे युद्ध की अब तक सम्भावना बनी है तो क्या धरती पर 'अतिमानसिक सत्य' और 'नयी जाति' के आगमन पर प्रभाव न पड़ेगा?

ये सभी मानसिक अनुमान हैं और एक बार मानसिक कल्पनाओं के क्षेत्र में घुस जाने पर समस्याओं और उनके समाधानों का कोई अन्त नहीं होता। लेकिन ये सब तुम्हें सत्य के एक पग भी निकट नहीं लाते।

मन के लिए सबसे सुरक्षित और सबसे स्वस्थ मनोवृत्ति इस तरह की

है : हमसे सुनिश्चित और सकारात्मक तरीके से कहा गया है कि वर्तमान सृष्टि के बाद अतिमानसिक सृष्टि आयेगी, अतः, भविष्य के लिए जो कुछ तैयारी हो रही है वह उस आगमन के लिए आवश्यक परिस्थितियां होंगी चाहे वे कुछ भी क्यों न हों और चूंकि हम इन परिस्थितियों का ठीक-ठीक पूर्वदर्शन करने में असमर्थ हैं, अतः इनके बारे में चुप रहना ज्यादा अच्छा है।

*

कठिनाइयों का पूर्वानुमान करना उन्हें आने में सहायता देना है।

परम कृपा में पूर्ण विश्वास रखकर हमेशा अच्छे-से-अच्छे का पूर्वदर्शन करना धरती पर अतिमानसिक कार्य में प्रभावशाली रूप से सहयोग देना है।

*

मधुर मां,

आज सुबह अपने ध्यान में मैंने ऐसी कितनी ही चीजें देखीं जिनका तार्किक रूप से कोई सम्बन्ध न था, लेकिन निश्चित रूप से उनसे ऐसा असर पड़ा कि कुछ विलक्षण होने वाला है। शायद पहली बार मुझे ऐसी पूर्वसंवेदना हुई जो करीब एक घण्टे तक रही।

मैं यह जानना चाहता हूं कि इसमें कोई सत्य है या नहीं और हमें इसके लिए कैसे तैयारी करनी चाहिये?

पिछली रात हम लोग (तुम, मैं और कुछ अन्य) काफी समय के लिए श्रीअरविन्द के स्थायी निवास-स्थान, सूक्ष्म-भौतिक में एक साथ थे (जिसे श्रीअरविन्द सच्चा भौतिक कहते थे)। वहां जो कुछ हुआ (कहने के लिए बहुत ही लम्बी और जटिल बात है) सब कुछ व्यवस्थित था, यानी रूपान्तर की वर्तमान गतिविधि की द्रुतता को ठोस रूप में अभिव्यक्त करने के लिए था। और एक स्मित के साथ श्रीअरविन्द ने तुमसे कुछ-कुछ ऐसा कहा : "अब मानते हो तुम?" ऐसा था मानों वे सावित्री की ये तीन पंक्तियां सुना रहे थे :

"बुद्धिमान् लोग बातें करते और सोते रह जायेंगे और भगवान् जग कर चल देंगे।

मनुष्य को उनके आगमन का तब तक पता नहीं चलेगा जब तक मुहूर्त नहीं आ जाता,

और विश्वास नहीं होगा जब तक काम पूरा न हो जाये।"

मेरे ख्याल से जिस ध्यान की तुम बात कर रहे हो उसकी यह पर्याप्त व्याख्या है।

मेरे आशीर्वाद।

१ फरवरी, १९६३

*

Somebody asked me. –

"In the work of Transformation, who is the slowest to do his part, man or God?"

I replied, –

man finds that God is too slow to answer his prayers.

God finds that man is too slow to receive His influence

But for the Truth-Consciousness all is going on as it ought to go.

किसी ने मुझसे पूछा,—

“रूपान्तर के कार्य में कौन अपना कार्य करने में सबसे अधिक धीमा है, मनुष्य या भगवान्?”

मैंने जवाब दिया—

मनुष्य को लगता है कि उसकी प्रार्थनाओं का उत्तर देने में भगवान् बहुत धीमे हैं।

भगवान् को लगता है कि उनके प्रभाव को ग्रहण करने में मनुष्य बहुत धीमा है।

लेकिन ‘सत्य-चेतना’ के लिए सब कुछ उसी तरह चल रहा है जैसे चलना चाहिये।

*

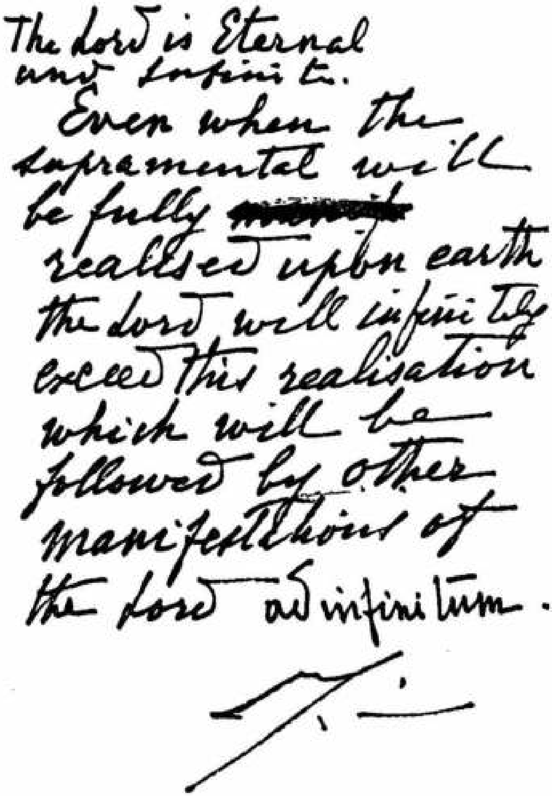

The Lord is Eternal and Infinite.
Even when the supramental will be fully realised upon earth the Lord will infinitely exceed this realisation which will be followed by other manifestations of the Lord ad infinitum.

परम प्रभु शाश्वत और अनन्त हैं।

यहां तक कि जब धरती पर अतिमानस पूरी तरह से अभिव्यक्त हो जायेगा तब भी परम प्रभु इस सिद्धि से अनन्त गुने अधिक होंगे। उसके बाद परम प्रभु की अनन्त अभिव्यक्तियां आयेंगी।

*

जो रूपान्तर के लिए तैयार हैं वे उसे कहीं भी कर सकते हैं। और जो तैयार *नहीं* हैं वे चाहे जहां हों उसे नहीं कर सकते।

१२ नवम्बर, १९७१

*

अतिमानसिक रूपान्तर कठिन परिश्रम है और उसके लिए मजबूत शरीर की आवश्यकता है। और कुछ समय के लिए, शायद सौ साल से अधिक तक, भौतिक शरीर को अपनी शक्ति बनाये रखने के लिए खाने की आवश्यकता होगी; और हमें इस आवश्यकता को पूरा करना होगा।

दिसम्बर १९७२

अमरता

शाश्वत यौवन : यह ऐसा उपहार है जो भगवान् हमें तब देते हैं जब हम अपने-आपको उनके साथ एक कर लेते हैं।

*

रूप निरन्तर बदलते रहते हैं; अपने-आपको अमर चेतना के साथ एक कर लो और तुम "वही" बन जाओगे।

*

अमरता लक्ष्य नहीं है, यहां तक कि साधन भी नहीं है। सत्य को जीने भर से यह स्वाभाविक रूप से आ जायेगी।

*

सर्वांगीण अमरता : यह एक प्रतिज्ञा है। यह भौतिक हकीकत कब बनेगी?

*

अतिमानसिक अमरता : यह एक प्रतिष्ठित तथ्य है, लेकिन थोड़े ही मनुष्यों ने इसका अनुभव किया है।

*

धरती पर अतिमानसिक अमरता : इसे चरितार्थ करना बाकी है।

*

प्राणिक अमरता : अपने क्षेत्र में इसका अस्तित्व है लेकिन है भगवान् के प्रति समर्पण पर निर्भर।

*

अमरता के लिए अभीप्सा : पवित्र, अभीप्सा करती हुई और विश्वास करती हुई।

*

अमरता के लिए भौतिक अभीप्सा : तीव्र अभीप्सा लेकिन साधनों से अनभिज्ञ।

*

सर्वांगीण अमरता के लिए अभीप्सा : चेतना का व्यवस्थित, दृढ़ और विधिवत् विकास।

*

अमरता की ओर प्रयास : अध्यवसायी और समन्वित।

नयी सृष्टि

क्रिया किसी वस्तु विशेष को पाने के लिए चेतना का संकीर्ण होना है। नये जगत् की सृष्टि इस नियम का अपवाद नहीं है।

*

नयी सृष्टि की उपलब्धि : इसी के लिए हमें अपने-आपको तैयार करना चाहिये।

*

परम प्रज्ञा के लिए कोई भी चीज और हर एक चीज धरती को नयी सृष्टि की दृष्टि से तैयार करने का साधन बन सकती है!

*

जड़तत्त्व अतिमानस को ग्रहण करने के लिए अपने-आपको तैयार कर रहा है : नयी सृष्टि की तैयारी के लिए जड़तत्त्व अपने-आपको पुरानी आदतों से मुक्ति दिलाने की कोशिश करता है।

*

नयी सृष्टि का आदर्श : भविष्य में अपने-आपको चरितार्थ करने के लिए आदर्श को प्रगतिशील होना चाहिये।

*

नयी सृष्टि की बहुविध शक्ति : नयी सृष्टि सम्भावनाओं में समृद्ध होगी।

*

नयी सृष्टि की मनोहरता : नयी सृष्टि उन सभी के लिए मनोहर है जो प्रगति करना चाहते हैं।

*

नयी सृष्टि का सौन्दर्य : नयी सृष्टि भगवान् को अभिव्यक्त करने की ज्यादा अच्छी कोशिश करती है।

*

नयी सृष्टि की उपयोगिता : ऐसी सृष्टि जिसका लक्ष्य है मनुष्यों को अपना अतिक्रमण करना सिखाना।

मृत्यु और पुनर्जन्म

वृद्धावस्था और मृत्यु

केवल वे ही वर्ष जो निरर्थक बिताये जाते हैं तुम्हें वृद्ध बनाते हैं।

निरर्थक बिताया हुआ वर्ष वह है जिसमें कोई प्रगति नहीं हुई, चेतना में कोई वृद्धि नहीं हुई, पूर्णता की ओर एक भी कदम नहीं उठाया गया।

अपने जीवन को किसी ऐसी चीज की उपलब्धि के प्रति एकाग्र करो जो तुमसे अधिक ऊंची, अधिक विस्तृत हो और बीतते वर्ष तुम्हारे लिए कभी भार न बनेंगे।

२१ फरवरी, १९५८

*

जन्म से मरण तक, जीवन एक खतरनाक चीज है।

साहसी इसमें से खतरों की परवाह किये बिना गुजर जाते हैं।

सावधान सतर्कता से काम करता है।

भीरु सभी चीजों से डरते हैं।

लेकिन अन्त में, हर एक के साथ होता वही है जो परम संकल्प ने निश्चित किया हो।

१९ जून, १९६६

*

कुछ जीवित लोग अभी से आधे मरे हुए हैं। बहुत-से मरे हुए भी बहुत अधिक जीवित हैं।

*

प्रिय मित्र,

तुम्हारा पत्र वे खबरें लाया जिन्हें मैं पहले से जानती थी, क्योंकि बहुधा तुम्हारा विचार तुम्हारी याद को लिये आता है और तुम्हारे मनस्ताप के साथ मेरा सम्पर्क बनाये रखता है। सचमुच, हर एक के अपने मनस्ताप होते हैं और मेरी तरह तुम भी अच्छी तरह जानते हो कि केवल आन्तरिक

वृत्ति में ही शान्ति पायी जा सकती है।

जब तक कि हम शरीर में हैं, चाहे उसकी कितनी भी उमर और कठिनाइयां क्यों न हों, यह निश्चित है कि हमें इसमें कुछ करना या सीखना है, और यह विश्वास सभी प्रतिकूलताओं का सामना करने के लिए आवश्यक बल देता है।

तुम्हें तिब्बत के शरणार्थियों के साथ सम्पर्क में लाकर मैंने आशा की थी कि उनमें से एक-न-एक तो ऐसा होगा जो बौद्धिक रूप से विकास के इस अवसर को पाकर अपने जीवन को समर्पित करने में खुश होगा या होगी और तुम्हारी इस सेवा के बदले तुम जो कुछ उसे सिखा सकते हो उसे वह सीख पायेगा या पायेगी।

क्या यह सम्भव नहीं होगा?

मेरे लिए भागवत कृपा क्रियाशील यथार्थता है जो युगों से हमारी नियति का पथ-प्रदर्शन करती आयी है।

तुम्हें उतावली में न होना चाहिये और प्रस्थान की जल्दी न करनी चाहिये, चाहे वह शाश्वत विश्राम या शून्यता के परमानन्द के लिए ही क्यों न हो। जब तक हम शरीर में हैं तब तक निःसन्देह हमें कुछ करना या सीखना होता है।

*

मृत्यु का यह सुझाव 'अहं' से आता है जब वह यह अनुभव करता है कि उसे जल्दी ही पद छोड़ना पड़ेगा। शान्त और निर्भीक रहो। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

*

तुम सम्पूर्ण त्याग की बात कर रहे हो, लेकिन शरीर को छोड़ना सम्पूर्ण त्याग *नहीं* है। सच्चा और पूर्ण त्याग है अहं का त्याग जो कहीं अधिक दुःसाध्य प्रयास है। अगर तुमने अपने अहं को न त्यागा हो तो शरीर छोड़ देने से तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी।

*

(श्रीअरविन्द की कविता "प्रेम और मृत्यु" में वर्णित रात्रि और दुःख के बारे में)

प्राणमय जगत् अधिकतर ऐसा ही होता है और जो ऐकान्तिक रूप से भौतिक और प्राण में रहते हैं वे मृत्यु के बाद वहीं जाते हैं। लेकिन भागवत कृपा भी रहती है!...

*

मृत्यु के बारे में तुम जैसा सोचते हो वह वैसी बिलकुल नहीं है। तुम मृत्यु से अचेत विश्राम की निरपेक्ष शान्ति की आशा रखते हो। लेकिन उस विश्राम को पाने के लिए तुम्हें उसके लिए तैयारी करनी होगी।

जब किसी की मृत्यु होती है तो वह केवल अपना शरीर खोता है और साथ-ही-साथ जड़-भौतिक जगत् पर क्रिया और उसके साथ सम्बन्ध की सम्भावनाओं को भी खोता है। लेकिन वह सब जो प्राण जगत् का है, वह जड़-भौतिक तत्त्व के साथ विलीन नहीं होता; उसकी सभी कामनाएं, आसक्तियां, लालसाएं कुण्ठा और निराशा के भाव के साथ डटी रहती हैं, और यह सब कुछ उसे प्रत्याशित शान्ति पाने से रोकता है। शान्त और घटनाविहीन मृत्यु के आनन्द के लिए तुम्हें उसकी तैयारी करनी होगी। और एकमात्र प्रभावकारी तैयारी है, कामनाओं का विलयन।

जब तक हमारा शरीर है हमें क्रिया करनी पड़ती है, काम करना पड़ता है, कुछ-न-कुछ करना ही पड़ता है लेकिन अगर परिणाम की आशा के बिना या यह चाहे बिना कि चीज इस तरह हो या उस तरह हो, हम चीजों को यूं ही करते चलें क्योंकि उन्हें करना है, तो हम क्रमशः निर्लिप्त होते जायेंगे और इस तरह अपने-आपको शान्तिपूर्ण मृत्यु के लिए तैयार कर सकेंगे।

*

अगर तुम मृत्यु से बच निकलना चाहते हो तो तुम्हें अपने-आपको किसी भी नश्वर वस्तु से नहीं बांधना चाहिये।

तुम केवल उसी को जीत सकते हो जिससे तुम भय नहीं खाते, और

जो मृत्यु से भय खाता है वह पहले से ही मृत्यु से पराजित हो चुका है।

*

मृत्यु पर विजय पा सकने के लिए और अमरता को हस्तगत करने के लिए न तो तुम्हें मृत्यु से भय खाना चाहिये न ही उसकी कामना करनी चाहिये।

*

हम जिस लक्ष्य को निशाना बनाये हुए हैं वह है अमरता।

सभी आदतों में निश्चित रूप से मृत्यु सबसे अधिक दुराग्रही है।

*

आध्यात्मिक ज्ञान के दृष्टिकोण से, जरा और क्षय—विघटन—निस्सन्देह केवल गलत मनोवृत्ति का परिणाम हैं।

१. मनुष्य अपना शरीर छोड़ने के लिए बाधित क्यों होते हैं?

क्योंकि वे भगवान् की ओर प्रकृति की प्रगति के साथ कदम मिलाना नहीं जानते।

२. क्या हमें किसी मृत व्यक्ति के शरीर का सम्मान करना चाहिये? अगर हां, तो कैसे?

तुम्हें हर चीज का, जीवित हो या मृत, सबका सम्मान करना चाहिये और यह जानना चाहिये कि सब कुछ भागवत चेतना में रहता है।

सम्मान का अनुभव हृदय और आन्तरिक मनोवृत्ति में करना चाहिये।

३. क्या मृत शरीर में भी भगवान् होते हैं?

भगवान् हर *जगह* हैं, और मैं फिर से दोहराती हूं कि भगवान् के लिए कुछ भी जीवित या मृत नहीं है—सब कुछ शाश्वत काल तक रहता है।

४. अन्तरात्मा को प्रसन्न रखने के लिए हमें क्या करना चाहिये जिससे उसका पुनर्जन्म अच्छी अवस्थाओं में, उदाहरण के लिए आध्यात्मिक परिवेश में हो।

दुःख न करो और बिलकुल शान्त और अचंचल बने रहो, साथ ही जो चला गया है उसकी स्नेहभरी स्मृति बनाये रखो।

५. क्या अन्तरात्माएं रोती हैं?

जब कोई चीज उन्हें भगवान् से अलग कर देती है।

६. हम किसी को रोने से कैसे रोक सकते हैं?

उसके आंसुओं को रोकने की कोशिश किये बिना उसके साथ गहरा और सच्चा प्रेम करके।

*

सामान्यतः, जो चला गया है, जाने के बाद उसके शरीर का कुछ भी हो, उसकी चेतना को कोई कष्ट नहीं पहुंचता। लेकिन स्वयं जड़-भौतिक शरीर में एक चेतना है जिसे आकार या रूप की आत्मा कहते हैं और उसे एकत्रित कोषाणुओं से पूरी तरह बाहर निकलने में समय लगता है; सारे शरीर में सड़ान्ध का शुरू होना उसके चले जाने के बाद का पहला चिह्न है, और जाने से पहले शरीर में जो कुछ हो रहा है उसके बारे में उसे एक तरह का अनुभव हो सकता है। इसीलिए हमेशा यह ज्यादा अच्छा होता है कि अन्त्येष्टि में जल्दबाजी न की जाये।

१३ नवम्बर, १९६६

*

तुम कहते हो कि किसी अखबार के द्वारा तुम्हें अपने भतीजे की मृत्यु की खबर मिली। तो बच्चे की मृत्यु कुछ दिन पहले हुई थी। क्या 'क' और 'ख' ने अपने वातावरण में, अपने अनुभव, अपने विचारों और

अपनी संवेदनाओं में कोई अन्तर महसूस किया—एक अन्तर, एक तरह की बेचैनी या किसी चीज के खोने का भाव, जो उनके दुःख का सच्चा आधार हो। मैं काफी निश्चित हूं कि उन्होंने ऐसा अनुभव नहीं किया। अतः उनका अवसाद, अगर उन्हें कोई अवसाद हो रहा है, तो वह सच्चा नहीं है बल्कि रूढ़िवादी विचारों और संवेदनाओं का परिणाम है; यह पारिवारिक विचार से आया हुआ केवल एक भ्रम है जो सबसे अधिक कृत्रिम और झूठी रूढ़ियों में से एक है।

सचमुच बच्चा उनके वातावरण में नहीं था, अन्यथा उसकी खबर पाने की आवश्यकता के बिना वे उसकी मृत्यु के बारे में अवगत हो जाते। रोज मरने वाले दो लाख मनुष्यों में वह भी एक था, उससे ज्यादा वह उनके वातावरण में नहीं था। रोज मरने वाले मनुष्यों की औसत संख्या दो लाख है। क्या उन्हें यह मालूम है? क्या मृत्यु अति सामान्य और रोजमर्रा की चीज नहीं है और क्या वे इसकी आशा करते हैं कि वे जिन्हें जानते हैं उनमें से कोई इस आम नियम से बच निकलेगा?

*

तुम्हारे पिता इसलिए मरे क्योंकि वह उनके मरने का समय था। परिस्थितियां अवसर भले हों पर निश्चित रूप से, *कारण* नहीं हो सकतीं। कारण भागवत इच्छा में है और उसे कुछ भी नहीं बदल सकता।

इसलिए विलाप मत करो, और अपने अवसाद को भगवान् के चरणों में अर्पित कर दो। वे तुम्हें शान्ति और मुक्ति देंगे।

*

(उसको जिसके मित्र की मृत्यु हो गयी थी)

अब तुम इस शरीर पर झुककर उसकी देखभाल न कर सकोगे, अब तुम अपनी क्रियाओं द्वारा अपने गभीर स्नेह को अभिव्यक्त न कर सकोगे और यही कष्टकर है। लेकिन तुम्हें इस अवसाद पर विजय पानी चाहिये। अन्दर देखो, ऊपर देखो, क्योंकि केवल जड़-भौतिक शरीर ही विघटित होगा। उसके अन्दर जिन चीजों से तुम प्रेम करते थे वे जड़-भौतिक आवरण के

विघटन से किसी भी तरह प्रभावित नहीं होतीं, और अगर गभीर प्रेम की शान्ति में, तुम अपना विचार, अपनी ऊर्जा उस पर एकाग्र करो, तो तुम देखोगे कि वह तुम्हारे निकट रहेगी और उसके साथ तुम्हारा सचेतन सम्पर्क हो सकता है, ऐसा सम्पर्क जो अधिकाधिक ठोस होगा।

*

जीवन अमर है। केवल शरीर ही विघटित होता है।

१० मार्च, १९६९

*

हम मृत्यु को देवता क्यों कहते हैं? क्या वह भी मिथ्यात्व के स्वामी की तरह असुर नहीं है?

मनुष्य की चेतना में वह भगवान् बन गया है और यही कारण है कि उसे रूपान्तरित करना इतना कठिन है।

२९ अक्तूबर, १९७२

पुनर्जन्म

श्रीअरविन्द कहते हैं कि मृत्यु के कुछ समय बाद प्राणिक और मानसिक आवरण विघटित हो जाते हैं और अन्तरात्मा को तब तक के लिए चैत्य जगत् में विश्राम करने के लिए छोड़ जाते हैं जब तक कि वह नये आवरण न ले ले। तब पुराने आवरणों के 'कर्म' और संस्कारों का क्या होता है? क्या वे भी कोई अच्छा या बुरा परिणाम लाये बिना विघटित हो जाते हैं जैसा कि कर्म के सिद्धान्त के अनुसार उन्हें हो जाना चाहिये? और प्राणिक और मानसिक आवरणों के विघटन के बाद प्राणिक और मानसिक सत्ताओं का क्या होता है?

केवल बाहरी आकार का विघटन होता है, वह भी तभी तक जब तक कि वह भी सचेतन न हो जाये और भागवत केन्द्र के चारों ओर व्यवस्थित न

हो। लेकिन सच्चा मन, सच्चा प्राण यहां तक कि सच्चा सूक्ष्म-भौतिक भी बना रहता है : ये ही पार्थिव जीवन में प्राप्त सभी संस्कारों को रखते हैं और कर्म की ृंखला की रचना करते हैं।

*

अगर हम अपने अन्दर, कुछ अधिक अन्दर जायें तो हमें पता लगेगा कि हममें से हर एक के अन्दर एक चेतना है जो युगों से जीती आ रही है और विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती आ रही है।

२४ जनवरी, १९३५

*

पुनर्जन्म में बाहरी सत्ता, जो मां-बाप, परिवेश और परिस्थितियों के द्वारा बनती है—मन, प्राण और भौतिक—का दुबारा जन्म नही होता : केवल चैत्य सत्ता ही एक शरीर से दूसरे शरीर में जाती है। अतः यह तर्कसंगत है कि न मानसिक और न ही प्राणिक सत्ता पूर्व जन्मों को याद कर सकती है, न ही इस या उस व्यक्ति के चरित्र या जीवन की पद्धति में अपने-आपको पहचान सकती है। केवल चैत्य सत्ता ही याद रख सकती है; और अपनी चैत्य सत्ता के प्रति सचेतन होकर ही हम अपने पिछले जन्मों के बारे में ठीक-ठीक जान सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, हम जो बन चुके हैं उसकी अपेक्षा हम जो बनना चाहते हैं उस पर अपनी एकाग्रता स्थिर करना हमारे लिए कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

२ अप्रैल, १९३५

*

मेरी प्रिय बच्ची,

'क' का अचानक निधन यहां सबके लिए कष्टदायक क्षति है। वह अपने उत्सर्ग में और अपने काम की ईमानदारी में पूर्ण था, ऐसा आदमी जिस पर हम भरोसा कर सकते थे, जो सचमुच एक विरल गुण है। वह सौर प्रकाश में चला गया है और उस सचेतन विश्राम का उपभोग कर रहा

है जिसका वह सचमुच अधिकारी था।

५ जुलाई, १९६५

*

अपने सपनों में मैं 'क' को बहुत प्रसन्न देखती हूं। एक दिन मैंने उसे अपनी मेज पर झुके हुए देखा और उसने मुझसे कहा, "जाते वक्त मुझे तुमसे कुछ कहने का अवसर न मिला, क्योंकि श्रीअरविन्द की पुकार के कारण मुझे तुरन्त जाना पड़ा।" माताजी इस स्वप्न में क्या कुछ सत्य है?

निश्चित रूप से यह सपना सच्चा है क्योंकि 'क' सीधा श्रीअरविन्द के साथ एक होने के लिए चला गया।

मधुर मां, मैं इन प्रश्नों के उत्तर चाहूंगा जो उसके चले जाने के बाद से प्राय: मेरे मन में आते हैं।

क्या जो अन्तरात्मा आपके प्रति सचेतन है, जाने के बाद तुरन्त पुनर्जन्म लेती है? या उसे काफी समय प्रतीक्षा करनी होती है?

पूरी तरह से सचेतन और विकसित हर एक चैत्य सत्ता को यह चुनने की छूट होती है कि उसका अगला जीवन कैसा होगा और वह जीवन कब लेगी।

क्या यह अन्तरात्मा जन्म लेने के बाद आपका भागवत कार्य पूरा करने के लिए आश्रम में आती है?

जब वह तुरन्त जन्म लेती है तो सामान्यत: उसका यही चुनाव होता है।

क्या यह अन्तरात्मा अपने जन्म का चुनाव करने और आश्रम जीवन के सुख का आनन्द लेने में समर्थ है?

अगर वह पूरी तरह से विकसित हो, तो वह ऐसा करने में समर्थ होती है।

अतिमानसिक प्रकाश और सौर प्रकाश में क्या सम्बन्ध है?

सौर प्रकाश अतिमानसिक प्रकाश का प्रतीक है।

आशीर्वाद।

२ जुलाई, १९६६

*

मधुर मां,

बुलेटिन में आपने कहा है : "चैत्य की यादों का बहुत ही विशेष गुण होता है, उनमें विलक्षण तीव्रता होती है...। वे जीवन के अविस्मरणीय क्षण होते हैं. जब चेतना तीव्र, उज्ज्वल, बलवान्, सक्रिय, शक्तिशाली होती है और कभी-कभी वे जीवन के ऐसे मोड़ होते हैं जो मनुष्य के जीवन की दिशा को बदल देते हैं। लेकिन तुम कभी यह नहीं बता सकोगे कि तुमने क्या पहना था या किन सज्जन से बातें की थीं या तुम्हारे पड़ोसी कौन थे, और तुम किस क्षेत्र में थे।"[१] और फिर यादों के इन छोटे-छोटे ब्योरों के बारे में आपने कहा : "ये बिलकुल बचकाने हैं।"

लेकिन फिर यह कैसे होता है कि अखबारों में हम बहुधा ऐसे छोटे बच्चों की बातें पढ़ते हैं जिन्हें अपना पिछला जीवन याद रहता है और उनके ब्योरे सत्य प्रमाणित हुए हैं? और ये ऐसी घटनाएं हैं जिनके आधार पर परामनोवैज्ञानिक पुनर्जन्म के अस्तित्व को प्रमाणित करता है। तो क्या वे पूरी तरह से गलत रास्ते पर नहीं हैं? फिर पुनर्जन्म दूसरे किसी भी वैज्ञानिक तरीके से किस तरह दिखाया जा सकता है?

तुम जिन स्मृतियों की बात कह रहे हो, जिनकी अखबारों में चर्चा होती है वे स्मृतियां प्राणिक सत्ता की होती हैं, जो सत्ता अपवादिक रूप से, किसी दूसरे शरीर में प्रवेश करने के लिए एक शरीर से निकल जाती है। यह

[१] बुलेटिन, नवम्बर १९६७।

ऐसी चीज है जो घट सकती है लेकिन बहुधा नहीं होती।

जिस स्मृति के बारे में मैं कह रही हूं वह चैत्य सत्ता की होती है, और तुम उसके बारे में केवल तभी सचेतन हो सकते हो जब तुम्हारा अपनी चैत्य सत्ता के साथ सचेतन सम्बन्ध हो।

इन दोनों चीजों में कोई विरोध नहीं है।

२९ नवम्बर, १९६७

*

क्या यह जानना आवश्यक है कि अपने पिछले जन्म में मैं क्या था?

अगर आवश्यक होगा तो तुम उसे जान लोगे।

१४ फरवरी, १९७३

*

बहुत ही विरल अपवादों को छोड़कर, पशुओं की व्यक्तिगत सत्ता नहीं होती और मरने के बाद वे अपनी जाति की आत्मा में वापस चले जाते हैं।

आत्महत्या

दिव्य मां,

मेरे मस्तिष्क में कुछ गड़बड़ चल रही है। मैं बहुधा आत्महत्या की बात सोचता हूं। कृपया मुझे क्षमा कर दीजिये और मुझे अपनी सुरक्षा और अपना आशीर्वाद दीजिये।

अगर तुम मुझे देखने के लिए अपनी अभीप्सा में सच्चे और निष्कपट हो, तो तुम्हें आत्महत्या के इन दूषित, विकृत विचारों को अपने से बहुत दूर फेंक देना होगा, ये किसी भी भागवत जीवन के एकदम विरोधी होते हैं। धीर, दृढ़ और स्थिर रहो, जीवन की कठिनाइयों का शान्ति के साथ सामना करो और उससे भी अधिक शान्ति के साथ "साधना" की कठिनाइयों का

सामना करो—तब तुम अन्तिम सफलता के बारे में निश्चित हो सकते हो।

आशीर्वाद सहित।

२१ अगस्त, १९६४

*

मैं अनुभव करता हूं कि मैं निष्फल भाग्य के साथ जन्मा आपका शून्य बालक हूं; ऐसे बालक के लिए जीवन में सम्पादित करने के लिए कोई कार्य नहीं है। क्या जगत् से चला जाना ज्यादा अच्छा न होगा?

तुम्हें *इसी जगत्* में बदलना होगा और परिवर्तन सम्भव है। अगर तुम इस जगत् से भाग जाओगे तो तुम्हें वापिस आना पड़ेगा, शायद अधिक बुरी परिस्थितियों में आना पड़े और तुम्हें सारी चीज फिर एक नये सिरे से करनी पड़ेगी।

ज्यादा अच्छा है कि भीरु मत बनो, अभी परिस्थिति का सामना करो और उस पर विजय पाने के लिए आवश्यक प्रयास करो। सहायता सदैव तुम्हारे साथ है; तुम्हें उससे लाभ उठाना सीखना होगा।

प्रेम और आशीर्वाद।

१३ नवम्बर, १९६७

*

यह निश्चित रूप से जान लो कि मनुष्य जो कुछ कर सकता है उसमें आत्महत्या सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण क्रिया है क्योंकि शरीर के अन्त का अर्थ चेतना का अन्त नहीं होता और जो चीज तुम्हें जीते जी तंग कर रही थी वही मरने पर भी तंग करती रहती है। जीते जी तुम मन की दिशा बदल सकते हो पर मरने पर वह सम्भावना नहीं रहती।

१६ जुलाई, १९६९

*

'मदर इंडिया' के एक पाठक से मुझे एक काफी दर्दभरा पत्र मिला

है। वह लिखता है :

"यद्यपि मैं अपने जीवन में माताजी के निर्देशनों का सचाई के साथ पालन करने की चेष्टा कर रहा हूं, फिर भी मैं कठिनाइयों से बुरी तरह घिरा हूं—इस हद तक कि आत्महत्या एकमात्र हल रह जाता है। अतः मैं आपसे निवेदन करूंगा कि कृपया मेरी प्रार्थना माताजी की सेवा में पहुंचा दें।"

माताजी मुझे क्या उत्तर देना चाहिये?

आत्महत्या हल से बहुत दूर की चीज है, यह परिस्थिति में एक ऐसा मूर्खतापूर्ण प्रकोप ले आती है जो शायद शताब्दियों तक जीवन असह्य बना देता है।

१२ जून, १९७२

*

रामायण में कहा गया है कि जब श्रीराम ने देखा कि धरती पर उनका काम समाप्त हो गया है, तो उन्होंने अपने साथियों के साथ सरयू नदी में प्रवेश किया। यह तो सामूहिक आत्महत्या जैसी चीज लगती है और आत्महत्या सबसे बड़ा पाप माना गया है। इसे कैसे समझा जाये?

१. परम प्रभु के लिए कोई पाप नहीं होता।

२. भक्त के लिए प्रभु से दूर रहने से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

३. जिस समय रामायण की परिकल्पना और रचना हुई थी, उस समय श्रीअरविन्द के द्वारा प्रकट किया हुआ यह ज्ञान जाना या माना हुआ नहीं था कि धरती भागवत जगत् और परम प्रभु के वासस्थान में रूपान्तरित हो जायेगी।

अगर तुम इन तीन बातों पर ध्यान दो तो तुम कथा को समझ लोगे। (यद्यपि हो सकता है कि वास्तविक तथ्य ऐसे न हों जैसे बतलाये गये हैं।)

नींद और स्वप्न

नींद और विश्राम

मैं सो रहा था, ठीक कक्षा में जाने के समय उठ बैठा। क्या भगवान् ने मुझे जगाया था?

आवश्यक नहीं है। अवचेतना का एक भाग हमेशा जगा रहता है, और यह भाग तुम्हें जगाये, इसके लिए अमुक समय पर उठने का संकल्प ही पर्याप्त होता है।

३ मार्च, १९३३

*

मैं यह जानना चाहूंगा कि मेरी सारी रात इतनी बेचैनी में क्यों बीती?

स्पष्ट है सोने से पहले तुमने अपने विचारों को शान्त नहीं किया। लेटते समय तुम्हें हमेशा पहले अपने विचारों को शान्त करना चाहिये।

२८ जनवरी, १९३५

*

मैं दर्शन से पहले की रात को कभी नहीं सो सकता। लोग कहते हैं कि यह सन्तुलन का अभाव है। लेकिन इसके विपरीत, मुझे लगता है कि आपकी जाग्रत् उपस्थिति के कारण ऐसा होता है। मैं किसी तरह की अशान्ति का अनुभव नहीं करता। मेरे ख्याल से यह ठीक है। ऐसा नहीं है क्या?

कभी-कदास, तीन-चार महीने में एक रात न सोने से बहुत फर्क नहीं पड़ता बशर्ते कि तुम बाकी समय अच्छी तरह सोओ।

*

मैं तुम्हें अच्छी तरह सोने और पर्याप्त विश्राम लेने की सलाह दूंगी। काम नियमित रूप से और निरन्तर अच्छी तरह कर सकने के लिए यह अनिवार्य है।

मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

*

नींद ऐसा विद्यालय है जिसमें से मनुष्य को गुजरना पड़ता है अगर वह यह जानता है कि वहां अपने पाठ को कैसे सीखा जाये, ताकि आन्तरिक सत्ता भौतिक आकार से मुक्त, अपने अधिकार के बारे में सचेतन और अपने जीवन की स्वामिनी हो जाये। सत्ता के कुछ ऐसे पूरे-के-पूरे भाग हैं जिन्हें बाहरी यानी शरीर की सत्ता की इस निश्चलता और अर्ध-चेतना की आवश्यकता होती है ताकि वे अपना जीवन स्वतन्त्रता के साथ जी सकें।

यह और एक परिणाम के लिए एक और विद्यालय है, लेकिन फिर भी है यह विद्यालय ही। अगर तुम अधिकाधिक सम्भव प्रगति करना चाहते हो तो तुम्हें अपनी रातों का उसी तरह उपयोग करना आना चाहिये, ठीक उसी तरह जिस तरह तुम अपने दिनों का उपयोग करते हो। बस, सामान्यत: लोगों को इसका पता बिलकुल नहीं होता कि इसे किया कैसे जाये; वे जगे रहने की कोशिश करते हैं और इससे जो कुछ मिलता है वह केवल भौतिक और प्राणिक असन्तुलन होता है, और कभी-कभी तो मानसिक असन्तुलन भी।

*

शरीर की वर्तमान अवस्था में नींद अनिवार्य है। अवचेतना पर उत्तरोत्तर नियन्त्रण द्वारा ही नींद को अधिकाधिक सचेतन बनाया जा सकता है।

२५ जनवरी, १९३८

*

मैं अनुभव से जानती हूं कि भोजन कम कर देने से नींद सचेतन नहीं हो जाती; शरीर बेचैन हो उठता है लेकिन यह चीज किसी भी तरह चेतना को नहीं बढ़ाती। अच्छी, गहरी और शान्त नींद में ही तुम अपने गभीरतर

भाग के सम्पर्क में आ सकते हो।

४ अगस्त, १९३७

*

मैं आशा करती हूं कि तुम जल्दी ही पूरी तरह ठीक हो जाओगे और थकान अनुभव न करोगे। लेकिन क्या तुम पर्याप्त मात्रा में खाते हो? कभी-कभी भूख ही आदमी को सोने नहीं देती।

मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

*

साधना के लिए उचित विश्राम बहुत महत्त्वपूर्ण है।

२ मार्च, १९४२

*

तुम्हें विश्राम करना चाहिये—लेकिन वह *एकाग्र शक्ति का* विश्राम हो, विरोधी शक्तियों के प्रति मन्द अप्रतिरोध का विश्राम नहीं। ऐसा विश्राम जो *शक्ति* हो, दुर्बलता का विश्राम नहीं।

सोने से पहले विश्राम करना

स्वप्न में की जा सकने वाली खोजों का कोई अन्त नहीं। लेकिन एक चीज बहुत महत्त्वपूर्ण है : जब तुम बहुत थके हुए हो तो कभी सोने मत जाओ क्योंकि अगर तुम सोने जाते हो तो तुम एक तरह की अचेतना में जा गिरते हो और सपने तुम्हारे साथ मनमानी कर सकते हैं, और तुम उन पर जरा भी नियन्त्रण करने में असमर्थ होते हो। जैसे तुम्हें खाने से पहले हमेशा विश्राम करना चाहिये, उसी तरह मैं तुम सबको सलाह दूंगी कि सोने से पहले विश्राम किया करो। पर तुम्हें विश्राम करना आना चाहिये।

इसे करने के कई तरीके हैं। एक यह है : सबसे पहले, अपने शरीर को ढीला छोड़ दो, आराम से या तो बिस्तर पर या आराम-कुर्सी पर लेट

जाओ। फिर अपनी स्नायुओं को, सबको एक साथ या एक-एक करके ढीला छोड़ते जाओ जब तक कि तुम पूरी तरह से शिथिल न हो जाओ। यह कर लेने के बाद, और जब तुम्हारा शरीर बिस्तर पर लत्ते की तरह पड़ा हो तो अपने मस्तिष्क को शान्त और स्थिर करो, यहां तक कि वह स्वयं अपने बारे में सचेतन न रहे। इसके बाद धीरे-धीरे, अलक्ष्य रूप से इसी अवस्था से नींद में चले जाओ। जब तुम अगली सुबह जागोगे तो ऊर्जा से भरपूर होगे। इसके विपरीत, अगर तुम एकदम थके हुए, बिना अपने-आपको शिथिल किये, सो जाओ तो तुम एक ऐसी भारी, जड़ और अचेतन नींद में जा गिरोगे जहां प्राण अपनी सारी ऊर्जा गंवा बैठेगा।

यह सम्भव है कि तुम परिणाम तुरन्त न पा सको लेकिन लगे रहो।

*

कुछ समय से मुझे आन्तरिक और बाह्य खलबली के कारण से नींद में परेशानी हो रही है। मैं आपसे सहायता के लिए प्रार्थना करता हूं।

सोने से पहले, जब तुम सोने के लिए लेटो, तो भौतिक रूप से अपने-आपको शिथिल करना शुरू करो (मैं इसे कहती हूं बिस्तर पर लत्ता बन जाना)।

फिर अपनी भरसक सचाई के साथ, अपने-आपको, पूर्ण शिथिलता में भगवान् के हाथों में समर्पित कर दो, और... बस इतना ही।

जब तक तुम सफल न हो जाओ कोशिश करते रहो और फिर तुम देखोगे।

आशीर्वाद।

मार्च, १९६९

स्वप्न

साधारणतः मैं स्वप्नों को कोई अर्थ नहीं देती, क्योंकि हर एक के अपने प्रतीक होते हैं जिसका केवल उसी व्यक्ति के लिए अर्थ होता है।

*

जब हम अगली बार मिलेंगे तब मैं इस सन्दर्भ में कुछ ब्योरों के बारे में बतलाऊंगी। तब तक इन कागजों को मैं अपने पास ही रखूंगी। (केवल श्रीअरविन्द और मैं इन कागजों को देखेंगे।)

पहले स्वप्न में हम रंगशाला को इस जगत् का प्रतीक मान सकते हैं जहां सब कुछ लीला है—किसी चीज का आभास है लेकिन चीज स्वयं नहीं है। यहां आन्तरिक और भागवत अधिकार द्वारा नहीं बल्कि परिस्थितियों और जन्म के सम्मिश्रण के परिणामस्वरूप राजा और रानी बनते हैं।

मेरा ख्याल है मेरे साथ तुम्हारे मिलने के मार्ग में जो बाधाएं (आन्तरिक और बाह्य) थीं वे उन कठिनाइयों की प्रतिनिधि हैं जिन्हें सच्ची चेतना के साथ ऐक्य स्थापित करने के लिए पार करना होगा।

दूसरा स्वप्न तुम्हारी अवचेतना में पड़ा सामाजिक परिवेश और उन पर तुम्हारी प्रतिक्रियाओं के पुराने संस्कारों का मूर्त रूप लगता है।

तीसरे में हमेशा की तरह, रेल रास्ते की और लक्ष्य की ओर यात्रा की रूपक है। व्यक्तियों का समुदाय विभिन्न दल (गुप्त समुदाय इत्यादि) हैं जो इस उद्देश्य के लिए बने हैं। जिस समुदाय में तुम्हें जाना था वह वह समुदाय था जिससे तुम सम्बद्ध हो गये थे—यह उन लड़कों से बना था जो तुम्हारे साथ तुम्हारे पहले "विद्यालय" में थे; चित्र स्पष्ट है लेकिन सम्बन्ध के बारे में तुमने यह अनुभव किया कि वह निश्चित न था।

*

ये दोनों ही स्वप्न (क्या वे केवल स्वप्न हैं?) पहले स्वप्नों की अपेक्षा कहीं अधिक विशिष्ट गुण वाले हैं।

पहला, आन्तरिक अवस्था और क्रिया के उन प्रतीकात्मक प्रतिलेखों में से एक लगता है जिसे तुम बहुधा नींद में पाते हो। जो चीज मुझे बहुत स्पष्ट दीखती है वह यह कि तैरते समय जिस आशंका का तुमने अनुभव किया था (लक्ष्य तक न पहुंच पाने का भ्रम) उसमें किसी भी सच्चे आधार के अभाव को यह स्वप्न कितने मार्मिक रूप से दिखलाता है। क्योंकि तट तक पहुंचने के लिए तुम पर बरसायी गयी सुरक्षा तुम्हें वहां ले आती है जब कि प्रत्यक्ष अवस्थाओं और परिस्थितियों को देख कर लगता है कि वे तट से दूर खींचे ले जा रही हैं।

ब्योरों के अभाव में यह कहना कठिन है कि मोटरबोट ठीक-ठीक किसका प्रतीक है।

दूसरा, निश्चय ही स्वप्न नहीं वास्तविकता है, भले वह बाहरी चेतना के आगे ढकी हुई हो। वह श्रीअरविन्द की सतत उपस्थिति और घनिष्ठ तथा सच्चे सम्बन्ध द्वारा दी गयी सहायता की वास्तविकता की आकर्षक अभिव्यक्ति है। यह एक अमूल्य अनुभूति है जो स्मृति के सबसे पवित्र कोने में संजोने योग्य है।

*

छह सोफे : आसन, सृष्टि की शक्तियों के आधार (६) इनमें से एक अब तक दानवी शक्तियों के आधीन है (अन्तिम, सबसे अधिक जड़-भौतिक)।

सेविका : जिसने हमें "भूलभुलैया" में से रास्ता दिखाया, हमें भोजन दिया और अन्धकार में रास्ता ढूंढ़ने के लिए एक धुंधलकी रोशनी (बहुत ही धीमी टार्च) भी दी, निम्न प्रकृति थी; उसने यह कहते हुए अपनी सेवाओं का मूल्य मांगा कि "दूसरा सज्जन" (दानव) हमेशा मूल्य देता था।

स्थान : भौतिक चेतना में कोई प्राणिक परत।

२० फरवरी, १९३२

*

दर्शन का दिन था। आप श्रीअरविन्द के साथ थीं। मैं दौड़कर श्रीअरविन्द की बांहों में चला गया। उन्होंने मुझे बहुत आनन्द के साथ यह कहते हुए सहलाया कि वे मुझे उठाने आये हैं। मैं उनकी गोदी में था। आपने भी मुझे धीमे से, आपको भेजी हुई मेरी प्रार्थनाओं में से एक प्रार्थना सुनाते हुए धीमे से सहलाया।

स्वप्न चैत्य संस्कार का परिणाम है जो सोते समय सतह पर उठ आया।

१९ मार्च, १९३६

*

साधारणतः सोते समय मैं आपको कम-से-कम एक बार स्मरण करने की कोशिश करता हूं। मुझे आश्चर्य होता है कि फिर ये कलुषित स्वप्न क्यों आते हैं जब कि मुझे स्वप्न आपके बारे में आना चाहिये। अशुभ को दूर करने के लिए आपके किसी भी पथ-प्रदर्शन का स्वागत है अगर उसका अनुसरण करने के लिए आप कृपापूर्वक मुझे पर्याप्त संकल्प और शक्ति दें।

जीतने के लिए अपने अन्दर निरन्तर सच्चा संकल्प बनाये रखो।

आशीर्वाद।

२० जुलाई, १९४७

*

अपने स्वप्नों को नियन्त्रण में रख कर व्यक्ति बहुत कुछ सीख सकता है।

बीमारी और स्वास्थ्य

तुम मुझसे पूछती हो कि क्या तुम्हारी बीमारी योग के कारण आयी है। हर्गिज नहीं—स्वास्थ्य बिगाड़ना तो बहुत दूर रहा, योग हृष्ट-पुष्ट और अक्षय स्वास्थ्य को बनाने में सहायता देता है।

२१ जून, १९४२

*

यह न भूलो कि हमारे योग में सफल होने के लिए तुम्हारे पास सबल और स्वस्थ शरीर होना चाहिये।

इसके लिए, शरीर को व्यायाम करना चाहिये, तुम्हारा जीवन सक्रिय और नियमित होना चाहिये, तुम्हें शारीरिक काम करना चाहिये, अच्छी तरह खाना और सोना चाहिये।

अच्छे स्वास्थ्य में ही रूपान्तर की ओर जाने का मार्ग मिलता है।

१८ अप्रैल, १९७१

*

व्यायाम करना और सरल तथा स्वस्थ जीवन जीना अच्छा है, लेकिन शरीर के सचमुच पूर्ण होने के लिए, उसे भागवत शक्तियों के प्रति खुलना चाहिये, केवल भागवत प्रभाव के अधीन होना चाहिये, भगवान् को प्राप्त करने के लिए निरन्तर अभीप्सा करनी चाहिये।

*

अच्छा स्वास्थ्य आन्तरिक सामञ्जस्य को दर्शाता है। अगर हमारा स्वास्थ्य अच्छा है तो हमें गर्व होना चाहिये, उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये।

*

अब तक इस धरती पर सुख और अच्छा स्वास्थ्य स्वाभाविक अवस्थाएं नहीं हैं।

हमें सावधानी के साथ उनके विरोधियों की घुसपैठ से उनकी रक्षा करनी चाहिये।

बीमारी के आन्तरिक कारण

मेरे साथ बहुत तरह की छोटी-मोटी दुर्घटनाएं हो रही हैं और मुझे चोटें लग रही हैं, इससे मैं विचलित हो उठता हूं क्योंकि इनसे बचने के मेरे सारे प्रयास असफल प्रतीत हो रहे हैं। मुझे क्या करना चाहिये?

तुम्हें इन छोटी-मोटी चीजों से अपने-आपको संत्रस्त नहीं करना चाहिये—अपने आपमें इन चीजों का कोई मूल्य नहीं है और इनका उपयोग हमें यह दिखाना होता है कि अभी तक हमारे स्वभाव में निश्चेतना कहां दुबकी हुई है ताकि हम वहां प्रकाश डाल सकें।

१३ जुलाई, १९३७

*

तुम्हें इस बीमारी को इस बात के चिह्न के रूप में लेना चाहिये कि तुम्हारी सभी धारणाओं और शायद संकल्पों के बावजूद तुम्हें साधना करनी होगी और काम में बाहरी उत्सर्ग के साथ मनोवैज्ञानिक रूपान्तर और गभीर समझ के आन्तरिक उत्सर्ग को जोड़ना होगा और उस उद्देश्य के लिए अपने एकान्त का भी उपयोग करना होगा।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

६ अप्रैल, १९५२

*

शारीरिक रोग हमेशा भौतिक सत्ता के किसी प्रतिरोध का चिह्न होते हैं; लेकिन भागवत 'संकल्प' के प्रति समर्पण और भागवत 'कृपा' के कार्य में पूर्ण विश्वास के रहते इन्हें जल्दी ही गायब होना पड़ेगा।

२२ मई, १९५७

*

श्रीअरविन्द कहते हैं :

"रोग बेकार में लम्बा खींचा जाता है और जितना अवश्यम्भावी है उससे कहीं अधिक बार उसका अन्त मृत्यु में होता है क्योंकि रोगी का मन शरीर के रोग को सहारा देता है और उसी के बारे में चिन्ता करता रहता है।"[१]

मैं यह और जोड़ती हूं :

"शरीर की बीमारी हमेशा आन्तरिक सत्ता के किसी असामञ्जस्य, किसी अव्यवस्था की द्योतक, उसकी बाहरी अभिव्यक्ति होती है; जब तक यह आन्तरिक अव्यवस्था ठीक नहीं हो जाती, तब तक बाहरी इलाज पूर्ण और स्थायी नहीं हो सकता।"

१ अक्तूबर, १९५९

*

शारीरिक कष्ट हमेशा ऐसे पाठ के रूप में आते हैं जो हमें *समता* सिखलाते हैं और यह प्रकट करते हैं कि हमारे अन्दर कौन-सी चीज इतने पर्याप्त रूप में शुद्ध और दीप्त है जो अप्रभावित रहे। समता में ही तुम उपचार पाते हो।

एक महत्त्वपूर्ण बात : समता का अर्थ उदासीनता नहीं होता।

११ दिसम्बर, १९६५

*

बीमारी एक परीक्षा के रूप में आयी और शुद्धीकरण के रूप में चली गयी। उस सबको बहा ले गयी जो पूर्ण उत्सर्ग के आनन्द के रास्ते में खड़ा था।

२ फरवरी, १९६७

*

यह बीमारी तुम्हारे ऊपर विरोधी शक्तियों के द्वारा कठिन परीक्षा के रूप में डाली गयी है।

तुमने इसे उचित मनोवृत्ति के साथ नहीं लिया।

[१] 'विचार और सूत्र'।

इसीलिए यह चलती चली जा रही है।

तुम्हारा मद्रास वापस जाना मनोवृत्ति में कोई सुधार नहीं लाता—बात इसके विपरीत है।

तुम भय और भगवान् के प्रति अविश्वास की क्रिया के सामने झुके हो। मुझे नहीं लगता कि यह तुम्हें किसी भलाई की ओर ले जायेगी।

*

तुम्हारी बीमारी एक दुर्घटना मात्र नहीं थी। तुमने अपनी चेतना के विस्तार के साथ आन्तरिक परिवर्तन, मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। तुम अपने-आपमें सन्तुष्ट थे। तुम अपनी छोटी-सी सीप में बन्द थे और तुमने कोई प्रगति करने की कोशिश नहीं की। तुम कहते थे कि मुझे साधना में कोई रुचि नहीं है और सोचते थे कि जो थोड़ा-सा काम तुम कर रहे हो वह तुम्हारे लिए काफी था और इससे अधिक किसी चीज की जरूरत नहीं थी। यही मनोवृत्ति तुम्हें मेरी सुरक्षा से बाहर ले गयी। मैंने तुम्हें चेतावनी दी थी लेकिन तुमने यह कहकर प्रकृति को चुनौती दी कि तुम्हें कोई चीज नहीं छू सकती। ये सब चीजें मिल गयीं और मानसिक कठिनाइयां, कमजोरी और बीमारी ले आयीं।

तुम्हें बदलना होगा। तुम्हें महासरस्वती की शर्तों को पूरा करने की कोशिश करनी होगी, अपने काम को अधिकाधिक पूर्ण बनाना होगा, प्रगति करनी होगी और मनोवैज्ञानिक रूपान्तर के लिए कोशिश करनी होगी। इससे कम से तुम्हारा काम न चलेगा। यह कम-से-कम है और अगर तुम सचाई के साथ कोशिश करो तो मेरी सहायता हमेशा साथ होगी।

इन दिनों मेरा काम इतनी तेज गति से चल रहा है कि अगर तुम गम्भीरता से प्रयास न करोगे, तो बहुत पीछे छूट जाओगे और मेरे साथ न रह पाओगे। लेकिन अगर तुम मेरे कहे अनुसार करो, तो सब कुछ ठीक होगा।†

*

तुम्हारी बीमारी ने तुम्हें एक आन्तरिक परिवर्तन की आवश्यकता के प्रति अपनी आंखें खोलने का सुअवसर दिया। तुम्हें इससे लाभ उठाना

चाहिये और प्रगति करनी चाहिये।†

*

वे चीजें जो तुम्हारी प्रकृति में बदलना नहीं चाहतीं एक साथ मिल जाती हैं और बीमारी के रूप में बाहर आती हैं। सशक्त अभीप्सा और सर्वांगीण परिवर्तन ही करने लायक एकमात्र चीज है। तब सब ठीक हो जायेगा।†

भय और बीमारी

सावधान रहो। 'क' पर भय की एक तरह की रचना थी—सर्दी जुकाम का भय, बुरे स्वास्थ्य का भय इत्यादि— ध्यान रखो कि यह रचना तुम्हारे ऊपर न कूद पड़े; तुम्हें इसे दृढ़ संकल्प के साथ दूर फेंकना होगा।

१९३७

*

तुम्हें डरना नहीं चाहिये। तुम्हारी अधिकतर कठिनाइयां भय से आती हैं। वास्तव में, ९० प्रतिशत बीमारियां शरीर के अवचेतन भय का परिणाम होती हैं। शरीर की सामान्य चेतना में छोटी-से-छोटी शारीरिक गड़बड़ के परिणामों के बारे में एक न्यूनाधिक गुप्त चिन्ता होती है। इसे भविष्य के बारे में सन्देहभरे इन शब्दों में अनूदित कर सकते हैं : "अब क्या होगा?" इसी चिन्ता को रोकना होगा। निश्चय ही यह चिन्ता भागवत कृपा में भरोसे का अभाव है और इस बात का अचूक चिह्न कि उत्सर्ग सर्वांगीण और पूर्ण नहीं है।

इस अवचेतन भय पर व्यावहारिक रूप में विजय पाने के लिए यह करो कि जब-जब इसका कोई भाग सतह पर आये, तब-तब सत्ता का अधिक प्रदीप्त अंश इस पर, भागवत कृपा में पूर्ण विश्वास की आवश्यकता का और इस निश्चिति के होने का दबाव डाले कि यह भागवत कृपा हमेशा हमारे अन्दर और साथ ही औरों के अन्दर भी अच्छे-से-अच्छे के

लिए कार्य कर रही है, और भागवत संकल्प के प्रति पूरी तरह और बिना कुछ बचाये अपने-आपको दे देने का निश्चय हो।

शरीर को यह जानना और यह विश्वास रखना चाहिये कि उसका सार तत्त्व भागवत है और यह कि अगर भागवत कार्य के रास्ते में कोई बाधा न डाली जाये तो हमें कोई भी चीज हानि नहीं पहुंचा सकती। इस प्रक्रिया को स्थिरता के साथ तब तक दोहराते रहना चाहिये जब तक भय का आना एकदम बन्द न हो जाये और तब अगर बीमारी प्रकट होने में सफल हो भी जाये तो भी उस पर निश्चित रूप से विजय पाने तक उसकी शक्ति और उसकी अवधि बहुत कम हो जायेगी।

१४ अक्तूबर, १९४५

*

जब शारीरिक अव्यवस्था आये तो तुम्हें डरना नहीं चाहिये, तुम्हें उससे निकल भागना नहीं चाहिये, तुम्हें उसका सामना साहस, शान्ति, भरोसे और इस निश्चिति के साथ करना चाहिये कि बीमारी एक *मिथ्यात्व* है और अगर तुम पूरे भरोसे के साथ, पूरी तरह, पूर्ण अचंचलता के साथ भागवत कृपा की ओर मुड़ो तो वह कृपा इन कोषाणुओं में उसी तरह पैठ जायेगी जिस तरह वह सत्ता की गहराइयों में पैठती है, और स्वयं कोषाणु शाश्वत सत्य और आनन्द के भागीदार होंगे।

*

कुछ समय से मैं अपने पैरों पर चर्मरोग के कारण सचमुच बहुत चिन्तित हूं। माताजी, कृपया मेरे शरीर से इस बीमारी को और मेरे मन से भय को दूर फेंक दीजिये।

सच्ची बीमारी भय है। भय को दूर फेंक दो तो बीमारी चली जायेगी।

मेरी सहायता तुम्हारे साथ है।

आशीर्वाद।

१९६५

*

कैंसर के बारे में : पहली चीज यह है कि तुम्हें समस्त भय को निकाल बाहर करना होगा।

*

अगर तुम नीरोग होना चाहते हो तो दो शर्तें हैं। पहली, तुम्हें भयरहित होना चाहिये, एकदम-से भयरहित, समझ रहे हो ना, और दूसरी, तुम्हें भागवत सुरक्षा में पूर्ण विश्वास होना चाहिये। ये दोनों चीजें आवश्यक हैं।†

बीमारी के बारे में चिन्ता और परेशानी

चिकित्सक ने मेरे खून की जांच कर ली है। उन्होंने मुझे यह पुर्जा आपको यह दिखाने और सूचित करने के लिए दिया है कि मेरा खून कितना कमजोर है। थकान घटने के बजाय बढ़ती हुई प्रतीत होती है।

तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये; तुम शीघ्र ही फिर से अपने पैरों पर खड़े हो जाओगे, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि तुम्हारी प्राणशक्ति बहुत मजबूत बनी रही है। कोई भय न करो और भागवत कृपा पर पूरा भरोसा रखो।

१८ फरवरी, १९३८

*

'क' ने मुझसे कहा, "तुम्हारी यह गलती थी कि तुमने अपने शरीर के इतने दुबले-पतले और कमजोर होने के बारे में माताजी को सूचना नहीं दी।" कृपया मुझे इसे सुधारने का रास्ता बताइये।

इसके बारे में चिन्ता न करो और भागवत कृपा पर अपनी श्रद्धा बढ़ाओ।

आशीर्वाद।

४ जुलाई, १९३९

*

लोगों का कहना है कि बीमारी का यह आक्रमण बहुत अधिक काम करने और काम के कारण धूप और ठण्डी हवा में रहने से होता है। यह बात मुझे चिन्तित करती है।

यह आक्रमण काम या धूप और ठण्डी हवा में रहने के कारण नहीं बल्कि अवचेतना में से उठने वाली एक पुरानी आदत के कारण है। लोग जो कहते हैं उस पर कान न दो और भागवत कृपा पर श्रद्धा बनाये रखो। यथासमय सब कुछ ठीक हो जायेगा।

मेरे आशीर्वाद।

८ जनवरी, १९४०

*

चिन्ता मत करो और अपने हाथ को आराम दो। जल्दी ठीक होने का यह सबसे अच्छा तरीका है।

*

मेरी सलाह है: चिन्ता न करो। तुम उसके बारे में जितना अधिक सोचते हो उतना अधिक तुम उस पर एकाग्र होते हो, और उससे भी बढ़कर, तुम जितना अधिक डरते हो उतना ही उस चीज को बढ़ने का अवसर देते हो।

इसके विपरीत, अगर तुम अपना ध्यान और अपनी रुचि किसी और चीज की ओर मोड़ दो तो तुम रोगमुक्त होने की सम्भावनाओं को बढ़ाते हो।

*

शरीर के इन जड़-भौतिक कार्यों को भला इतना महत्त्व क्यों दिया जाये? इनसे पूरी तरह से मुक्त होने का अनुभव करना और इनके बारे में चिन्ता किये बिना इन्हें अपने रास्ते जाने देना ज्यादा अच्छा है जब तक कि हमारे अन्दर वह आवश्यक शक्ति और ज्ञान न हो जिससे हम उनके अन्धकार में हस्तक्षेप करके उन्हें बदलने और परम प्रकाश और परम

चेतना की सच्ची अभिव्यक्ति बनने को बाधित कर पायें।

*

स्वास्थ्य : उसी के बारे में व्यस्त और व्यग्र न होना बल्कि उसे भगवान् के हाथों सौंप देना।

*

अपने और अपने स्वास्थ्य के बारे में कम सोचो।

निश्चय ही तुम अधिक बलवान् बनोगे।

लेकिन अगर तुम्हें विश्वास है कि तुम्हें कोई बीमारी है तो अस्पताल जाओ, निश्चय ही वे कोई बीमारी ढूंढ़ निकालेंगे।

*

अगर मां-बाप अपने बच्चों को अकेला छोड़ दें, तो वे इस तरह बहुधा बीमार न पड़ेंगे, शायद दस में से एक बार भी नहीं। हां, तुमने बच्चे से कुछ नहीं कहा, लेकिन तुम उसके स्वास्थ्य के बारे में कितनी चिन्तित थीं। ऐसा लगता था मानों कोई अनर्थ हो गया हो या बच्चे को अचानक, कैंसर हो गया हो। तुम्हारी चिन्ता ही सारे वातावरण को खराब करती और परेशानी बढ़ाती है।†

*

अगर तुम बीमार पड़ते हो तो तुम्हारी बीमारी की इतनी व्याकुलता और भय से देख-रेख की जाती है, तुम्हारी इतनी परिचर्या की जाती है कि तुम उस 'एकमेव' से सहायता लेना भूल जाते हो जो तुम्हारी सहायता कर सकता है और तुम एक कुचक्र में पड़ जाते हो और अपनी बीमारी में एक अस्वस्थ रुचि लेने लगते हो।†

*

जब मैं बीस साल की थी, तो किसी चिकित्सक ने मुझसे कहा था कि आमाशय और आंतों की गड़बड़ में सबसे अच्छी चीज है सामान्य रूप से

खाते रहना और गड़बड़ के बारे में बिलकुल चिन्ता न करना। उसने कहा था, "अगर तुम्हारे पेट में अम्लरोग है तो तुम जो कुछ खाओगी उससे तुम्हें अम्ल पैदा होगा और तुम उसके बारे में जितनी चिन्ता करोगी उतना ही अधिक बढ़ेगा। अगर तुम अपने भोजन को बदलती जाओ, तो अन्त में तुम देखोगी कि तकलीफ में पड़े बिना तुम एक बूंद पानी भी नहीं पी सकतीं। लेकिन अगर तुम सामान्य रहो और चिन्ता न करो, तो तुम ठीक हो जाओगी।"

और मैंने इस सलाह को एकदम सच्चा पाया है।†

गलत तरीके से सोचना और बीमारी

वस्तुतः मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूं कि पेट में दर्द और अन्य बहुत-से असुख ९० प्रतिशत गलत तरीके से सोचने और प्रबल कल्पनाएं करते रहने से आते हैं—कहने का मतलब यह है कि उनके लिए भौतिक आधार प्रायः नगण्य होता है।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१९४३

*

अपने-आपको त्रस्त न करो और चिन्ता न करो; सबसे अधिक, समस्त भय को निकाल बाहर करने की कोशिश करो; भय एक खतरनाक चीज है, जो ऐसी चीज को महत्त्व दे सकती है जिसका कोई महत्त्व है ही नहीं। रोग के किन्हीं लक्षणों को फिर से आते हुए देखने का मात्र भय तक उस रोग को दुबारा लाने के लिए पर्याप्त होता है।

२४ जुलाई, १९४५

*

मेरी ऐसी धारणा है कि बहुत प्रोटीन और स्टार्च वाला भोजन एक्ज़ीमा को बढ़ाता है।

शरीर पर भोजन का ९० प्रतिशत प्रभाव सोचने की शक्ति से आता है। अगर तुम विश्वास के साथ डॉ. 'क' का इलाज करो तो तुम नीरोग हो जाओगे।

आशीर्वाद।

६ अक्तूबर, १९६२

*

शायद तुमसे कहा गया होगा कि शरीर के अमुक रोग से तुम्हें बहुत दर्द होगा। इस तरह की चीजें प्रायः कही जाती हैं। तब तुम डर की एक रचना बना लेते हो और दर्द के आने का इंतजार करते रहते हो। और दर्द तब भी आ जाता है जब उसके आने की कोई आवश्यकता नहीं होती।

लेकिन अगर अन्ततः दर्द है ही तो मैं तुमसे एक बात कह सकती हूं। अगर चेतना ऊपर की ओर मुड़ी हो, तो दर्द गायब हो जाता है। अगर वह नीचे की ओर मुड़ी हो तो दर्द का अनुभव होता है, यहां तक कि वह बढ़ भी जाता है। जब तुम उपरले और निचले मोड़ के साथ परीक्षण करते हो, तो तुम देखते हो कि शारीरिक रोगों का यूं दर्द के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। शरीर बहुत अधिक कष्ट पा सकता है या उसे बिलकुल कष्ट नहीं होता यद्यपि उसकी अवस्था एकदम वही-की-वही होती है। चेतना का मोड़ ही सारा भेद करता है।

मैं "ऊपर मुड़े" होने की बात कह रही हूं क्योंकि भगवान् की ओर मुड़ना सबसे अच्छा तरीका है, लेकिन सामान्य तौर पर यह कहा जा सकता है कि अगर चेतना दर्द से हटकर किसी काम या किसी ऐसी चीज की ओर मुड़ जाये जिसमें तुम्हें रस है, तो दर्द बन्द हो जाता है।

और केवल दर्द के लिए ही नहीं बल्कि अंगों की किसी भी क्षति को उस समय अधिक आसानी से ठीक किया जा सकता है जब चेतना को कष्ट से दूर हटा लिया जाये और तुम भगवान् की ओर खुले रहो। भगवान् का एक रूप 'सत्'—ब्रह्माण्ड के ऊपर, परे या पीछे शुद्ध परम 'सत्' है। अगर तुम उसके साथ सम्पर्क बनाये रख सको तो सभी शारीरिक रोगों को दूर किया जा सकता है।†

२५ नवम्बर, १९६२

*

मधुर मां,

डेंग्यू ज्वर के कारण मैं बार-बार टखनों की सूजन की असह्य पुनरावृत्ति से कष्ट पा रही हूं।

चिकित्सक "क" मेरा इलाज कर रहे हैं, लेकिन मैं आपकी 'उपचारक शक्ति' के लिए प्रार्थना करती हूं और खुलने के लिए मैं अपना अधिक-से-अधिक प्रयास कर रही हूं ताकि संकट के इस क्षण में हमारा कार्य प्रगति कर सके।

गलत चीजों की कल्पना करना बन्द कर दो तो साथ ही तुम्हारे कष्ट भी समाप्त हो जायेंगे।

आशीर्वाद।

१० दिसम्बर, १९६४

*

उसकी प्राणशक्ति *बहुत कमजोर* है, लेकिन मानसिक सुझाव काफी मजबूत।

कुछ समय के लिए वह जो मांगे कर दो। शायद वह यह जान ले कि यह सब उसकी कल्पना है, क्योंकि उसकी *कल्पना* ही उसे बीमार बनाती बल्कि उसे बीमारी का *आभास* देती है।

बीमारी को जीतने का संकल्प

अपने अन्दर जीतने का संकल्प जगाओ। केवल मन में ही संकल्प नहीं, बल्कि शरीर के कोषाणुओं तक में संकल्प। इसके बिना तुम कुछ नहीं कर सकते; तुम सैकड़ों दवाइयां ले सकते हो लेकिन वे तुम्हें नीरोग न कर सकेंगी जब तक तुम्हारे अन्दर शारीरिक बीमारी को जीतने का संकल्प न हो।

मैं उस विरोधी शक्ति को नष्ट कर सकती हूं जिसने तुम पर अधिकार कर लिया है। मैं इस क्रिया को हजारों बार दोहरा सकती हूं। लेकिन हर

बार जब कोई रिक्तता पैदा होगी तो वह इन बहुत-सी शक्तियों में से किसी-न-किसी से पुनः भर जायेगी जो अन्दर घुसने की फिराक में रहती हैं। इसीलिए मैं कहती हूं; जीतने के संकल्प को जगाओ।

२० अक्तूबर, १९५७

*

अपने अस्वास्थ्य से प्रेम न करो और अस्वास्थ्य तुम्हें छोड़ देगा।

२८ अगस्त, १९६६

*

दोनों बातें ठीक हैं। अपनी बीमारी से छुटकारा पाने के लिए तुम्हें दृढ़ संकल्प करना होगा और परिणामों के प्रति शान्त और अविचल रहना होगा। ये दोनों चीजें परस्पर विरोधी नहीं हैं। एक को दूसरे का साथ देना चाहिये। जब तुम पूरी तरह से नीरोग हो जाओ तो यह किसी आन्तरिक प्रगति का सूचक होगा।

तुम्हारी सहायता के लिए श्रीअरविन्द की अनुकम्पा हमेशा मौजूद है, लेकिन तुम्हारी ओर से भी कुछ प्रयास आवश्यक है।†

*

उसे ठीक होने का संकल्प लेना चाहिये, नहीं तो वह कभी ठीक न होगी।†

*

अगर शरीर नीरोग होने का निश्चय कर ले तो वह नीरोग हो जाता है।

*

हम जिस उत्साह के साथ मन से मिथ्यात्व का त्याग करते हैं उसी उत्साह के साथ शरीर को बीमारी को त्यागना चाहिये।

कामनाओं का नियन्त्रण

मेरे बच्चे, नीरोग होने के लिए केवल इन अनुचित अभ्यासों को पूरी तरह बन्द करना ही अनिवार्य नहीं है बल्कि अपने विचार और संवेदना से इन सभी अस्वस्थ *कामनाओं* से छुटकारा पाना भी अनिवार्य है क्योंकि कामनाएं ही इन्द्रियों और अवयवों को क्षुब्ध करती और उन्हें बीमार बनाती हैं। तुम्हें कठोरता के साथ सब कुछ साफ कर देना होगा और इसके लिए तुम्हारा संकल्प पर्याप्त शक्तिशाली नहीं है; मेरे संकल्प का आवाहन करो, सचाई के साथ उसे बुलाओ और वह तुम्हारी सहायता के लिए मौजूद होगा। तुम्हारा यह कहना ठीक है कि मेरी सहायता से तुम निश्चय ही जीत सकोगे। यह सच है, लेकिन तुम्हें सचाई के साथ इस सहायता को चाहना होगा और सब परिस्थितियों में तथा अपने अन्दर काम करने देना होगा।

*

(किसी साधक ने माताजी से कहा कि उसकी किसी गम्भीर बीमारी को ठीक करने के लिए माताजी अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रयोग करें।)

अगर तुम्हारा अपनी कामनाओं पर कोई संयम नहीं है तो शक्ति काम नहीं कर सकती।

६ *सितम्बर, १९५९*

*

तुम्हारा अनुमान ठीक है।

अपने पिछले पत्र में मैं खाने की लालसा की बात कर रही थी। जब तक तुम अपने खाने पर नियन्त्रण न रखोगे, तुम हमेशा बीमार बने रहोगे।

१४ सितम्बर, १९५९

*

भोजन के लालच पर विजय : अच्छे स्वास्थ्य की प्रतिज्ञा।

शान्ति और अचंचलता, श्रद्धा और समर्पण

अचंचल रहना और एकाग्र होना, ऊपर से शक्ति को अपना काम करने देना, यह किसी भी बीमारी और हर बीमारी को ठीक करने का सबसे निश्चित तरीका है। अविचल श्रद्धा और दृढ़ संकल्प के साथ अगर इसे ठीक तरह से, समय पर और पर्याप्त समय के लिए किया जाये तो ऐसी कोई भी बीमारी नहीं जो इसका प्रतिरोध कर सके।

६ दिसम्बर, १९३४

*

मुझे बुखार है। इससे पीछा छुड़ाने का सबसे अच्छा तरीका क्या है?

शान्त और विश्वस्त रहो। यह जल्दी ही चला जायेगा।

*

मेरे गले, गर्दन और सिर के पिछले हिस्से में सख्त दर्द है। दौरे असह्य होते हैं और मैं धीरज खो रहा हूं।

तुम्हें धीरज नहीं खोना चाहिये, इससे बीमारी ज्यादा जल्दी ठीक नहीं होती। इसके विपरीत, तुम्हें इस बात पर शान्तिपूर्ण श्रद्धा रखनी चाहिये कि तुम नीरोग हो जाओगे।

५ अक्तूबर, १९३५

*

अपने शरीर में अधिक-से-अधिक महान् शान्ति और अचंचलता स्थापित करो, ये तुम्हें बीमारी के दौरों को रोकने का बल देंगी।

२२ अक्तूबर, १९३५

*

बीमारी के बारे में एकमात्र चीज जिसका मैं सुझाव दे सकती हूं वह है शान्ति को नीचे बुलाना। मन को किसी भी तरीके से शरीर से दूर रखो—चाहे श्रीअरविन्द की किताबें पढ़कर या ध्यान करके। इस स्थिति में भागवत कृपा कार्य करती है। और एकमात्र भागवत कृपा ही नीरोग बनाती है। दवाइयां केवल शरीर के अन्दर एक श्रद्धा जगाती हैं। बस इतना ही।

*

मेरे प्रिय बालक, अब समय आ गया है कि श्रद्धा सचमुच क्रियाशील हो और सभी असंगतियों के विरुद्ध अचल खड़ी रहे। श्रद्धा रखो, सच्ची श्रद्धा कि तुम रोगमुक्त हो जाओगे और तुम रोगमुक्त होकर रहोगे।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२ फरवरी, १९४९

*

क्षुब्ध होने और संघर्ष करने की जगह करने लायक सबसे अच्छी चीज है अपने शरीर को सच्ची प्रार्थना के साथ भगवान् को अर्पित करना, "तेरी इच्छा पूरी हो।" अगर रोगमुक्त होने की कोई सम्भावना है तो यह उसके लिये अच्छी-से-अच्छी परिस्थिति पैदा करेगी; और अगर उसका ठीक होना असम्भव है तो शरीर से बाहर निकलने और बिना शरीर के जीवन के लिए यह अच्छे-से-अच्छी तैयारी है।

बहरहाल, पहली अनिवार्य शर्त है भागवत संकल्प के प्रति अचंचल समर्पण।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

*

5-3-59

Turn your mind completely away from your difficulty, concentrate exclusively on the Light and the Force coming from above; let the Lord do for your body what He pleases. Hand over to Him totally the entire responsibility of your physical being.

This is the cure.

With my blessings

अपने मन को कठिनाई की ओर से पूरी तरह से हटा लो, ऐकान्तिक रूप से ऊपर से आने वाली शक्ति और प्रकाश पर एकाग्र होओ; परम प्रभु तुम्हारे शरीर के लिए जो चाहते हैं उन्हें वही करने दो। अपनी भौतिक सत्ता का समस्त उत्तरदायित्व पूरी तरह से उनके हाथों में सौंप दो।

यही उपचार है।

मेरे आशीर्वाद के साथ।

५ मार्च, १९५९

*

रोगमुक्त होने के लिए अनिवार्य शर्तें हैं स्थिरता और अचंचलता। किसी भी तरह का विक्षोभ, कोई भी घबराहट बीमारी को बढ़ा देते हैं।

२६ *नवम्बर*, १९६९

*

(ऐसे व्यक्ति को जो आमाशय और आंतों के कष्ट से पीड़ित था।)

यह बेचैनी और विक्षोभ के कारण है। बात क्या है? शान्ति, *भागवत शान्ति* को अपने आमाशय के अन्दर उतारो और वह ठीक हो जायेगा।

*

अपने अन्दर शान्ति को पकड़ो और उसे शरीर के कोषाणुओं में प्रवेश कराओ। शान्ति के साथ-ही-साथ स्वास्थ्य लौट आयेगा।

*

शान्ति और स्थिरता बीमारी के महान् उपचार हैं।

जब हम अपने कोषाणुओं में शान्ति ला सकें, तो हम नीरोग हो जाते हैं।

*

स्नायुओं में शान्ति : अच्छे स्वास्थ्य के लिए अपरिहार्य।

भागवत कृपा द्वारा रोगमुक्ति

(वात के किसी रोगी ने लिखा :)

क्या मेरे भाग्य में पंगु होना लिखा है? मैंने अपने जीवन का सबसे अच्छा भाग भगवान् को दे दिया। क्या यही मेरी नियति है? इससे निकलने का क्या कोई रास्ता नहीं है?

श्रद्धा रखो। ऐसा कोई रोग नहीं है जो भागवत कृपा द्वारा ठीक न हो सके।

*

यह मत सोचो कि तुम हमेशा के लिए पंगु हो गये हो, क्योंकि परम प्रभु की कृपा अनन्त है।

*

मैं तुम्हें प्रोत्साहन देने के लिए कि यह श्रद्धा रखो कि तुम्हारी आंखें ठीक हो जायेंगी, दो तेज निगाह वाली चिड़ियों का एक चित्र भेज रही हूं।

मैं देखूंगी क्या किया जा सकता है।

२८ जनवरी, १९३२

*

बीमारी के बारे में क्या किया जाये?

निष्क्रिय रूप से विश्वास रखो : मुझे काम करने दो और काम हो जायेगा।

*

जब कोई किसी बीमारी के चंगुल में फंस जाये तो उसे माताजी से किस तरह प्रार्थना करनी चाहिये?

हे मां! मुझे रोगमुक्त करो।

*

उसकी मानसिक बीमारी जन्मजात, यानी, उसकी शारीरिक रचना के कारण थी, और वह जहां कहीं होती, जिस किसी जीवन में होती उसके साथ यही होता। वस्तुत: मैंने उसे यहां, वह और कहीं जितना जीती उसकी अपेक्षा, डेढ़ वर्ष अधिक जिन्दा रखा।

ये जन्मजात बीमारियां केवल स्वयं शरीर के सर्वांगीण रूपान्तर द्वारा ही ठीक हो सकती हैं और हम साधना में अभी उस अवस्था तक नहीं

पहुंच पाये हैं; अन्यथा यह केवल तथाकथित "चमत्कारिक" उपचार ही हो सकता है और ऐसा "चमत्कार" केवल भागवत कृपा में अचल श्रद्धा और भागवत उत्सर्ग में पूर्ण निष्कपटता के परिणामस्वरूप हो सकता है। उसमें यह बात न थी, वह भय, कामनाओं, मांगों से भरपूर थी और अपनी बाहरी सत्ता और जिसे वह अपनी आवश्यकताएं कहती थी उस पर भयंकर रूप से एकाग्र थी। यह सच्चे उत्सर्ग से एकदम उल्टी चीज है।

२५ मार्च, १९३५

*

मेरे प्यारे बालक,

इस वर्ष तुम्हारी ग्रहणशीलता इस हद तक बढ़े कि वह तुम्हें इतना बल दे कि तुम उस शक्ति का पूरी तरह उपयोग कर सको जो इस समय तुम्हारे अन्दर पूर्ण स्वास्थ्य वापिस लाने के लिए कार्य कर रही है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

२ फरवरी, १९४८

*

'क्ष' ने फिर से लिखा है। उसकी मित्र कु.'त्र' ने (जो कुछ महीने पहले जब यहां आयी थी तो आपसे मिली थी) आपको दो चिट्ठियां लिखी थीं, कम-से-कम देखने में तो यही लगता है कि आपने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया—उसने अपने किसी कष्ट के लिए आशीर्वाद पुष्प मांगा था, वह उसे नहीं मिला। लेकिन अपनी दूसरी चिट्ठी में उसने अच्छी खबर सुनायी है।

ध्यान कैसे नहीं दिया? वह नीरोग हो गयी! अल्प श्रद्धावान् मनुष्य!

३१ मई, १९६७

*

सोने से पहले मैंने आपसे कहा, "यह नहीं चल सकता। अगर यह फोड़ा रहा तो दर्शन के सप्ताह मुझे बिस्तर में रहना पड़ेगा। मुझे

विश्वास नहीं है कि यह सम्भव है।" अगली सुबह फोड़ा अपनी जगह से तीन इंच हट गया और मुझे हिलने-डुलने की पूरी स्वतन्त्रता मिल गयी, एक दो दिन में वह फट भी गया और अब सूख गया है। मुझे आश्चर्य है कि क्या फोड़ा सचमुच इस तरह हट सकता है।

कुछ भी हो सकता है। केवल हमारे "तार्किक मन" ही सीमाएं बांधते हैं। मुझे तुम्हारे शरीर को उसकी ग्रहणशीलता के लिए बधाई देनी चाहिये।

फरवरी १९७०

*

आपके आशीर्वाद से मेरा रोग आंशिक रूप से ठीक हो जाता है लेकिन चला नहीं जाता।

यह तुम्हारे शरीर की ग्रहणशीलता का यथार्थ परिमाण बताता है। रोगग्रस्त अंगों पर शक्ति को एकाग्र करो और उनमें सुधार होगा।

*

औरों के बारे में मैं आपको मन-ही-मन बता देता हूं और इससे काम हो जाता है। लेकिन अपनी बीमारी के बारे में मुझे आपको भौतिक रूप में बताना होता है—क्यों?

यह हर एक की भौतिक ग्रहणशीलता पर निर्भर है, और यह ग्रहणशीलता न्यूनाधिक रूप से हावी होने वाले मन पर निर्भर होती है।

*

यह ग्रहणशीलता का प्रश्न है। मैं उसके लिए जो अच्छे-से-अच्छा किया जा सकता है वह कर रही हूं, लेकिन वह सोचता रहता है कि वह बीमार है। सारे समय वह इसी विचार में व्यस्त रहता है और उसने अपने चारों तरफ बीमारी का एक मजबूत घेरा बना लिया है। इस घेरे के कारण वह मेरी सहायता ग्रहण करने में असमर्थ है। वह बीमारी के विचार को

निकाल बाहर करे तो उसके आधे से अधिक कष्ट खतम हो जायेंगे और उसे रोगमुक्त करना आसान होगा।†

चिकित्सक और दवाइयां

बीमारियां

सत्य परम सामञ्जस्य और परम आनन्द है।

समस्त अव्यवस्था, समस्त कष्ट मिथ्यात्व हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि बीमारियां शरीर के मिथ्यात्व हैं, और, परिणामस्वरूप, चिकित्सक उस महान् और अभिजात सेना के सिपाही हैं जो जगत् में सत्य की विजय के लिए युद्ध कर रही है।

*

अगर हम मानव शरीर को परम प्रभु के अस्थायी आवास के रूप में लें तो चिकित्सा-शास्त्र पूजा का अनुष्ठान बन जाता है और चिकित्सक वे पुजारी जो मन्दिर में पूजा-पाठ सम्पन्न करते हैं।

इस तरह से देखा जाये तो चिकित्सा का पेशा पुरोहिताई का है और इसके साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये।

*

विस्तृत मन, उदार हृदय, अटल इच्छा-शक्ति, शान्त-स्थिर निश्चय, अखूट ऊर्जा और अपने कार्य में पूर्ण विश्वास—इस सबसे बनता है एक पूर्ण चिकित्सक।

*

अन्ततः बीमारी केवल शरीर के किसी भाग द्वारा ली गयी गलत वृत्ति है।

चिकित्सक का प्रमुख कार्य है विभिन्न तरीकों से, शरीर को भागवत

कृपा में अपना विश्वास वापिस लाने के लिए प्रवृत्त करना।

*

चिकित्सा-ज्ञान और अनुभव में, भागवत कृपा पर अपनी पूरी श्रद्धा जोड़ दो, और तुम्हारी रोगमुक्त करने की क्षमता की कोई सीमा न रहेगी।

*

रोगमुक्त करने की आध्यात्मिक शक्ति : भागवत प्रभाव के प्रति उद्‌घाटन और ग्रहणशीलता।

*

उपचार करने की भौतिक शक्ति व्यक्ति की सद्‌भावना में महान् सचाई की मांग करती है।

*

मैं अभी हृद्रोग के दूसरे दौरे से मुक्त नहीं हुआ हूं। पहला जून १९३८ में किसी उत्तेजक टॉनिक पाउडर की बहुत अधिक मात्रा के कारण हुआ था। इस बार हृदय की मांसपेशी पर ज्यादा भार के कारण हुआ है। चिकित्सकों ने पीठ पर लेटे रहकर पूर्ण विश्राम की सलाह दी है। यहां तक कि सिर भी नहीं उठाया जा सकता। उन्होंने मुझे यह चेतावनी भी दी है कि अगर मैं बहुत अधिक सावधानी न बरतूंगा तो मुझे अधिक गम्भीर कष्ट हो सकता है। लेकिन मैं अपने-आपको आपकी उपस्थिति से भरा हुआ अनुभव करता हूं और अचानक प्रचुर मात्रा में आती हुई काव्य-प्रेरणा मुझसे जो करवाती है वह करता हूं। मैं बहुधा उठ बैठता हूं। कविता के अंश से उत्तेजित हो जाता हूं, विशेषकर जब पंक्तियां विस्तृत, सुदूर क्षेत्रों से आती प्रतीत होती हैं—और उस समय मेरा हृदय जोरों से धड़कने लगता है। अगर उस समय चिकित्सक अपना स्टेथोस्कोप मेरी छाती पर रख सकें तो तेजी से स्वस्थ होने की सम्भावना पर अपना सिर हिला दें।

लेकिन मुझे कोई परवाह नहीं है। मुझे निश्चित रूप से आपकी शक्ति पर विश्वास है—और डाक्टर अच्छे-से-अच्छे अभिप्राय के साथ, स्वयं मेरे अपने हित में, हृदय के बारे में लापरवाही से आने वाले घोर अन्धकारमय भविष्य की जो चेतावनी देते हैं उसे हंसी में उड़ा देने को जी चाहता है। मेरी प्यारी मां, मुझे विश्वास है कि भागवत शक्ति सहायता कर सकती है—नहीं कर सकती है क्या?

मेरे प्यारे बच्चे, मैं तुम्हारी इस बात से बिलकुल सहमत हूं कि चिकित्सकों और दवाइयों से कहीं अधिक समर्थ एक और शक्ति है और मुझे यह देखकर खुशी हुई कि तुम उस पर विश्वास करते हो। निश्चय ही सभी भयंकर चेतावनियों के बावजूद यह तुम्हें सभी कठिनाइयों से पार ले जायेगी। अपनी श्रद्धा को बनाये रखो और सब कुछ ठीक हो जायेगा।

२८ मई, १९४८

*

(दवाइयों के बारे में)

मुझे इन चीजों में विशेष दिलचस्पी नहीं है जो बाहरी चेतना के लिए केवल बाहरी सहायता हैं और योग के लिए आवश्यक नहीं हैं।

*

किसी भी दवाई का पूरा मूल्य उसके अन्दर निहित भाव में होता है।

२२ फरवरी, १९६१

*

एक चिकित्सक से दूसरे चिकित्सक के पास जाना वैसी ही भूल है जैसी एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाना। एक भौतिक स्तर पर और दूसरी आध्यात्मिक स्तर पर। तुम्हें अपने चिकित्सक को चुन लेना चाहिये और अगर तुम भौतिक गड़बड़ में नहीं पड़ना चाहते तो उसी के साथ लगे रहना चाहिये। अगर स्वयं चिकित्सक किसी और से या औरों से सलाह करने का

निश्चय करे केवल तभी इसे सुरक्षित रूप से किया जा सकता है।

१४ मार्च, १९६१

*

मैंने तुम्हें चिकित्सक के पास भेजा है और तुमसे वही करने की आशा रखती हूं जो करने के लिए वह कहे।

१ अप्रैल, १९६१

*

क्या आपके ख्याल से मैं चिकित्सक "क" से इलाज करवा सकता हूं—आखिर, कोई चिकित्सा-पद्धति नहीं बल्कि आपकी कृपा ही रोगमुक्त करती है।

यह सच है कि चिकित्सक से बढ़कर श्रद्धा रोगमुक्त करती है। तुम चिकित्सक "क" का इलाज करवा सकते हो और भागवत सहायता को पुकार सकते हो।

५ *अगस्त, १९६२*

*

क्या आप काली से मुझे ज्वर की अग्नि से जला देने के लिए कहेंगी? मैं काफी निराश हो गया हूं। क्या मैं आयुर्वेद की सीधी-सादी दवाइयां लूं?

इतने निराश होने से पहले, आयुर्वेद-चिकित्सा कर देखो। और इसे काली की शक्ति पर एकाग्र होकर लो।

आशीर्वाद।

४ मई, १९६५

*

हर एक स्थिति में 'शक्ति' ही रोगमुक्त करती है।

दवाइयों का प्रभाव कम ही होता है; दवाइयों में श्रद्धा ही रोगमुक्त करती है।

उसी चिकित्सक से इलाज करवाओ जिस पर तुम्हें विश्वास है और केवल वही दवाइयां लो जो तुम्हारे अन्दर विश्वास जगायें।

शरीर को केवल भौतिक उपायों पर विश्वास होता है इसीलिए तुम्हें उसे दवाइयां देनी पड़ती हैं—लेकिन दवाइयों का असर केवल तभी होता है अगर उनके द्वारा 'शक्ति' कार्य करे।

एलोपैथ चिकित्सक साधारणतः एक चीज को रोगमुक्त कर देते हैं, लेकिन दूसरी किसी चीज को बिगाड़ कर रख देते हैं।

आयुर्वेद-चिकित्सकों में सामान्यतः यह त्रुटि नहीं होती। इसीलिए मैं उनके पास जाने की सलाह देती हूं।

२० दिसम्बर, १९६५

*

चिकित्सक की सहायता के साथ या उसके बिना अपनी प्रकृति की शुद्धि के लिए चाहे कैसी भी अग्निपरीक्षा क्यों न हो, मुझे उससे गुजरना ही होगा।

तुम्हारी बात बिलकुल ठीक है। अपनी श्रद्धा से चिपके रहो और तुम रोगमुक्त हो जाओगे।

आशीर्वाद सहित।

५ जुलाई, १९६७

आश्रम के चिकित्सा-विभागों के लिए सन्देश

('आयुर्वेद विभाग' के उद्घाटन के लिए सन्देश)

इस नये क्रिया-कलाप में अतीत के ज्ञान को आज के अन्तःप्रकाश से प्रदीप्त होना चाहिये।

मेरे आशीर्वाद सहित।

२२ फरवरी, १९५७

*

('बच्चों की डिस्पेन्सरी' के उद्‌घाटन के लिए सन्देश)

बच्चों की डिस्पेंसरी

जितने रोगी
उतने उपचार

चिकित्सा शास्त्र में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है शरीर को उचित तरीके से प्रतिक्रिया करना और बीमारी को त्यागना सिखलाना।

आशीर्वाद।

२ जुलाई, १९६३

*

('स्कूल फॉर परफेक्ट आइसाइट' के उद्‌घाटन के लिए सन्देश)

मन जितना अचञ्चल होगा, दृष्टि उतनी ही अच्छी होगी।

५ मई, १९६८

*

('प्राकृतिक चिकित्सा विभाग' के लिए सन्देश)

प्रकृति सर्वतोमुखी 'चिकित्सक' है।

२ जुलाई, १९६८

*

('मुख्य डिस्पेन्सरी' के लिए सन्देश)

अन्त में श्रद्धा ही रोगमुक्त करती है।

आशीर्वाद।

९ अगस्त, १९६९

***

(पॉण्डिचेरी के पास 'जवाहरलाल इन्सटिट्यूट ऑफ पोस्टग्रेजुएट मेडिकल ऐजुकेशन ऐण्ड रिसर्च' (जिपमेर) के लिए सन्देश)

सत्य ही रोगमुक्त करता है।

१९५७

सामान्य

माताजी, कई दिनों से मैं नियमित रूप से सूर्य-स्नान कर रहा हूं। खांसी धीरे-धीरे जा रही है। अब थोड़ी-सी खांसी आती है लेकिन अब वह मुझे परेशान नहीं करती। क्या सूर्य-स्नान जारी रखना अच्छा होगा?

हां, तुम्हें यह प्रतिदिन करना चाहिये; यह बल देता है और तुम्हारी ऊर्जा को बनाये रखता है।

*

जहां तक हो सके तुम्हें खांसी को रोकना चाहिये। *संकल्प द्वारा खांसी को वश में किया जा सकता है,* और तुम्हें हमेशा इस संयम को पाने की कोशिश करनी चाहिये, क्योंकि खांसी अनावश्यक रूप से थकाने वाली होती है।

*

माताजी, यह खांसी मुझे बहुत दुःख दे रही है। इसे वश में करना मुश्किल हो रहा है। जब मैं आपको लिखता हूं तो कम हो जाती है, लेकिन कुछ दिनों के बाद फिर लौट आती है। माताजी, इसका कारण क्या है?

सम्भवतः कोई बुरे सुझाव हों जिन्हें तुम्हें दूर भगाना सीखना होगा।

*

(हल्के बुखार के बाद)
माताजी, मुझे लगता है कि मेरे शरीर में गर्मी शुद्धि की आग से आती है। क्या यह सच है?

शुद्धि की अग्नि को बुखार लाये बिना शुद्ध करना चाहिये, और बीमार पड़े बिना शुद्ध होना बहुत सम्भव है।

२८ मार्च, १९३५

*

एक वृद्ध और बहुत ही दुर्बल व्यक्ति की अष्ठीला (प्रॉस्टेट ग्रन्थि) बढ़ गयी है। चिकित्सक शल्यक्रिया की सलाह दे रहे हैं। वह आपका मार्गदर्शन चाहता है।

बहुत सम्भव है कि अन्त निकट आ रहा है। सब कुछ उसके स्वभाव और संकल्प पर निर्भर है। अगर वह बिना संघर्ष के शान्ति से चले जाना अधिक पसन्द करता है तो उसे शान्त रहने दो और जितना अधिक खींच सके खींचने दो। अगर वह संघर्ष पसन्द करे तो ऑपरेशन होने दो, देखें क्या होता है। हर हालत में मेरे आशीर्वाद उसके साथ होंगे।

*

ऑपरेशन के बाद 'क' की मृत्यु के समाचार से मैं कुछ उदास-सा हो गया। वह आपके असाधारण क्षमतावाले कार्यकर्ताओं में से एक था। यह कैसी बात है कि वह आपके प्रभाव और मार्ग-दर्शन के बावजूद गुजर गया?

ऑपरेशन बिलकुल सफल हुआ था, एक बहुत ही कुशल शल्य-चिकित्सक ने किया था लेकिन "क" का हृदय जितना सोचा था उससे कहीं अधिक कमजोर निकला और वह ऑपरेशन के पांच दिन बाद चल बसा। यह एक दुःखद घटना हुई और काम के लिए बड़ी हानि। लेकिन कुछ समय से उसे बहुत कष्ट हो रहा था और वह थक गया था। उसने कई बार शरीर

परिवर्तन और ज्यादा अच्छा शरीर पाने की इच्छा प्रकट की थी। निश्चय ही जो हुआ है उसके लिए इस इच्छा की जिम्मेदारी थी।

२२ नवम्बर, १९४५

*

यह कहना कठिन है कि इन दोनों सम्भावनाओं में से ठीक-ठीक कौन-सी तुम्हारे स्वास्थ्य-लाभ के लिए ज्यादा सहायक होगी। लेकिन सामान्यतया लम्बे समय के बाद शरीर के लिए हवा बदलने के स्थान पर शुरू में ही वैसा कर लेना ज्यादा सहायक रहता है क्योंकि स्वास्थ्य के लिए जीवन और उसके परिवेश में दिलचस्पी न होना सबसे अधिक हानिकर चीज है। कुछ समय के लिए कोई भी नयी चीज दिलचस्पी पैदा कर सकती है—लेकिन उसका असर कभी स्थायी नहीं होता।

२१ फरवरी, १९४६

*

ये परस्पर विरोधी संस्कार बिलकुल स्वाभाविक हैं।

पार्थिव चेतना स्वाभाविक रूप से खुश होती है जब परिस्थितियां इस तरह जुट जाती हैं कि जिन्हें वह अपनी आवश्यकताएं समझती है उनकी तुष्टि हो। बहरहाल, ये फिर से जीवन में सन्तुलन और विश्वास ले आने में सहायक होती हैं।

अन्तरात्मा इसमें आत्मा पर पार्थिव तत्त्व की एक और विजय देखती है (क्योंकि हर ऐसी बीमारी जो आन्तरिक उपचार के आगे प्रतिरोध करती है, आत्मा की हार होती है। वह चाहे थोड़े समय के लिए ही क्यों न हो पर होती हार ही है) अन्तरात्मा न तो कष्ट पा सकती है न दुःखी होती है क्योंकि उसे अपनी शाश्वतता में श्रद्धा होती है और वह इसे जानती है लेकिन कभी-कभी वह जरा उदास हो सकती है।

१९ जून, १९६०

*

कृपया माताजी से कहिये कि सारे समय मुझे ऐसा लगता रहता है

कि मेरे हाथ-पैरों से मेरा प्राण और ऊर्जा बहे चले जा रहे हैं। मैं उसे रोक नहीं पाता।

वह शिकायत क्यों करता है? नयी शक्ति आने के लिए शक्ति का खर्च होना ही चाहिये। मानव शरीर बन्द घड़ा नहीं है जो खर्च करने से खाली हो जाये। मानव शरीर एक वाहिका है जिसमें कुछ आता तभी है जब खर्च हो।

वह अच्छी तरह खाये, अच्छी तरह सोये, गलत विचारों से बचे और सामान्य रूप से खर्च करे। वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जायेगा।

२० अप्रैल, १९६८

*

अपनी जीवन-पद्धति को सुधारने से ही तुम अच्छा स्वास्थ्य पाने की आशा कर सकते हो।

*

तुम्हारे झगड़े-झंझट, चीख-पुकार, बेचैनी, घबराहट, उत्तेजना लड़ाई-झगड़े के कारण ही "क" बीमार है। मैंने शुरू से ही कहा था कि उसे आराम और शान्ति की जरूरत है। यह विशेष रूप से अनिवार्य था लेकिन उसके चारों ओर उल्टा ही वातावरण रहा है—इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वह बीमार है। वह रोती और कांपती है क्योंकि उसकी स्नायुओं पर अधिक भार पड़ रहा है और उन पर अधिक भार इसलिए पड़ रहा है क्योंकि तुम सबका अपने ऊपर संयम नहीं है और अपनी जबान पर लगाम नहीं।

उसके लिए पकाना बहुत अच्छा है लेकिन यह काफी नहीं है, तुम्हें उसे शान्ति और अचञ्चलता भी देनी चाहिये ताकि वह खा सके।

*

जब मैं किसी रोगी के साथ सहानुभूति रखता हूं तो मैं स्वयं उसकी बीमारी के लक्षण अनुभव करने लगता हूं।

सबसे अच्छा उपाय है सत्य और सामञ्जस्य की दिव्य उपस्थिति को पुकारना ताकि वह अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता के स्पन्दनों को बदल दे।

*

सिर दर्द और सिर के चक्करों से पिण्ड छुड़ाना बहुत कठिन नहीं है। तुम्हारी अवस्था कितनी भी खराब क्यों न हो, ऊपर से प्रकाश को पुकारो। यह अनुभव करने की कोशिश करो कि तुम्हारे सिर के ऊपर से प्रकाश तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर रहा है और अपने साथ स्थिरता और शान्ति ला रहा है। अगर तुम गम्भीरता के साथ ऐसा करो तो तुम्हारा सिर दर्द और चक्कर तुरत छू-मन्तर हो जायेंगे।†

*

अर्बुद हमेशा प्रकृति में किसी कठिनाई के सूचक होते हैं। कुछ कोषाणु शरीर के नियन्त्रण से स्वतन्त्र होने का निश्चय कर लेते हैं। वे शरीर के अन्य भागों के साथ सामञ्जस्य में नहीं रहते और समस्त अनुपात छोड़कर बढ़ना शुरू करते हैं। साधारणतः यह प्रकृति में बहुत अधिक लोभ का लक्षण होता है। वह भौतिक चीजों के लिए लालच हो सकता है या शक्ति अथवा किसी अन्य सूक्ष्म चीज के लिए लोभ हो सकता है।

ऑपरेशन करके तुम अर्बुद को निकाल सकते हो लेकिन अगर भीतरी प्रकृति वैसी-की-वैसी बनी रहे तो वह किसी और भाग में उभर आयेगा और रोगी ने ऑपरेशन और उसके बाद के प्रभाव से जो कष्ट झेला वह सब व्यर्थ हो जायेगा।†

*

शरीर के कोषाणु बिना कारण बढ़ने की आदत डाल लेते हैं। यही कैंसर है। अगर तुम कोषाणुओं की चेतना बदल सको और उनकी आदत छुड़ा दो तो कैंसर ठीक हो जायेगा।†

सन्देश

नव वर्ष पर प्रार्थनाएं[१]

१९३३

नये वर्ष के जन्म के साथ-साथ हमारी चेतना का भी नया जन्म हो!

चलो, भूतकाल को बहुत पीछे छोड़कर हम ज्योतिर्मय भविष्य की ओर दौड़ चलें।

*

१९३४

हे प्रभु, वर्ष का अन्त हो रहा है और हमारी कृतज्ञता तेरे सामने झुक रही है।

हे नाथ! वर्ष का नया जन्म हो रहा है और हमारी प्रार्थना तेरी ओर उठ रही है।

वर दे कि यह हमारे लिए भी एक नये जीवन की उषा हो।

*

१९३५

हे प्रभु! हमारे अन्दर जो कुछ बनावटी और मिथ्या है, जो कुछ ऊपरी दिखावा और अनुकरण करने वाला है, वह सब कुछ आज[२] सन्ध्या समय हम तुझे समर्पित कर रहे हैं। वह सब कुछ समाप्त होने वाले वर्ष के साथ-साथ हमारे अन्दर से गायब हो जाये। जो कुछ पूरी तरह से सत्य, निष्कपट, ऋजु और पवित्र है वही आरम्भ होने वाले नये वर्ष में हमारे अन्दर बना रहे।

*

[१] हर वर्ष पहली जनवरी को दिये गये सन्देश।

[२] ३१ दिसम्बर, १९३४ की शाम को।

१९३६

हे प्रभो! यह वर्ष तेरी विजय का वर्ष हो! हम ऐसी पूर्ण निष्ठा के लिए अभीप्सा करते हैं जो हमें उस विजय के योग्य बनाये।

*

१९३७

तेरी जय हो प्रभो! सब विघ्नों पर विजय पाने वाले नाथ! तेरी जय हो!

ऐसी कृपा कर कि हमारे अन्दर कोई भी चीज तेरे कार्य में बाधक न हो।

*

१९३८

हे प्रभो! वर दे कि हमारे अन्दर की प्रत्येक चीज तेरी सिद्धि के लिए तैयार हो जाये! इस नये वर्ष की देहली पर खड़े होकर हम तुझे नमस्कार कर रहे हैं, हे प्रभो! हे परम सिद्धिदाता!

*

१९३९

यह शुद्धि का वर्ष होगा।

हे प्रभो, भगवान् के काम में भाग लेने वाले सभी कार्यकर्ता तुझसे प्रार्थना करते हैं कि परम पवित्रीकरण द्वारा वे अहंकार के शासन से मुक्त हो जायें।

*

१९४०

नीरवता और प्रत्याशा का वर्ष...

भगवान्! हम एकमात्र तेरी कृपा पर पूरी तरह आश्रित रहें।

*

१९४१

संसार अपने आध्यात्मिक जीवन की रक्षा करने के लिए युद्ध कर रहा है जिसे विरोधी और आसुरिक शक्तियों के आक्रमण ने संकट में डाल रखा है।

हे प्रभो! हम यह अभीप्सा करते हैं कि हम तेरे वीर योद्धा बनें ताकि तेरी महिमा इस पृथ्वी पर अभिव्यक्त हो।

*

१९४२

तेरी जय हो, सब शत्रुओं पर विजय पाने वाले प्रभु! तेरी जय हो!

हमें ऐसी शक्ति दे कि हम अन्त तक अचल-अटल बने रहें और तेरी विजय में भाग ले सकें।

*

१९४३

वह समय आ गया है जब हमें एक चुनाव, मौलिक और सुनिश्चित चुनाव करना होगा।

हे प्रभो! हमें ऐसी शक्ति दे कि हम मिथ्यात्व का त्याग कर सकें, पवित्र और तेरी विजय के उपयुक्त पात्र बनकर तेरे सत्य में ऊपर उठ सकें।

*

१९४४

हे प्रभो, समस्त मनुष्य जाति तुझसे प्रार्थना करती है कि तू उसे बार-

बार उन्हीं मूर्खताओं में जा गिरने से बचा।

ऐसी कृपा कर कि जो भूलें पहचानी जा चुकी हैं, वे फिर से नये सिरे से दुहरायी न जायें।

अन्त में, वर दे कि मनुष्यजाति के कर्म उन आदर्शों को ठीक-ठीक और सच्चे तौर पर प्रकट करें जिनकी उसने घोषणा की है।

*

१९४५

यह पृथ्वी तब तक सजीव और स्थायी शान्ति का उपभोग नहीं कर सकती जब तक मनुष्य अपने अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहारों में भी पूर्ण रूप से सत्यपरायण होना नहीं सीख लेते।

हे प्रभो! हम इसी पूर्ण सत्यपरायणता के लिये अभीप्सा करते हैं।

*

१९४६

हे प्रभो! हम तेरी शान्ति चाहते हैं, शान्ति का व्यर्थ आभास नहीं; तेरी स्वतन्त्रता चाहते हैं, स्वतन्त्रता का दिखावा नहीं; तेरी एकता चाहते हैं, एकता की छायामूर्ति नहीं। कारण एकमात्र तेरी शान्ति, तेरी स्वतन्त्रता और तेरी एकता ही उस अन्धी हिंसा, छल-कपट और मिथ्यात्व को जीत सकती है जो अभी तक पृथ्वी पर राज्य कर रहे हैं।

हे नाथ! वर दे, जिन लोगों ने तेरी विजय के लिए इतनी बहादुरी के साथ युद्ध किया है और दु:ख झेला है, वे इस विजय के सच्चे और वास्तविक परिणामों को इस जगत् में चरितार्थ होते देखें।

*

1947

At the very moment when everything seems to go from bad to worse, it is then that we must make a supreme act of faith and know that the Grace will never fail us.

१९४७

जिस समय हर चीज बुरी से अधिक बुरी अवस्था की ओर जाती हुई प्रतीत होती है, ठीक उसी समय हमें अपनी महती श्रद्धा का परिचय देना चाहिये और यह जानना चाहिये कि भगवत्कृपा कभी हमारा साथ नहीं छोड़ेगी।

*

१९४८

बढ़ते चलो, निरन्तर बढ़ते चलो!
सुरंग के अन्त में है ज्योति...
युद्ध के अन्त में है विजय!

*

१९४९

हे नाथ, नये वर्ष से पहले की शाम को मैंने तुझसे पूछा कि मुझे क्या कहना चाहिये। तूने मुझे दो चरम सम्भावनाएं दिखा दीं और चुप रहने का आदेश दिया।

*

१९५०

बोलो मत, करो।
घोषणा न करो, कार्यान्वित करो।

*

1951

Lord, we are upon earth to accomplish Thy work of transformation. It is our sole will, our sole preoccupation. Grant that it may be also our sole occupation and that all our actions may help us towards this single goal.

१९५१

नाथ, हम धरती पर तेरा रूपान्तर का काम पूरा करने के लिए हैं। यही हमारा एकमात्र संकल्प और हमारी एकमात्र धुन है। वर दे कि यही

हमारा एकमात्र कार्य हो और हमारे सब कर्म इसी एक उद्देश्य की ओर बढ़ने में सहायक हों।

*

१९५२

हे नाथ, तूने हमारी श्रद्धा की गुणवत्ता की परीक्षा लेने और हमारी सच्चाई को अपनी कसौटी पर परखने का निश्चय किया है। वर दे कि हम इस अग्नि-परीक्षा में से अधिक विशाल और अधिक पवित्र होकर निकलें।

*

१९५३

नाथ, तूने हमसे कहा है : हार न मानो, डटे रहो। जब सब कुछ डूबता हुआ लगता है तभी सब कुछ बचा लिया जाता है।

*

१९५४

मेरे स्वामी, इस साल के लिए सबको तुम्हारी यही सलाह है :

"किसी चीज के बारे में डींग न मारो। तुम्हारे कार्य ही तुम्हारे लिए बोलें।"

*

१९५५

कोई मानवीय संकल्प भागवत संकल्प के सामने नहीं टिक सकता। आओ, हम अपने-आपको स्वेच्छा के साथ, अनन्य भाव से भगवान् के पक्ष में रखें और, अन्त में विजय निश्चित है।

1955

No human will can finally prevail against the Divine's Will. Let us put ourselves deliberately and exclusively on the side of the Divine, and the Victory is ultimately certain

*

१९५६

बड़ी-से-बड़ी विजयें सबसे कम शोर मचाने वाली होती हैं।

नये जगत् के प्रकट होने की घोषणा ढोल बजाकर नहीं की जाती।

*

१९५७

विजय केवल वही शक्ति पा सकती है जो विरोधी अशुभ शक्ति से ज्यादा महान् हो।

क्रूस पर चढ़ा हुआ शरीर नहीं, महामहिमान्वित शरीर ही संसार का उद्धार करेगा।

1957

A Power greater than that of Evil can alone win the victory. It is not a crucified but a glorified body that will save the world.

*

१९५८

हे प्रकृति, हमारी पार्थिव मां! तूने कहा है कि तू सहयोग देगी और इस सहयोग की भव्य महिमा की कोई सीमा नहीं।

1958

O Nature, Material Mother, thou hast said that thou wilt collaborate and there is no limit to the splendour of this collaboration.

*

१९५९

निश्चेतना की एकदम तली में जहां वह बहुत कठोर, अनम्य, संकरी और दमघोंटू है, मैं एक ऐसी सर्वसशक्त कमानी पर जा पहुंची जिसने तुरन्त मुझे निराकार, निःसीम 'बृहत्' में उछाल दिया जो एक नये जगत् के बीजों से स्पन्दित हो रहा था।

*

१९६०

जानना अच्छा है,
जीना और भी अच्छा है,
होना, वह सबसे अच्छा है।

*

१९६१

आनन्द की यह अद्‌भुत सृष्टि, धरती पर उतरने के लिए हमारी पुकार की प्रतीक्षा में हमारे द्वारे खड़ी है...।

*

१९६२

हमें पूर्णता की प्यास है। लेकिन उस मानव पूर्णता की नहीं जो अहंकार की पूर्णता है और दिव्य पूर्णता में बाधा देती है।

लेकिन उस एकमात्र पूर्णता की जिसमें 'शाश्वत सत्य' को धरती पर प्रकट करने की शक्ति है।

1962

We thirst for perfection.
Not this human perfection which is a perfection of the ego and bars the way to the Divine perfection.
But that one perfection which has the power to manifest upon earth the Eternal Truth

*

१९६३

चलो, भागवत मुहूर्त के लिए तैयारी करें।

*

१९६४

क्या तुम तैयार हो?

*

१९६५

सत्य के आगमन को नमस्कार।

*

१९६६

आओ, हम सत्य की सेवा करें।

*

१९६७

मनुष्यो, देशो और महाद्वीपो!
चुनाव अनिवार्य है :
सत्य या फिर रसातल।

*

१९६८

हमेशा युवा बने रहो, पूर्णता प्राप्त करने का प्रयास कभी बन्द मत करो।

*

१९६९

कथनी नहीं—करनी।

*

१९७०

जगत् एक बहुत बड़े परिवर्तन की तैयारी कर रहा है।
क्या तुम सहायता करोगे?

*

१९७१

धन्य हैं वे लोग जो भविष्य की ओर छलांग मारते हैं।

*

१९७२

आओ, हम सब श्रीअरविन्द की शताब्दी के योग्य बनने की कोशिश करें।

*

१९७३

जब तुम एक ही साथ समस्त संसार के बारे में सचेतन होते हो तब तुम भगवान् के बारे में सचेतन हो सकते हो।

*

नव वर्ष के सन्देशों पर टिप्पणियां

१९४३

वह समय आ गया है जब हमें एक चुनाव, मौलिक और सुनिश्चित चुनाव करना होगा।

हे प्रभो! हमें ऐसी शक्ति दे कि हम मिथ्यात्व का त्याग कर सकें, पवित्र और तेरी विजय के उपयुक्त पात्र बनकर तेरे सत्य में ऊपर उठ सकें।

यह सामान्य सिद्धान्त का प्रश्न नहीं है; यह वस्तुओं की वास्तविकता से सम्बन्ध रखता है। असुर मिथ्यात्व की शक्ति है और भगवान् का विरोधी है। सारे भौतिक जगत् पर वह मानों एकछत्र राज करता है। उसका प्रभाव हर जगह, जड़ जगत् की हर चीज में अनुभव होता है। लेकिन अब समय आ गया है जब इन्हें अलग और शुद्ध किया जा सकता है, मिथ्यात्व और आसुरिक प्रभाव का वर्जन कर भागवत सत्य में अनन्य भाव से रहा जा सकता है।

३ जनवरी, १९४३

*

१९४७

यह प्रार्थना नहीं है बल्कि एक प्रोत्साहन है।

वह प्रोत्साहन और उसकी व्याख्या इस प्रकार है :

"जिस समय हर चीज बुरी से अधिक बुरी अवस्था की ओर जाती हुई प्रतीत होती है, ठीक उसी समय अपनी महती श्रद्धा का परिचय देना चाहिये और यह जानना चाहिये कि भगवत्कृपा कभी हमारा साथ नहीं छोड़ेगी।"

उषा से पहले की घड़ियां सदा ही घनघोर अंधकार से भरी होती हैं।

स्वतन्त्रता आने से ठीक पहले की परतन्त्रता सबसे अधिक दुःखदायी होती है।

परन्तु श्रद्धा से मण्डित हृदय में आशा की वह सनातन ज्योति जलती रहती है जो निराशा के लिए कोई अवकाश नहीं देती।

*

जाये। यह सच नहीं है।

भागवत कृपा तुम्हारी अभीप्सा की चरितार्थता के लिए कार्य करती है और सबसे अधिक तत्पर, सबसे तेज चरितार्थता पाने के लिए सभी चीजों की व्यवस्था की जाती है—अतः डरने की कोई बात नहीं।

भय कपट से आता है। अगर तुम आरामदेह जीवन, अनुकूल परिस्थितियां इत्यादि चाहो, तो तुम शर्तों और सीमाओं को लगाते हो, और तब तुम भयभीत हो सकते हो।

लेकिन इसका साधना के साथ कोई सम्बन्ध नहीं।

२६ मई, १९६७

*

१९७०

जगत् एक बहुत बड़े परिवर्तन की तैयारी कर रहा है।
सहायता करोगे?

नव वर्ष के सन्देश में आपने जिस महान् परिवर्तन के बारे में कहा है उसमें हम किस तरह सहायता कर सकते हैं?

सहायता करने का सबसे अच्छा तरीका है—धरती पर जो परम चेतना उतरी है उसे अपने अन्दर रूपान्तर का कार्य करने देना।

९ जनवरी, १९७०

*

"भविष्य के लिए काम करने" का क्या अर्थ है?

आरम्भ करने के लिए, पुरानी व्यक्तिगत और राष्ट्रीय आदतों से चिपके न रहना।

*
**

वर दे, यह वर्ष सच्ची दयालुता से—जो भागवत अनुकम्पा की मानव सन्तान है—आने वाले आनन्द की दीप्तिमान शान्ति का वर्ष हो।

हम यह आशा भी करें कि यह वर्ष हमें एक बार फिर से एक साथ लाये बिना न गुजरे।

*
* *

Let the Dawn of the New Year be for us also the Dawn of a new and better life.

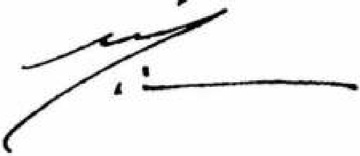

वर दे, नव वर्ष की उषा हमारे लिए भी एक नये और अधिक अच्छे जीवन की उषा हो।

*

माताजी, नव वर्ष के सूर्यालोक की प्रथम किरण के साथ मेरे समस्त अज्ञान और अहं को दूर कर दीजिये।

अपने प्रकाश को मेरे अन्दर प्रज्ज्वलित कीजिये और ऐसा हो कि यह प्रकाश मेरे अन्दर एक ऐसी चेतना को जन्म दे जो आपके परम आनन्द से भरपूर हो।

हां, नये वर्ष से अज्ञान के धुएं को दूर करना होगा और प्रकाश को प्रज्ज्वलित करना होगा।

मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं।

*

दर्शन-सन्देश[१]

२४ अप्रैल, १९५०

शिष्य रूपों का मूल्यांकन गुरु से करते हैं।
बाहर वाले गुरु का मूल्यांकन रूपों से करते हैं।

*

१५ अगस्त, १९५०

हमारी साधना अब एक ऐसे स्तर पर पहुंच गयी है जहां हम अधिकतर अवचेतना और निश्चेतना पर भी काम कर रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप भौतिक नियतिवाद का पलड़ा भारी हो गया है और मार्ग की कठिनाइयां बढ़ गयी हैं, इनका सामना अधिक साहस और दृढ़ता के साथ करना होगा।

बहरहाल, जो भी हो, तुम जो भी करो, *भय* को अपने ऊपर आक्रमण न करने दो। उसके जरा-से स्पर्श पर भी सक्रिय हो जाओ और सहायता के लिए पुकारो।

तुम्हें यह सीखना होगा कि अपने-आपको शरीर के साथ एक न समझो, शरीर के साथ एक छोटे बच्चे का-सा व्यवहार करो जिसे यह विश्वास दिलाने की जरूरत है कि उसे डरना न चाहिये।

भय हमारे शत्रुओं में सबसे बड़ा है और यहां हमें उस पर अन्तिम रूप से विजय पानी ही चाहिये।

*

[१] आश्रम में चार दर्शन के दिवस मनाये जाते हैं—२१ फरवरी—माताजी का जन्म दिवस, २४ अप्रैल—माताजी के दूसरी बार आने का दिवस, १५ अगस्त—श्रीअरविन्द का जन्म दिवस, २४ नवम्बर—सिद्धि-दिवस। इन अवसरों पर माताजी दर्शनार्थियों को कोई विशेष सन्देश दिया करती थीं। इनमें कभी माताजी के सन्देश होते थे, कभी श्रीअरविन्द के लेखों के उद्धरण।

इस विभाग में हमने केवल श्रीमाताजी के लिखे सन्देश ही दिये हैं, श्रीअरविन्द के नहीं।

२१ फरवरी, १९५२

हमें वीर योद्धा बना, बस यही हमारी अभीप्सा है। अतीत ज्यों-का-त्यों बना रहना चाहता है और उसके विरुद्ध भविष्य उत्पन्न होकर ही रहेगा—उसी भविष्य के महान् युद्ध को हम सफलता के साथ चलायें ताकि नवीन चीजें अभिव्यक्त हो सकें और हम उन्हें ग्रहण करने के लिए तैयार हो जायें।

*

२४ नवम्बर, १९५२

श्रीअरविन्द के पूर्णयोग के महान् साहसिक कार्य में उनका अनुसरण करने के लिए योद्धा होने की तो हमेशा ही जरूरत रही है लेकिन अब जब वे हमें शरीर से छोड़ गये हैं, उनका अनुसरण करने वाले का उदात्त वीर होना जरूरी है।

*

२१ फरवरी, १९५४

यदि तुम मृत्यु से डरते हो तो समझ लो कि उसने तुम्हें अभी से परास्त कर दिया है।

*

२४ अप्रैल, १९५६

पृथ्वी पर अतिमानस की अभिव्यक्ति अब कोई आश्वासन की बात नहीं रही, बल्कि वह एक जीवन्त तथ्य और एक वास्तविक सत्य है।

अतिमानस यहां कार्य कर रहा है, और एक दिन आयेगा जब अत्यन्त अन्धे, अत्यन्त अचेतन और एकदम-से अनिच्छुक भी उसे स्वीकार करने के लिए बाधित होंगे।

*

२४ नवम्बर, १९५६

काल की परवाह न करते हुए, देश के भय से रहित होकर, अग्निपरीक्षा की ज्वालाओं में से शुद्ध पवित्र होकर उछलते हुए हम अपने लक्ष्य की सिद्धि, अतिमानसिक विजय की ओर बिना रुके उड़ते चलेंगे।

*

२४ अप्रैल, १९५७

सृष्टि की अनन्त धारा के अन्दर प्रत्येक अवतार भविष्य की एक अधिक पूर्ण सिद्धि की घोषणा करने वाला अग्रदूत होता है।

*

२१ फरवरी, १९५८

नित्य परिवर्तनशील शरीर का जन्मोत्सव मनाना हृदय की कुछ श्रद्धापूर्ण भावनाओं को सन्तुष्ट कर सकता है।

शाश्वत चेतना की अभिव्यक्ति का उत्सव विश्व इतिहास के प्रत्येक मुहूर्त में मनाया जा सकता है।

परन्तु एक नवीन जगत् के, अतिमानसिक जगत् के आविर्भाव का उत्सव मनाना एक असाधारण और अद्भुत सौभाग्य की बात है।

*

२४ अप्रैल, १९५८

पृथ्वी पर मनुष्यों में होने वाली भगवत्कृपा की मुक्तिदायिनी क्रिया के दो रूप हैं जो एक-दूसरे के पूरक हैं। ये दोनों ही रूप हैं तो एक समान आवश्यक, पर एक समान मूल्य नहीं पाते।

परम अक्षय शान्ति, जो दुश्चिंता, तनाव और दुःख-कष्ट से मुक्त करती है।

सक्रिय, सर्वसम्पन्न प्रगति, जो ृंखलाओं, बन्धनों और तामसिकता से छुड़ाती है।

शान्ति तो विश्वभर में समादृत होती तथा दिव्य समझी जाती है, पर प्रगति का स्वागत केवल वे ही लोग करते हैं जिनकी अभीप्सा तीव्र और साहसपूर्ण होती है।

*

१५ अगस्त, १९६१

निश्चेतना की गहराई में भी भागवत चेतना चमक रही है, शाश्वत और देदीप्यमान।

*

२१ फरवरी, १९६५

तथाकथित मानवीय बुद्धिमत्ता की समस्त जटिलताओं से ऊपर भागवत कृपा की ज्योतिर्मयी सरलता विद्यमान है और वह कार्य करने के लिए तैयार है—यदि हम उसे करने दें।

*

२१ फरवरी, १९६८

भागवत प्रेम की अभिव्यक्ति को शीघ्रता से आगे बढ़ाने का सबसे उत्तम पथ है दिव्य सत्य की विजय में सहयोग देना।

*

२१ फरवरी, १९६९

अक्षय शान्ति ही जीवन की अमरता को सम्भव बना सकती है।

*

२१ फरवरी, १९७०

सत्य को जीतना बड़ा कठिन और दुःसाध्य है। इस जीत के लिए मनुष्य को सच्चा योद्धा होना होगा—ऐसा योद्धा जो किसी चीज से भय नहीं करता, न तो शत्रुओं से और न मृत्यु से ही; क्योंकि यह संघर्ष सबके साथ और सबके विरुद्ध, शरीर के सहित और शरीर के बिना चल रहा है और इसका अन्त परम विजय में होगा।

*

२१ फरवरी, १९७१

एकमात्र वही जीवन जीने योग्य है जो भगवान् के साथ एकात्मता के लिये निवेदित हो।

*

२४ अप्रैल, १९७१

यह कहने की जरूरत नहीं कि जो सत्य के लिए अभीप्सा करते हैं उन्हें असत्य बोलने से बचना चाहिये।

*

२१ फरवरी, १९७२

समस्त सत्ता का चैत्य केन्द्र के चारों ओर पूर्णतः एकरूप हो जाना ही पूर्ण सचाई प्राप्त करने की आवश्यक शर्त है।

*

१५ अगस्त, १९७२

श्रीअरविन्द का सन्देश भविष्य के ऊपर विकीरित होता हुआ अमर सूर्यालोक है।

*

२४ नवम्बर, १९७२

सभी पसन्दों और सीमाओं के परे एक पारस्परिक समझ का क्षेत्र है जहां सब लोग मिलकर अपना सामञ्जस्य पा सकते हैं : वह है भागवत चेतना के लिए अभीप्सा।

*

२१ फरवरी, १९७३

हम मार्ग पर जितना आगे बढ़ें, भागवत उपस्थिति की आवश्यकता उतनी ही अधिक अनिवार्य और अपरिहार्य बन जाती है।

*

२४ अप्रैल, १९७३

मनुष्य की चेतना के परे
वाणी के परे

हे परम चेतने
अनोखी, अद्वितीय दिव्य सद्वस्तु
दिव्य सत्य।

*

धरती पर अतिमानसिक अभिव्यक्ति के लिए सन्देश
२९ फरवरी १९५६

स्वर्णिम दिवस

अब से २९ फरवरी प्रभु का दिन होगा।

*

१९६०

२९ फरवरी १९५६

बुधवार के सम्मिलित ध्यान के समय

आज की शाम ठोस और भौतिक भागवत उपस्थिति तुम्हारे बीच उपस्थित थी। मेरा रूपाकार जीवन्त स्वर्ण का हो गया था जो विश्व से बड़ा था, और मैं एक बृहत् तथा विशालकाय सोने के दरवाजे के सामने खड़ी थी जो जगत् को भगवान् से अलग कर रहा था।

जैसे ही मैंने दरवाजे की ओर देखा, मैंने चेतना की एक ही गति में जाना और संकल्प किया कि "*समय आ गया है,*" और दोनों हाथों से एक बहुत बड़ा सोने का हथौड़ा उठाकर मैंने एक प्रहार किया, दरवाजे पर मात्र एक प्रहार और दरवाजा टुकड़े-टुकड़े हो गया।

तब अतिमानसिक 'प्रकाश', 'शक्ति' और 'चेतना' तीव्र गति से धरती पर उतरीं और अबाध गति से बह निकलीं।

१९५६ में लिखित

*

१९६८

एकमात्र परम सत्य ही भागवत प्रेम को ग्रहण करने और अभिव्यक्त करने की शक्ति संसार को दे सकता है।

*

१९७२

जब अतिमानस देह-मन में अभिव्यक्त होगा केवल तभी उसकी उपस्थिति स्थायी हो सकती है।

*

पॉण्डिचेरी में माताजी के प्रथम आगमन-दिवस के लिए सन्देश[1]
२९ मार्च १९१४

१९५०

अगर मेरे अन्दर पूरी सचाई है तो मुझे अच्छा दीखने की जरूरत नहीं।

दिखायी देने से होना कहीं अधिक अच्छा है।

*

१९५२

यह कभी मत भूलो कि तुम अकेले नहीं हो। भगवान् तुम्हारे साथ हैं

[1] पॉण्डिचेरी में माताजी के अन्तिम रूप से आगमन (२४ अप्रैल १९२०) के लिए सन्देश इस विभाग में "दर्शन सन्देश" के अन्तर्गत प्रकाशित हुए हैं।

और तुम्हारी सहायता एवं पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं। वे एक ऐसे साथी हैं जो कभी साथ नहीं छोड़ते, ऐसे मित्र हैं जिनका प्रेम सुकून और बल पहुंचाता है। श्रद्धा बनाये रखो और वे तुम्हारे लिए सब कुछ कर देंगे।

*

१९५६

२९ फरवरी - २९ मार्च

प्रभु, तूने चाहा और मैं चरितार्थ कर रही हूं।
धरती पर एक नया प्रकाश फूट रहा है।
एक नया जगत् जन्म ले चुका है।
जिन चीजों के लिए वचन दिया गया था वे चरितार्थ हो गयी हैं।

*

१९५८

जब तुम्हें किसी बाहरी परिवर्तन की आवश्यकता हो तो इसका मतलब है कि तुम आन्तरिक रूप से प्रगति नहीं कर रहे हो। क्योंकि जो व्यक्ति आन्तरिक रूप से उन्नति करता है वह सर्वदा एक ही प्रकार की बाहरी अवस्थाओं में रह सकता है; वे निरन्तर उसके सम्मुख नये-नये सत्यों को प्रकट करती रहती हैं।

*

१९६१

हमारा पथ

साधना-पथ पर चलने के लिए तुम्हारे अन्दर निर्भीक वीरता होनी चाहिये, तुम्हें कभी इस हीन, तुच्छ, दुर्बल और कुत्सित वृत्ति अर्थात् भय

के कारण पीछे नहीं हटना चाहिये।

दुर्दमनीय साहस, पूर्ण सचाई, सर्वांगपूर्ण आत्मदान—इस हद तक कि तुम कभी हिसाब या मोल-तोल न करो, तुम इसलिए न दो कि तुम पाओगे, तुम इस उद्देश्य से आत्मार्पण न करो कि तुम सुरक्षित रहोगे, तुम ऐसी श्रद्धा न रखो जिसे प्रमाण की आवश्यकता हो,—इस पथ पर अग्रसर होने के लिए यह सब अनिवार्य है,—बस यही तुम्हें सब विपत्तियों से बचाने के लिए आश्रय प्रदान कर सकता है।

*

पॉण्डिचेरी में श्रीअरविन्द के आगमन-दिवस के लिए सन्देश
४ अप्रैल १९१०

१९५०

सच्चे बनो, हमेशा सच्चे बनो, अधिकाधिक सच्चे बनो।

सचाई हर एक से यह मांग करती है कि वह अपने विचारों, अपने भावों, अपनी अनुभूतियों और अपने कामों में अपनी सत्ता के केन्द्रीय सत्य के सिवा और कुछ न प्रकट करे।

*

१९५१

एक नयी ज्योति पृथ्वी पर छायेगी, एक नया जगत् उत्पन्न होगा : जिन चीजों के लिए वचन दिया गया था वे पूरी होंगी।

*

१९५८

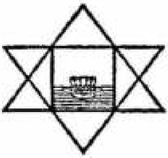

निम्नमुखी त्रिकोण सत्-चित्-आनन्द को सूचित करता है।

ऊर्ध्वमुखी त्रिकोण जीवन, ज्योति और प्रेम के रूप में जड़तत्त्व से आने वाले अभीप्सा रूपी उत्तर को परिलक्षित करता है।

दोनों कोणों का संयोगस्थल—केन्द्रीय वर्ग—पूर्ण अभिव्यक्ति का द्योतक है और उसके केन्द्र में विद्यमान है परमात्मा का अवतार—कमल।

वर्ग के अन्दर जो जल है वह बहुत्व का, सृष्टि का सूचक है।

*

१९६२

भौतिक रूप में, स्थूल रूप में, इस पृथ्वी पर, कृतज्ञता के अन्दर ही शुद्धतम आनन्द का स्रोत पाया जाता है।

पूजा-सन्देश

लक्ष्मीपूजा १९५५

हे मां भगवती! तू हमारे साथ है, प्रत्येक दिन तू मुझे यही आश्वासन देती है, और, अधिकाधिक पूर्ण और सतत बनने वाली एकात्मता के अन्दर घनिष्ठतापूर्वक युक्त होकर तथा नयी ज्योति के लिए एक महान् अभीप्सा रखते हुए हम विश्व के स्वामी और विश्व के परे विद्यमान दिव्य सद्वस्तु की ओर मुड़ रहे हैं।

३१ अक्तूबर, १९५५

*

कालीपूजा १९५५

एक प्राचीन केल्डियन कहानी

बात पुरानी है, बहुत पुरानी। एक रेगिस्तान में जहां अब अरब देश है, भगवान् ने परम प्रेम को जगाने के लिए धरती पर अवतार लिया था। जैसा कि हुआ करता है, मनुष्यों ने उन्हें गलत समझा, उन पर सन्देह किया, उन्हें कष्ट दिये और उनका पीछा किया। आततायियों के आघातों से वे बहुत बुरी तरह घायल हो गये। अपना काम पूरा करने के लिए वे शान्ति के साथ अकेले में मरना चाहते थे। आततायियों के पीछा करने पर वे दौड़े। उस बंजर भूमि में अचानक एक अनार की झाड़ी दिखायी दी। रक्षक देव ने शान्ति के साथ शरीर त्याग करने के लिए झुकी शाखाओं के नीचे शरण ली। तुरन्त चमत्कारिक रूप से झाड़ी फैल गयी, इसकी शाखाएं बड़ी, ऊंची, गहन और सघन हो गयीं और चारों ओर इस तरह छा गयीं कि पीछा करने वालों को यह पता ही न लगा कि वे जिसकी तलाश में हैं वह यहीं छिपा है। वे अपनी राह पर चलते गये।

बूंद-बूंद करके पवित्र रक्त धरती पर गिरता गया और उसे उपजाऊ बनाता गया। झाड़ी बहुत सुन्दर, बड़े-बड़े, गहरे लाल रंग की पंखुड़ियों से भरे हुए फूलों से लद गयी, मानों रक्त की असंख्य बूंदें हों।...

ये वही फूल थे जो हमारे लिए भागवत प्रेम का प्रतीक हैं।

१४ नवम्बर, १९५५

*

दुर्गापूजा १९५७

महाष्टमी

श्रीअरविन्द के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने का इससे अच्छा उपाय और कोई नहीं है कि उनकी शिक्षा की सजीव अभिव्यक्ति बना जाये।

३० सितम्बर, १९५७

*

दुर्गापूजा १९५७

विजया-दशमी

जो केवल स्थूल आंखों से ही देखते हैं, उनके लिए विजय तभी प्रत्यक्ष होगी जब वह सर्वांगपूर्ण अर्थात् भौतिक विजय हो।

२ अक्तूबर, १९५७

*

महासरस्वती पूजा १९५८

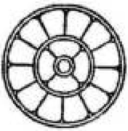

केन्द्रीय वृत्त भागवत चेतना को सूचित करता है।

चार दल भगवती माता की चार शक्तियों के सूचक हैं।

बारह दल भगवती माता के कार्य के लिए अभिव्यक्त उनकी बारह शक्तियों के प्रतीक हैं।

२४ जनवरी, १९५८

*

पूजादिवसों पर टिप्पणियां

(दुर्गापूजा—१९५३, विजया-दशमी के बारे में)

आज सचमुच विजय का दिन था, उस सब पर विजय जो भौतिक चेतना में अभी तक मानव रूप ही था।

हे प्रकृति, मैं तुम्हारे लिए बल और प्रकाश, सत्य और शक्ति लायी हूं; इन्हें ग्रहण करना और इनका उपयोग करना तुम्हारा काम है। तुम ही अपनी सृष्टि के फल—मनुष्य—में ग्रहणशील बनोगी और उसकी समझ के

द्वार खोलोगी; तुम ही उसे प्रगति करने की ऊर्जा और रूपान्तर का संकल्प दोगी; और सबसे बढ़कर, तुम ही उसके द्वारा भागवत उपस्थिति को स्वीकार कराओगी और उससे परम उपलब्धि के लिए अभीप्सा करवाओगी।

१८ अक्तूबर, १९५३

*

(दुर्गापूजा—१९५४, विजया-दशमी के बारे में)

यह विजय दिवस है; वर दे कि यह आत्मा के अज्ञान और मिथ्यात्व पर सच्ची विजय हो।

६ अक्तूबर, १९५४

*

(दुर्गापूजा—१९५५, विजया-दशमी के बारे में)

ध्यान के समय मैंने जिस अनुभूति को संचारित किया उसका शब्द-चित्र :

दुर्गा का वार्षिक युद्ध और विजय उस परम भागवत चेतना के लयपूर्ण हस्तक्षेप का प्रतीक है जो वैश्व प्रगति को समय-समय पर नया आवेग प्रदान करता है।

२६ अक्तूबर, १९५५

*

(१९५७ की दुर्गापूजा, विजया-दशमी के सन्देश में उल्लिखित "विजय" के बारे में)

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इसे सिद्धान्त में जीता जा चुका है।

२ अक्तूबर, १९५७

*

कालीपूजा - १९५९

ऊंचा उठाने वाले समान आदर्श वाले हम सब एक साथ होंगे, और इस ऐक्य में और इस ऐक्य के द्वारा हम अन्धकार और विध्वंस की विरोधी शक्तियों के प्रहारों का सामना कर उन पर विजय पायेंगे। एकता में बल है, एकता में शक्ति है, एकता में विजय की निश्चिति है।

मां काली इस दिन तुम्हारे साथ होंगी।

३१ अक्तूबर, १९५९

*

बड़े दिन के सन्देश[१]

१९५९

बड़ा दिन।
आशीर्वाद।

*

१९६०

बड़ा दिन शुभ हो!
आशीर्वाद।

*

[१] माताजी ने बतलाया था कि बड़ा दिन (२५ दिसम्बर) 'प्रकाश' के पुनरागमन का उत्सव है।

१९६१

सभी के लिए बड़ा दिन शुभ हो!
सबको भागवत कृपा के आशीर्वाद सहित।

*

१९६२

'नया प्रकाश' तुम्हारे विचारों और तुम्हारे जीवन को प्रकाशित करे, तुम्हारे हृदयों पर राज करे और तुम्हारे कार्यों का मार्ग-दर्शन करे।

आशीर्वाद।

*

१९६३

आनन्दप्रद बड़ा दिन।

आओ हम प्रकाश को अपने अन्दर प्रविष्ट करके उसका उत्सव मनायें।

*

१९६४

अगर तुम धरती पर शान्ति चाहते हो तो पहले अपने हृदय में शान्ति स्थापित करो।

अगर तुम संसार में ऐक्य चाहते हो तो पहले अपनी सत्ता के विभिन्न भागों को एक करो।

आशीर्वाद।

*

१९६५

सभी के लिए बड़ा दिन शुभ हो!

*

१९६६

सभी को शान्ति और आनन्द में, बड़े दिन की शुभ कामनाएं!

यह नया बड़ा दिन तुम्हारे लिये उच्चतर और अधिक शुद्ध एक नये प्रकाश का आगमन हो।

*

१९६७

धरती पर ऐक्य और सद्भावना।

बाहरी समारोहों की रूढ़ियों के पीछे एक जीवित जाग्रत् प्रतीक होता है। यही है जिसे हमें याद रखना चाहिये।

सबके लिए शान्ति और सद्भावना।

जब तक कि अतीत की आदतों और मान्यताओं से सम्बन्ध न तोड़ा जाये तब तक भविष्य की ओर तेजी से बढ़ने की सम्भावना न के बराबर है।

*

१९६८

सत्य से प्रेम करो।

तुम्हारी चेतना में प्रकाश का उदय हो।
सबको आशीर्वाद।

*

१९६९

नये प्रकाश की जय।
वह सभी हृदयों में विकसित हो।
आशीर्वाद।

*

१९७०

बड़ा दिन शुभ हो!

*

१९७१

मिथ्यात्व के राज्य की समाप्ति का समय आ गया है।
केवल सत्य में ही है मुक्ति।

*

१९७२

हम संसार को दिखाना चाहते हैं कि मनुष्य भगवान् का सच्चा सेवक बन सकता है।

कौन *समस्त सचाई* और *निष्कपटता* के साथ सहयोग देगा?

*
* *

फादर क्रिसमस;

आज मैं तुम्हारा आह्वान करती हूं!

हमारी पुकार का उत्तर दो। अपने समस्त उपहार लिये हुए आओ।

तुम सांसारिक सम्पत्तियों के महान् वितरक हो। तुम कभी न थकने वाले मित्र हो, हर निवेदन पर कान देते हो और उदारता के साथ उसे पूरा करते हो। हर एक को वे भौतिक वस्तुएं प्रदान करो जिनकी वह कामना करता है, और मेरे लिए मुझे पर्याप्त दो, मुझे बहुत कुछ दो ताकि मैं सबको खुलकर दे सकूं।

*

(ईसामसीह के जन्म पर तीन ज्योतिषियों (मैगी) ने उन्हें कुछ उपहार दिये थे, उन उपहारों का अर्थ)

सोना: संसार का धन और अतिमानसिक ज्ञान।
लोबान: प्राण की शुद्धि।
गंधरस या गुग्गुलु: शरीर की अमरता।

जन्मदिन के सन्देश[1]

मेरे प्रिय बालक, मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद तुम्हारे साथ हैं और सारे साल रहेंगे। ये तुम्हें भागवत लक्ष्य की ओर एक और प्रगति करने में सहायक हों।

*

यह वर्ष प्रगति और रूपान्तर का वर्ष हो—भागवत सिद्धि की ओर ले जाने वाला एक और पग।

२ फरवरी, १९३०

*

[1] माताजी जन्मदिन को विशेष महत्त्व दिया करती थीं, इस अवसर को 'बॉन फेत' कहा जाता है। आशीर्वाद के साथ-साथ माताजी कुछ लोगों को छोटा-मोटा लिखित सन्देश भी देती थीं। यहां ऐसे सन्देशों के कुछ नमूने दिये जा रहे हैं।—अनु०

यह वर्ष तुम्हारे लिए पूर्ण उद्‌घाटन और सीमाओं को तोड़ने का वर्ष हो।

२ फरवरी, १९४३

*

यह वर्ष तुम्हारे अन्दर सच्ची श्रद्धा लाये—ऐसी श्रद्धा जिसे कोई भी अन्धकार धुंधला न बना सके।

२ फरवरी, १९४४

*

तुम्हारा यह जन्मदिन तुम्हारे लिए अपने-आपको जरा अधिक, जरा ज्यादा अच्छी तरह भगवान् को देने का अवसर हो। तुम्हारा उत्सर्ग अधिक पूर्ण हो, तुम्हारी भक्ति अधिक प्रबल और अभीप्सा अधिक तीव्र हो।

अपने-आपको 'नये प्रकाश' की ओर खोलो और आनन्दभरे कदमों से मार्ग पर चलो।

इस दिन निश्चय करो कि ऐसा ही हो और दिन व्यर्थ न जायेगा।

*

रत्ती-भर अभ्यास सिद्धान्तों के पहाड़ों के बराबर है।

"प्रभो, मेरे जन्म की वर्षगांठ पर वर दे कि मेरे अन्दर जानने की शक्ति मुझे पूर्णतया रूपान्तरित करने की शक्ति में बदल जाये।"

*

जन्म दिवस शुभ हो!

नव जन्म भी, एक नयी चेतना में जन्म हो जिसमें तुम समस्त छोटी-मोटी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं के ऊपर हो जाओगे क्योंकि तुम हमेशा अपने हृदय में भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करोगे, यह तुम्हें ऐसी शक्ति दे कि तुम समस्त बाधाओं, समस्त तुच्छता, समस्त कठिनाइयों को पार कर सको।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

८ जनवरी, १९६३

*

आज के दिन हम सत्य की विजय की ओर एक निर्णायक पग उठाने का निश्चय करते हैं।

हर बीतता हुआ वर्ष एक नयी विजय हो, और ऐसा अनिवार्य रूप से होता है।

इस वर्ष उनकी विजय की ओर एक निर्णायक कदम उठाया जाये।

१३ जनवरी, १९६३

*

तुम्हारे लिए जो नया वर्ष शुरू हो रहा है इसके साथ तुम्हें नया जीवन शुरू करना चाहिये, इसमें फिर से एक नया दृढ़ निश्चय हो कि तुम अपनी चेतना और अपने कर्मों में से उस सबको निकाल बाहर करो जो उसे कुरूप बनाता, छोटा करता, धुंधला बनाता, और अन्ततः तुम्हारी प्रगति को रोक देता है और तुम्हारे स्वास्थ्य को बिगाड़ता है।

अपने आन्तरिक विकास के और पवित्रीकरण के प्रयास में विश्वस्त रहो कि मेरी शक्ति और मेरे आशीर्वाद तुम्हें सहारा देंगे।

२७ जनवरी, १९६३

*

शुभ जन्म दिवस!

यह वर्ष तुम्हारे लिए कार्य की और उत्सर्ग की पूर्णता का, सचाई, ऊर्जा और शान्ति की पूर्णता का वर्ष हो।

मेरे आशीर्वाद सहित।

१६ जनवरी, १९६४

*

शुभ जन्म दिवस!

प्रेम और शान्ति में पूर्ण उत्सर्ग और समग्र प्रगति के वर्ष के लिए मेरे आशीर्वाद सहित।

१६ जनवरी, १९६५

*

शुभ जन्म दिवस!

नीरव सहनशीलता में विजय की ओर शाश्वत प्रेम की सहायता के साथ एक और पग आगे।

१३ जनवरी, १९६६

*

शुभ जन्म दिवस!

शान्ति, प्रेम और आनन्द में भागवत सिद्धि की ओर ले जाने वाले ज्योतिर्मय मार्ग पर एक और पद अंकित करने के लिए।

१३ जनवरी, १९६७

*

शुभ जन्म दिवस!

सहयोग के जीवन के लिए मेरे प्रेम और इस सुखद सहयोग के लम्बे समय तक प्रेम और शान्ति में जारी रहने के लिए मेरे आशीर्वाद।

१३ जनवरी, १९७१

*

शुभ जन्म दिवस!

रूपान्तर के लिए मेरे प्रेम, मेरे विश्वास और मेरे आशीर्वाद सहित।

सिद्धि की ओर आगे बढ़ो।

१३ जनवरी, १९७३

केन्द्रों और संस्थाओं को सन्देश

(अध्ययन-केन्द्र के लिए प्रस्तावित कार्यक्रम)

१. प्रार्थना

(श्रीअरविन्द और माताजी—आपकी शिक्षा को समझने के हमारे प्रयास में, अपनी सहायता प्रदान कीजिये।)

२. *श्रीअरविन्द की पुस्तक का पाठ।*

३. क्षण भर के लिये मौन।

४. *जो कुछ पढ़ा गया है* उसके बारे में जो कोई कुछ पूछना चाहता है, वह एक प्रश्न कर सकता है।

५. प्रश्न का उत्तर।

६. *कोई सामान्य चर्चा नहीं।*

यह किसी दल की सभा नहीं है बल्कि श्रीअरविन्द की पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए सिर्फ एक कक्षा है।

३१ अक्तूबर, १९४२

*

मैंने 'क' का पत्र पढ़ लिया है। तुम उसे यह उत्तर दे सकते हो :

१. मेरा ख्याल है कि शुरू में चक्र को महंगे आधार के बिना शुरू करना ज्यादा अच्छा होगा ताकि पैसे का प्रश्न हमेशा मुख्य रहकर तकलीफ न दे। बाद में जब चक्र सफल सिद्ध हो जाये तो वह ज्यादा महंगे मकान में जा सकता है।

२. सदस्यों के लिए वार्षिक चन्दा १० रुपये निश्चित किया जा सकता है, लेकिन मेरा प्रस्ताव है कि जो लोग श्रीअरविन्द की पुस्तकें पढ़ने के लिए आना चाहें वे *सदस्य* हुए बिना भी, थोड़ा-सा शुल्क, उदाहरण के लिए दो रुपये, देकर पढ़ सकते हैं।

३. ज्यादा अच्छा है कि किताबों को चक्र के बाहर *न जाने दिया जाये।*

४. मेरा प्रस्ताव है कि जो लोग नियमित रूप से यहां पैसा भेजते हैं उनसे वार्षिक चन्दे के अतिरिक्त और पैसा न मांगा जाये क्योंकि इससे

उनकी यहां आने वाली राशि कम हो जायेगी।

५. उसे ऐसे लोगों की समिति न बनानी चाहिये जिनसे वह पूरी तरह सहमत न हो सके और जो यहां मेरे और श्रीअरविन्द के द्वारा स्वीकृत न हो।

६. उसे हमारी लिखित सहमति पाये बिना कुछ भी नहीं करना चाहिये। समय बचाने के लिये ज्यादा अच्छा है कि वह सीधा मुझे अंग्रेजी में, संक्षिप्त और ठीक-ठीक लिखे कि वह क्या कदम उठाना चाहता है।

अन्ततः, तुम उसे मेरे आशीर्वाद इस आदेश के साथ भेज सकते हो कि सब झगड़ों, दुर्भावनाओं और गलतफहमियों से बचे।

अन्त में एक बात और :

केवल अहंकार ही दूसरों के अन्दर अहंकार देखकर आहत होता है।

५ अक्तूबर, १९४३

*

(हांगकांग में 'श्रीअरविन्द फिलोसोफिकल सर्कल' के उद्घाटन के समय दिया गया सन्देश)

पूर्वी क्षितिज पर शाश्वत ज्योति का उदय हो।

२६ जून, १९५४

*

(श्रीअरविन्दाश्रम की दिल्ली शाखा के उद्घाटन के समय दिया गया सन्देश)

यह स्थान अपने नाम के योग्य हो और संसार के लिए श्रीअरविन्द की शिक्षा और उनके सन्देश के सच्चे भाव को अभिव्यक्त करे।

मेरे आशीर्वाद सहित।

१२ फरवरी, १९५६

*

श्रीअरविन्दाश्रम की दिल्ली शाखा में किसी ऐसे योग्य व्यक्ति की सख्त जरूरत है जो श्रीअरविन्द की शिक्षा पर भाषण दे सके और आश्रम विद्यालय

में उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था कर सके।

मुझे पूरा विश्वास है कि इस काम के लिए तुम सबसे अच्छे व्यक्ति हो। श्रीअरविन्द के लेखों के लिए तुम्हारी समझ स्पष्ट और गहरी है और साथ ही तुम्हारी व्याख्या बहुत आकर्षक और विचक्षण व बोधगम्य होती है।

कृपया मुझे बतलाओ कि क्या तुम्हें यह प्रस्ताव स्वीकार है, ताकि जरूरी व्यवस्था की जा सके।

मुझे पूरा विश्वास है कि अपने परिवार के साथ इस विश्राम से तुम्हें पूरा लाभ हुआ है और अब तुम बिलकुल ठीक हो।

मेरे प्रेम सहित सबके लिए और तुम्हारे लिए मेरे आशीर्वाद।

१३ जून, १९५८

*

उन सबके लिए जो आश्रम की दिल्ली शाखा में काम करते और सीखते हैं, मेरे आशीर्वाद।

हर एक शान्ति के साथ अपना अच्छे-से-अच्छा करे और परिणाम परम प्रभु के हाथों में छोड़ दे।

२१ अगस्त, १९६०

*

(शान्तिनिकेतन में 'श्रीअरविन्द निलय', शान्तिनिकेतन के उद्‌घाटन के अवसर पर)

केन्द्र खोलना अपने-आपमें काफी नहीं है। उसे भगवान् के प्रति पूर्ण निवेदन में पूर्ण सचाई की पवित्र वेदी होना चाहिये।

इस सचाई की ज्वाला संसार के समस्त मिथ्यात्वों और धोखे-धड़ी के ऊपर, बहुत ऊपर उठे।

आशीर्वाद सहित।

२१ दिसम्बर, १९६२

*

श्रीअरविन्द ऐक्शन और श्रीअरविन्द सोसायटी

समान रूप से सन्निकट भविष्य में सत्य की अभिव्यक्ति के लिए काम कर रहे हैं। दोनों की समान रूप से सहायता करना इस उपलब्धि के लिए कार्य करना है।

मेरे आशीर्वाद समस्त सहायता और सद्भावना के साथ हैं।

२ मई, १९७१

*

विभागों और व्यापार के लिए सन्देश

(श्रीअरविन्दाश्रम के 'आतलियें' नामक कारखाने के लिए)

उपकारी, यथोचित, नियमित।
आशीर्वाद।

*

('आरपागों' कारखाने के नाम)

यहां हमेशा शान्ति और सद्भावना छायी रहे।
मेरे आशीर्वाद सहित।

१७ सितम्बर, १९५२

*

('न्यू होराइज़न शूगर मिल' के लिए)

सुखद आरम्भ
शुभ अविरल धारा

अन्तहीन—
अनन्त प्रगति।

१४ मई, १९५७

*

('न्यू होराइज़न शूगर मिल' की आधार-शिला पर अंकित)

निष्ठा सफलता का निश्चित आधार है।

१२ अप्रैल, १९५९

प्रकीर्ण सन्देश

(जयपुर, ओड़िसा में श्रीअरविन्द के पवित्र अवशेषों की प्रतिष्ठा के समय दिया गया सन्देश—८ दिसम्बर, १९७०)

हर एक में और सबमें उच्चतम चेतना को जीवन का शासक होना चाहिये।
आशीर्वाद।

८ दिसम्बर, १९७०

*

('श्रीअरविन्द ऐक्शन' के एक युवा शिविर के उद्‌घाटन के अवसर पर दिया गया सन्देश)

हमारे जीवन पर सत्य के लिए प्रेम और प्रकाश के लिए प्यास का शासन होना चाहिये।
आशीर्वाद।

२६ सितम्बर, १९७१

*

(एक मकान के उद्घाटन पर दिया गया सन्देश)

यह मकान भगवान् की उपलब्धि के लिए तीव्र अभीप्सा से भरा रहे और उसके उत्तर में भागवत उपस्थिति सदा वहां रहेगी।

७ अक्तूबर, १९५१

प्रार्थनाएं

प्रार्थना और भगवान् को पुकारना

हमारा सारा जीवन भगवान् को निवेदित प्रार्थना हो।

*

सर्वांगीण प्रार्थना: समस्त सत्ता भगवान् के प्रति की गयी एक ही प्रार्थना में एकाग्र।

*

नींद में से बाहर निकलते हुए तुम्हें कुछ क्षणों के लिए चुपचाप रहना चाहिये और आनेवाले दिन का भगवान् के प्रति उत्सर्ग करना चाहिये। उन्हें हमेशा सभी परिस्थितियों में याद रखने के लिए प्रार्थना करनी चाहिये।

सोने से पहले तुम्हें कुछ क्षणों के लिए एकाग्र होना चाहिये। बीते हुए दिन पर नजर डालो, याद करो कि कब-कब और कहां तुम भगवान् को भूल गये थे और प्रार्थना करो कि इस तरह फिर न भूलो।

३१ अगस्त, १९५३

*

हर रोज सवेरे उठने पर हम पूर्ण उत्सर्ग भरे दिन के लिए प्रार्थना करें।

१९ जून, १९५४

*

हम अपने पूरे दिल से प्रार्थना करें कि भगवान् का कार्य सम्पन्न हो।

*

सभी सच्ची प्रार्थनाओं का उत्तर मिलता है लेकिन उसके भौतिक रूप

में चरितार्थ होने में समय लग सकता है।

२८ जून, १९५४

*

सभी सच्ची प्रार्थनाएं स्वीकृत होती हैं, हर पुकार को उत्तर मिलता है।

२१ जुलाई, १९५४

*

सच्ची पुकारें निश्चय ही सुनी जाती हैं और उनका उत्तर मिलता है।

*

हमें सतत अभीप्सा की स्थिति में रहना चाहिये लेकिन जब हम अभीप्सा न कर सकें तो हम एक बालक की सरलता के साथ प्रार्थना करें।

२५ जुलाई, १९५४

*

हम प्रार्थना करते हैं कि भगवान् हमें हमेशा अधिकाधिक सिखायें, अधिकाधिक प्रबुद्ध करें, हमारे अज्ञान को छिन्न-भिन्न करें, हमारे मनों को प्रकाशित करें।

२ नवम्बर, १९५४

*

भागवत कृपा के प्रति तीव्र और सच्ची प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं जाती।

१९ दिसम्बर, १९५४

*

परम प्रभु भागवत ज्ञान और पूर्ण ऐक्य हैं। दिन के प्रत्येक क्षण हम उनका आह्वान करें ताकि हम उनके सिवा और कुछ न हों।

२० दिसम्बर, १९५४

*

जब हम अपनी निराशा में, भगवान् को पुकारते हैं तो वे हमेशा हमारी पुकार का उत्तर देते हैं।

२१ दिसम्बर, १९५४

*

हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे हमारी कृतज्ञता की प्रदीप्त ज्वाला को एवं आनन्दमयी और पूरी तरह विश्वस्त निष्ठा को स्वीकार करें।

२७ दिसम्बर, १९५४

*

एक पत्र में श्रीअरविन्द कहते हैं :

"उचित रूप से निवेदित की गयी हर प्रार्थना हमें भगवान् के अधिक नजदीक लाती है और उनके साथ ठीक-ठीक सम्बन्ध स्थापित करती है।"

इस पत्र में "उचित रूप से निवेदित की गयी" का मतलब क्या है, क्या आप स्पष्ट करेंगी?

विनय और सचाई के साथ की गयी।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सौदेबाजी का सारा भाव कपट है जो प्रार्थना का सारा मूल्य हर लेता है।

८ मई, १९६८

*

जो सचाई के साथ भगवान् को पुकारते हैं उनके लिए कुछ भी कठिन नहीं है।

२८ जनवरी, १९७३

*

प्रार्थनाएं

कल मैंने तुमसे राधा के नृत्य के बारे में जो कहा था उसे पूरा करने

के लिए मैंने निम्नलिखित टिप्पणी लिखी है जो इस बात का संकेत है कि अन्त में जब राधा, कृष्ण के सामने खड़ी हो तो उसके अन्दर क्या विचार और भाव होने चाहियें :

"मेरे मन का प्रत्येक विचार, मेरे हृदय का हर एक भाव, मेरी सत्ता की हर एक गति, हर एक भावना और हर एक संवेदन, मेरे शरीर का हर एक कोषाणु, मेरे रक्त की हर बूंद, सब, सब कुछ तुम्हारा है, पूरी तरह तुम्हारा है, बिना कुछ बचाये तुम्हारा है। तुम मेरे जीवन का निश्चय कर सकते हो या मेरे मरण का, मेरे सुख का या मेरे दुःख का, मेरी खुशी का या मेरे कष्ट का; तुम मेरे साथ जो भी करो, मेरे लिए तुम्हारे पास से जो भी आये वह मुझे भागवत आनन्द की ओर ले जायेगा।"

१२ जनवरी, १९३२

*

राधा की प्रार्थना

प्रथम दृष्टि में ही जिसको पहचान गया अभ्यन्तर,
अपना स्वामी, जीवन का सर्वस्व, हृदय का ईश्वर;
हे मेरे प्रभु, तू मेरी श्रद्धाञ्जलि स्वीकृत कर!—

तेरे ही हैं मेरे निखिल विचार, भावना, चिन्तन!
मेरे उर आवेग, हृदय संकल्प, सकल संवेदन;
तेरे ही हैं मेरे जीवन के व्यापार प्रतिक्षण,
मेरे तन का एक-एक अणु, शोणित का प्रति कण-कण!

सर्व भांति, सम्पूर्ण रूप से तेरी हूं मैं निश्चय
प्रिय, सर्वथा, अशेष रूप से तेरी ही निःसंशय;
तेरी इच्छा से परिचालित होगा मेरा जीवन,
केवल तेरी ही विधि का मैं, नाथ, करूंगी पालन!

जीवन-मरण कि हर्ष-शोक भेजे तू या सुख-दुःख क्षण,

तेरे वरदानों का नित्य करेगा उर अभिवादन;
दिव्य देन होगी तेरी प्रत्येक देन मेरे हित,
वह सदैव, प्रभु, परम हर्ष की वाहक होगी निश्चित!

१३ जनवरी, १९३२

*

मेरे प्रभो, मुझे पूरी तरह अपना बना ले।

*

मेरे प्रभो, मैं पूरी तरह और सचाई के साथ तेरी होऊं।

*

हे प्रभो, मुझे पूर्ण सचाई प्रदान कर।
हे प्रभो, मैं हमेशा के लिए पूरी तरह तेरी होऊं।

*

परम प्रभु को सम्बोधित अभीप्सा :
मेरे अन्दर सब कुछ सदा तेरी सेवा में रहे।

*

हे प्रभो, मेरे अन्दर तुझे जानने की उत्कट कामना जगा।
मैं अभीप्सा करती हूं कि मेरा जीवन तेरी सेवा में समर्पित हो।

*

मैं सदा तेरे दिव्य पथ-प्रदर्शन का अनुसरण करूं। वर दे कि मैं अपनी सच्ची नियति से अवगत रहूं।

१ जनवरी, १९३४

*

हे प्रभो, तेरी मधुरता मेरी अन्तरात्मा में प्रवेश कर गयी है और तूने

मेरी सत्ता को आनन्द से भर दिया है।

१४ अप्रैल, १९३५

*

मेरा हृदय शान्त है, मेरा मन अधीरता से मुक्त है और एक बालक के मुस्कराते हुए विश्वास के साथ सभी चीजों में मैं तेरी इच्छा पर निर्भर हूं।

*

मेरे प्रभो, प्रतिदिन, सभी परिस्थितियों में मैं हृदय की पूरी सचाई के साथ जपूं—तेरी इच्छा पूरी हो, मेरी नहीं।

५ नवम्बर, १९४१

*

प्रभो—अपनी पूरी अन्तरात्मा के साथ मैं वही करना चाहती हूं जो करने का तू आदेश दे।

५ नवम्बर, १९४३

*

हे प्रभो, मुझे समस्त दर्प से मुक्त कर; मुझे विनीत और सच्चा बना।

५ नवम्बर, १९४४

*

हे प्रभो, बड़ी विनय के साथ मैं प्रार्थना करती हूं कि मैं अपने प्रयास के शिखर पर रहूं, कि मेरे अन्दर कोई भी चीज सचेतन या अचेतन रूप से, तेरे पवित्र उद्देश्य की सेवा करने में कोताही करके तेरे साथ विश्वासघात न करे।

गम्भीर भक्ति के साथ मैं तुझे प्रणाम करती हूं।

*

एक दैनिक प्रार्थना

हे प्रभो, मुझे भय और चिन्ता से मुक्त कर ताकि मैं अपनी अधिक-से-अधिक योग्यता के साथ तेरी सेवा कर सकूं।

दिसम्बर, १९४८

*

प्रभो, मुझे सम्पूर्ण और समग्र सचाई का बल प्रदान कर ताकि मैं तेरी सिद्धि के योग्य बन सकूं।

१५ अगस्त, १९५०

*

ओ मेरे हृदय, भागवत विजय के योग्य महान् बन।

*

मेरा हृदय तेरी दिव्य विजय के योग्य विशाल होने की अभीप्सा करता है।

*

मैं समस्त अहंकारमयी दुर्बलताओं और समस्त अचेतन कपट कुटिलताओं से मुक्त किये जाने के लिए अभीप्सा करती हूं।

३१ दिसम्बर, १९५०

*

प्रभो, वर दे कि चीजों के बारे में मेरी दृष्टि स्पष्ट और तटस्थ हो और मेरे कार्य उसके द्वारा पूर्णतया रूपान्तरित हों।

*

प्रभो, वर दे कि एक बार की गयी और पहचानी गयी मूर्खता कभी दुबारा न होने पाये।

*

मेरे प्रभो, तू मुझे अपने अन्दर वह शान्त भरोसा प्रदान कर जो समस्त कठिनाइयों पर विजय पाता है।

*

मुझे निश्चल विश्वास, शान्त बल, प्रगाढ़ श्रद्धा और भक्ति प्रदान कर।

*

प्रभो, वर दे कि मैं पूरी तरह, सदा के लिए तेरे प्रति निष्ठावान् रहूं।

*

प्रभो, मेरे ऊपर यह कृपा कर कि मैं तुझे कभी न भूल पाऊं।

दिसम्बर, १९५८

*

मेरे प्रभो, चेतना को स्पष्ट और यथार्थ बना, वाणी को पूरी तरह सच्चा बना, समर्पण पूर्ण हो, स्थिरता सम्पूर्ण और सारी सत्ता को प्रकाश और प्रेम के सागर में रूपान्तरित कर दे।

*

मुझे पूर्णतया पारदर्शक बना ताकि मेरी चेतना तेरी चेतना के साथ एक हो सके।

मैं इस धरती की सारी समृद्धि को तेरे चरणों में चढ़ाने की अभीप्सा करती हूं।

*

हे प्रभो, मैं तुझसे प्रार्थना करती हूं, मेरे चरणों को रास्ता दिखा, मेरे मन को प्रबुद्ध कर ताकि सभी चीजों में हर क्षण मैं वही करूं जो तू मुझसे करवाना चाहता है।

१६ जनवरी, १९६२

*

प्रभो, मुझे पूर्ण सचाई प्रदान कर, वह सचाई जो मुझे सीधा तेरे पास ले जाये।

अगस्त, १९६२

*

प्रभो, मुझे अपना आशीर्वाद दे ताकि मैं अधिकाधिक सच्ची बन सकूं।

१८ जुलाई, १९६७

*

प्रभो, मुझे वास्तविक सुख दे, वह सुख जो केवल तेरे ऊपर निर्भर करता है।

*

१९७१ के लिए प्रार्थना

हे प्रभो, वर दे कि मैं वही बनूं जो तू मुझे बनाना चाहता है।

५ मार्च, १९७१

*

मैं तेरी हूं, मैं तुझे जानना चाहती हूं ताकि जो कुछ मैं करूं वह सब केवल वही हो जो तू मुझसे करवाना चाहता है।

२४ जून, १९७२

*

दया के स्वामी, मुझे अपनी कृपा के योग्य बना।

२७ अक्तूबर, १९७२

*

सवेरे और शाम की प्रार्थना

प्रभो, मैं तुम्हारा और तुम्हारे योग्य बनना चाहता हूं, मुझे अपना आदर्श बालक बना।

*

सवेरे

हे मेरे प्रभो, मेरी मधुर मां,

वर दो कि मैं तुम्हारा बनूं, पूरी तरह तुम्हारा, पूर्ण रूप से तुम्हारा।

तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा प्रकाश और तुम्हारा प्रेम समस्त अशुभ से मेरी रक्षा करेंगे।

दोपहर

हे मेरे प्रभो, मधुर मां,

मैं तुम्हारा हूं और प्रार्थना करता हूं कि अधिकाधिक पूर्णता के साथ तुम्हारा बनूं।

रात

हे मेरे प्रभो, मधुर मां,

तुम्हारी शक्ति मेरे साथ है, तुम्हारा प्रकाश और तुम्हारा प्रेम और स्वयं तुम सभी कठिनाइयों से मेरी रक्षा करोगे।

*

मेरे मधुर प्रभो, मेरी छोटी-सी मां,

मुझे सच्चा प्रेम प्रदान करो, ऐसा प्रेम जो अपने-आपको भूल जाता है।

*

मेरे प्रभो, मेरी मां,

तुम हमेशा अपने आशीर्वाद और अपनी कृपा के साथ मेरे संग रहते हो।

तुम्हारी उपस्थिति ही परम सुरक्षा है।

*

याद रखो कि मां हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

उन्हें इस तरह सम्बोधित करो और वे तुम्हें सब कठिनाइयों में से बाहर निकाल लेंगी :

"हे मां, तू मेरी बुद्धि का प्रकाश, मेरी अन्तरात्मा की शुद्धि, मेरे प्राण का स्थिर-शान्त बल और मेरे शरीर की सहनशक्ति है। मैं केवल तेरे ऊपर निर्भर हूं और पूरी तरह तेरा होना चाहता हूं। मार्ग की सभी कठिनाइयों को पार कर सकूं।"

*

मेरी एक छोटी-सी मां है
जो मेरे हृदय में आसीन है;
हम दोनों एक साथ इतने प्रसन्न हैं,
कि हम कभी जुदा न होंगे।

*
**

मेरे प्रभो, तूने आज रात को मुझे यह परम ज्ञान दिया है।

हम जिन्दा हैं क्योंकि यही तेरी इच्छा है।

हम तभी मरेंगे जब यह तेरी इच्छा होगी।

२ मार्च, १९३४

*

अचल शान्ति का आनन्द लेने का एकमात्र उपाय है सभी परिस्थितियों में सदा वही चाहना जो तू चाहता है।

*

प्रभो, मुझे सच्चा सुख दे, वह सुख जो केवल तेरे ऊपर निर्भर रहने से आता है।

१९४०

*

प्रभो, हमें वह अदम्य साहस दे जो तुझ पर पूर्ण विश्वास होने से आता है।

४ अप्रैल, १९४२

*

प्रभो, हमें बल दे कि हम पूर्ण रूप से उस आदर्श को जी सकें जिसकी हम घोषणा करते हैं।

*

हमें उज्ज्वल भविष्य में श्रद्धा और उसे चरितार्थ करने की क्षमता प्रदान कर।

*

प्रभो, वर दे कि हमारे अन्दर चेतना और शान्ति बढ़े, ताकि हम तेरे एकमेव दिव्य विधान के अधिकाधिक निष्ठावान् माध्यम बन सकें।

३१ दिसम्बर, १९५१

*

प्रभो, हमारे अन्दर कोई भी चीज तेरे काम में बाधा न दे।

फरवरी, १९५२

*

प्रभो, हमें मिथ्यात्व से मुक्त कर, हम तेरे सत्य में तेरी विजय के योग्य और पवित्र बनकर उभरें।

*

हे अद्‌भुत कृपा, वर दे कि हमारी अभीप्सा हमेशा अधिकाधिक तीव्र, हमारी श्रद्धा हमेशा अधिकाधिक जीवंत और हमारा विश्वास हमेशा अधिकाधिक निरपेक्ष हो।

तू सर्व-विजयी है!

१९५६

*

परम प्रभो, हमें नीरव रहना सिखा ताकि नीरवता में हम तेरी शक्ति ग्रहण कर सकें और तेरी इच्छा को समझ सकें।

११ फरवरी, १९७२

*

हमें सत्य की ओर जाने के अपने प्रयास में वास्तविक रूप से सच्चा होना सिखला।

*

प्रभो, परम सत्य,

हम तुझे जानने और तेरी सेवा करने के लिए अभीप्सा करते हैं।

हमारी सहायता कर कि हम तेरे योग्य बालक बन सकें।

और इसके लिए तू अपने सतत उपहारों के बारे में हमें अवगत करा ताकि कृतज्ञता हमारे हृदयों को भर सके और हमारे जीवन पर राज कर सके।

*

प्रभो, तेरा प्रेम इतना महान्, इतना उदात्त और इतना पवित्र है कि वह हमारी समझ के परे है। वह अमित और अनन्त है; हमें उसे घुटनों के बल झुककर ग्रहण करना चाहिये। फिर भी तूने उसे इतना मधुर बना दिया है कि हममें से सबसे निर्बल भी, एक बच्चा भी तेरे पास आ सकता है।

*

स्थिर, शान्त और विमल भक्ति के साथ हम तुझे नमस्कार करते हैं और तुझे अपनी सत्ता की एकमात्र वास्तविकता के रूप में स्वीकार करते हैं।

*

प्रभो, सुन्दरता और सामञ्जस्य के देव,

वर दे कि हम संसार में तेरी परम सुन्दरता को अभिव्यक्त करने योग्य यन्त्र बन सकें।

यही हमारी प्रार्थना और हमारी अभीप्सा है।

*

हे परम सद्वस्तु, वर दे कि हम सम्पूर्ण रूप से वह अद्‌भुत रहस्य जी सकें जिसे अब हम पर प्रकट किया गया है।

*

मधुर मां, वर दे कि हम सरल रूप से अब और हमेशा के लिए तेरे नन्हें बालक बने रहें।

***

यहां हर एक, समाधान करने के लिए किसी-न-किसी असम्भवता का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन हे प्रभो, क्योंकि तेरी दिव्य शक्ति के लिए सब कुछ सम्भव है तो क्या ब्योरे में और समग्र में इन सब असम्भावनाओं को दिव्य उपलब्धियों में रूपान्तरित कर देना ही तेरा कार्य न होगा?

*

हे मेरे मधुर स्वामी, तू ही विजेता है और तू ही विजय, तू ही जय है और तू ही जयी!

२७ नवम्बर, १९५१

*

तेरा हृदय मेरे लिये परम आश्रय है जहां हर चिन्ता शान्त हो जाती है। कृपा कर कि यह हृदय पूरा खुला रहे ताकि वे सब जो यातना से पीड़ित हैं, उसमें परम शरण पा सकें।

४ दिसम्बर, १९५१

*

समस्त हिंसा को शान्त कर दे, तेरा प्रेम ही राज्य करे।

१३ अप्रैल, १९५४

*

हे प्रभो, तेरी इच्छा पूर्ण हो। तू ही सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण सुरक्षा है।

*

हे मेरे प्रभो, तेरी सहायता और कृपा हो तो फिर डर किस बात का!
तू ही परम सुरक्षा है जो सभी शत्रुओं को हरा देती है।

*

हे मेरे प्रभो, तेरी सुरक्षा सर्वसमर्थ है। वह हर शत्रु को हरा देती है।

*

सभी परिस्थितियों में तेरी विजय को देखना निश्चय ही उसके आने में सहायता करने का सबसे अच्छा उपाय है।

*

एकमेव परम प्रभु के प्रति

तेरे से दूर होने के अतिरिक्त कोई पाप नहीं, कोई और दोष नहीं।

*

प्रभो, तेरे बिना जीवन भयंकर है। तेरे प्रकाश, तेरी चेतना, तेरे सौन्दर्य

और तेरी शक्ति के बिना समस्त अस्तित्व एक मनहूस और वाहियात प्रहसन है।

*

हे प्रभो, जो कुछ है और जो कुछ होगा उसकी गहराइयों में तेरी दिव्य, अपरिवर्तनशील मुस्कान है।

*
* *

वर्षा के लिए प्रार्थना

वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षा चाहते हैं।
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षा मांगते हैं।
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हमें वर्षा की जरूरत है।
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं।

*

सूर्य से प्रार्थना

हे सूर्य! हमारे मित्र,
बादलों को छिन्न-भिन्न कर दो,
वर्षा को सोख लो।
हम तुम्हारी किरणें चाहते हैं,
हम तुम्हारा प्रकाश चाहते हैं,
हे सूर्य, हमारे मित्र।

*

मेरे प्रभु के नाम से,
मेरे प्रभु के लिए,
मेरे प्रभु की इच्छा से,
मेरे प्रभु की शक्ति से,

हमें तंग करना एकदम बन्द कर दो।

*

(माताजी की ८ अप्रैल १९१४ की प्रार्थना के बारे में—जो 'प्रार्थना और ध्यान' में छपी है)

रकई (फ्रेंच शब्द)—सब ओर से इकट्ठा करना और धार्मिक भाव से एकाग्र होना। इस प्रार्थना में पहले विचार पूरी शान्ति में है और हृदय इकट्ठा होकर आराधना में केन्द्रित है, अगली बार मस्तिष्क आराधना से भरा है और हृदय नीरव और शान्तिपूर्ण है।

*

(३ सितम्बर १९१९ की प्रार्थना के बारे में)

इस प्रार्थना में विश्व जननी भौतिक, पार्थिव प्रकृति के रूप में बोल रही हैं। भोजन यह संसार है जिसे उन्होंने क्रमविकास की प्रक्रिया द्वारा निश्चेतना में से निकाला है। वे मनुष्य को इस क्रमविकास का शिखर, इस संसार का शासक बनाना चाहती थीं। वे कल्पों से इस आशा से प्रतीक्षा करती आयी हैं कि मनुष्य इस भूमिका के योग्य बन जायेगा और संसार को भागवत सिद्धि प्रदान करेगा। लेकिन मनुष्य इतना अयोग्य था कि वह अपने-आपको इस कार्य के लिए तैयार करने की शर्तें स्वीकार करने के लिए भी इच्छुक न हुआ और अन्ततः भौतिक प्रकृति को यह विश्वास हो गया कि वह गलत मार्ग पर थी। तब उसने भगवान् की ओर मुड़कर उनसे निवेदन किया कि वे इस जगत् पर कब्जा कर लें, जिसे भागवत उपलब्धि के लिए बनाया गया था।

इस चाबी के साथ बाकी सब अपने-आपमें स्पष्ट है।

*

(प्रार्थना और ध्यान में छपी २३ अक्तूबर १९३७ की प्रार्थना के बारे में)

संक्षेप में मैं कह सकती हूं कि "परम सिद्धि" का अर्थ व्यक्ति के लिए है भगवान् के साथ तादात्म्य और धरती पर समष्टि के लिए उसका अर्थ है अतिमानस का, नयी सृष्टि का आगमन।

इसे एक रूढ़ि के रूप में न लो, केवल एक व्याख्या मानो, और "सिद्ध करने वाली" है सिद्धि की परम शक्ति, जो कर्ता और कर्म दोनों है।

साधना और जीवन

तुम्हारा जीवन...

मैं केवल अज्ञान की निश्चेतना और अहं की सीमाओं की बलि की मांग कर रही हूं—लेकिन कितने अद्वितीय और अतुल्य लाभ के लिए!

७ मई, १९३७

*

अपने जीवन को उपयोगी बनाओ।

*

तुम्हारा जीवन दिव्य सत्य के लिए सतत खोज हो, तब वह जीने योग्य होगा।

*

तुम्हारा जीवन पूर्णतः, ऐकान्तिक रूप से परम प्रभु द्वारा शासित हो।

*

तुम्हारी उच्चतम अभीप्सा तुम्हारे जीवन को व्यवस्थित करे।

*

अपनी अभीप्सा को तीव्र और निष्कपट बनाओ और यह कभी न भूलो कि तुम भगवान् के बालक हो। यह तुम्हें कोई भी ऐसी चीज करने से रोकेगा जो भगवान् के बालकों के अयोग्य हो।

*

सब कुछ हर एक की वृत्ति और उसके उपगमन की सचाई पर निर्भर है।

*

सब कुछ आन्तरिक मनोभाव पर निर्भर है।

१७ अप्रैल, १९४७

*

परिवर्तन

ठीक करना और मिटाना, दोनों सम्भव हैं लेकिन दोनों हालतों में, यद्यपि अलग-अलग मात्रा में, स्वभाव और चरित्र के रूपान्तर की जरूरत होती है। अपने कर्म के परिणामों को बदलने की आशा करने से पहले जो चीज गलत तरह से की गयी है उसे पहले अपने अन्दर बदलना चाहिये।

११ जनवरी, १९५१

*

केवल तभी, जब लोग सचमुच अपनी चेतना को बदलना चाहते हैं, उनके कार्य भी बदल सकते हैं।

*

चेतना का परिवर्तन और जब हमारी चेतना बदलेगी तब हम जानेंगे कि परिवर्तन क्या है।

*

बदलो...

१. घृणा को सामञ्जस्य में
२. ईर्ष्या को उदारता में
३. अज्ञान को ज्ञान में
४. अन्धकार को प्रकाश में
५. मिथ्यात्व को सत्य में
६. धूर्तता को भलाई में
७. युद्ध को शान्ति में
८. भय को अभय में

९. अनिश्चितता को निश्चिति में
१०. सन्देह को श्रद्धा में
११. अव्यवस्था को व्यवस्था में
१२. पराजय को जय में।

९ अक्तूबर, १९५१

*

स्वाधीनता और व्यवस्था
भ्रातृत्व और स्वतन्त्रता
समानता और क्रम-परम्परा
एकता और विभिन्नता
प्रचुरता और न्यूनता
प्रयास और विश्राम
शक्ति और अनुकम्पा
विवेक और परोपकारिता
उदारता और मितव्ययिता
अपव्यय और कंजूसी।

*

परिवर्तन: उपलब्धि का आरम्भ-बिन्दु।

*

परिवर्तन: सत्ता की सभी गतिविधियों का भगवान् की ओर मुड़ना।

*

पुनरुत्थान: पुरानी चेतना का झड़ जाना और फिर उसमें से सच्ची सत्ता का जागना।

*

नव जन्म: सच्ची चेतना का, हमारे अन्दर भागवत उपस्थिति का जन्म।

सिद्धि : हमारे प्रयासों का लक्ष्य।

*

सिद्धि : वही जिसके लिए हम अभीप्सा करते हैं और जिसके लिए अनथक प्रयास करते चले जायेंगे, चाहे उसमें कितना भी समय क्यों न लग जाये।

*

सिद्धि की शक्ति : सिद्धि मिल जाने से सभी बाधाएं जीत ली जायेंगी।

ठीक चीज करो

अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा आदर किया जाये तो हमेशा आदरणीय रहो।

*

क्या तुम सदयता की चाह करते हो : सदय बनो।
क्या तुम सत्य की मांग करते हो? सच्चे बनो।

*

अच्छा करने की कोशिश करो और यह कभी न भूलो कि भगवान् तुम्हें हर जगह देखते हैं।

*

मुंह में मिठाई की अपेक्षा अच्छा कार्य हृदय के लिए ज्यादा मीठा होता है।

जो दिन अच्छा काम किये बिना बीतता है वह बिना आत्मा का दिन होता है।

१६ अक्तूबर, १९५१

*

भलाई के प्यार के लिए भला करो, इनाम पाने की आशा से नहीं। भला होने के आनन्द के लिए भले बनो, औरों की कृतज्ञता पाने के लिए नहीं।

१९५२

*

सुखद में मनोहरता होती है लेकिन अच्छा अच्छा ही होता है और मनोहरता के बिना भी अच्छा हो सकता है।

*
**

ठीक होने का केवल एक ही रास्ता है लेकिन गलत होने के रास्ते अनेक हैं।

*

अगर तुम ठीक हो तो सब कुछ ठीक होगा।

१७ नवम्बर, १९५२

*

अपने अन्दर और अपने द्वारा चेतना को काम करने दो। सब कुछ ठीक हो जायेगा।

१० अप्रैल, १९५४

*

भागवत कृपा से हमेशा यह प्रार्थना करो कि वह तुमसे हमेशा ठीक चीज ठीक तरह से करवाये।

*

हमेशा वही करो जिसे तुम अच्छे-से-अच्छा समझते हो, चाहे वह करने में सबसे अधिक कठिन क्यों न हो।

२ मई, १९५४

*

अपने-आपको भूल जाने का सबसे सरल मार्ग कौन-सा है? हमेशा ठीक चीज, ठीक ढंग से, ठीक समय पर करो।

*

हर रोज, हर क्षण, हम हमेशा ठीक चीज ठीक तरह से करने की अभीप्सा करेंगे।

२२ जून, १९५४

*

केवल तभी जब हम विक्षुब्ध न हों, हम हमेशा ठीक समय पर, ठीक तरह से ठीक चीज कर सकते हैं।

*

चीज हमेशा ठीक होती है जब ठीक भावना से की जाये।

२४ अगस्त, १९५७

*

तुम्हारे पास जो कुछ आये, अगर तुम उसे ठीक भाव से लो तो वह तुम्हारे लिए सर्वोत्तम हो जायेगा।

*

सही गतिविधि : सभी गतिविधियां उचित प्रेरणा के अधीन।

*

गलत गतिविधियों को ठीक में बदलना : बहुत अधिक सद्‌भावना जो हमेशा रूपान्तरित होने के लिए तैयार हो।

*

एक ऐसा क्षण होता है जब उचित मनोभाव सहज रूप से बिना प्रयास के आता है।

*

उचित मनोभाव के लिए अभीप्सा : ऊर्जापूर्ण, तत्पर, दृढ़निश्चयी।

*

उचित मनोभाव : सरल और खुला हुआ, यह बिना किसी जटिलता के होता है।

ऊंचे उड़ो

हमारी चेतना एक छोटे-से पक्षी की तरह है, उसे अपने पंखों का उपयोग करना सीखना चाहिये।

*

ऊंचाइयों की ओर उड़ान भरो।

*

बहुत ऊंचे उड़ो और तुम गहन गहराइयों को खोज लोगे।

१ जून, १९५४

*

ऐसा दिन आता है जब हमारे अन्दर और हमारे चारों ओर के सभी अवरोध गिर जाते हैं और हमें उस पक्षी की तरह अनुभव होता है जो बिना किसी बाधा के उड़ने के लिए पर तोल रहा हो।

६ दिसम्बर, १९५४

*

सभी बन्धनों से मुक्त, ऊंचाई-से-ऊंचाई की ओर उड़ने वाली सत्ता वह सत्ता है जो भागवत रूपान्तर की सुखद खोज कर रही है।

*

देदीप्यमान सूर्य क्षितिज से ऊपर उठ रहा है। यह तुम्हारे प्रभु हैं जो तुम्हारी ओर आ रहे हैं।

समस्त जगत् जाग उठा है और उनकी भव्यता के सम्पर्क के आनन्द में अंगड़ाई ले रहा है।

उभरती हुई, खुलती हुई धरती की तरह, बढ़ते हुए पेड़ की तरह, खिलते हुएं फूल की तरह, गाते हुए पक्षी की तरह, प्रेम करने वाले मनुष्य की तरह उनका प्रकाश तुम्हारे अन्दर प्रवेश करे और हमेशा बढ़ती हुई, विस्तृत होती हुई प्रसन्नता में चमक उठे। यह प्रसन्नता स्थिर रूप से आगे बढ़ती जाये जैसे आकाश में तारे बढ़ते हैं।

*

आध्यात्मिक वातावरण: हल्का, तरल, स्पष्ट, पारदर्शक और इतना स्वच्छ!

मनुष्य को भगवान् की सहायता

हमारे विचार अभी तक अज्ञानभरे हैं, उन्हें प्रकाशमान और प्रबुद्ध होना चाहिये।

हमारी अभीप्सा अभी तक अपूर्ण है, उसे शुद्ध होना चाहिये।

हमारा कर्म अभी तक शक्तिहीन है, उसे प्रभावशाली बनना चाहिये।

२५ अगस्त, १९५४

*

नीरवता में परम प्रभु से आने वाली आज्ञा को सुनो। तुम्हारे अन्दर उसे कार्यान्वित करने की क्षमता आ जायेगी।

*

यह जानो कि भगवान् क्या चाहते हैं और तुम्हें प्रभुता प्राप्त हो जायेगी।

*

आन्तरिक आज्ञा मानसिक धारणा से अधिक निश्चित होती है।

*

तर्कबुद्धि का शासन तब तक समाप्त नहीं होना चाहिये जब तक चैत्य विधान न आ जाये जो 'भागवत इच्छा' को अभिव्यक्त करता है।

*

विरोधी सुझावों को अस्वीकार करने की शक्ति : वह शक्ति जो भगवान् के साथ सचेतन ऐक्य से आती है।

*

भागवत चेतना के साथ ऐक्य के बिना बुद्धिमानी नहीं प्राप्त की जा सकती।

*

सर्वांगीण बुद्धिमत्ता : जो भागवत ऐक्य से प्राप्त होती है।

*

सृष्टि की सभी चीजों की तरह बुद्धिमत्ता भी क्रमशः प्रगतिशील है।

*

थोड़ी-सी बुद्धिमत्ता का स्वागत है।

*
* *

निश्चेतना की गहराइयों में भी भागवत चेतना देदीप्यमान और शाश्वत रूप से चमकती है।

*

निश्चेतना में क्रियाशील भागवत संकल्प सर्वशक्तिमान् होता है, भले हम उसे न जानते हों।

*

वस्तुतः, मुझे विश्वास है कि जब निश्चेतना पर विजय पा ली जायेगी तो फिर शर्तों की कोई जरूरत न रहेगी। सब कुछ भागवत कृपा का मुक्त निर्णय होगा।

*
* *

यूनानियों में ताल के अनुरूप गति का, वस्तुओं और रूपों में सामञ्जस्य का बहुत पैना और असाधारण सौन्दर्य बोध था। साथ ही उनमें कठोर नियति के आगे मनुष्य की असमर्थता का भी उतना ही तीव्र भान था जिससे कोई बच न सकता था। नियति की कठोरता उनके पीछे भूत की तरह लगी रहती थी और ऐसा लगता है कि उनके देवता भी उसके वश में थे। उनकी पुराण-कथाओं और उपाख्यानों में हम भागवत कृपा और अनुकम्पा का लेशमात्र भी नहीं पाते।

अनुकम्पा और भागवत कृपा का यह विचार यूरोप में बाद में ईसाई धर्म के साथ आया जब कि एशिया और विशेषकर भारत में उससे बहुत पहले यह बौद्ध शिक्षा का सारतत्त्व रहा।

तो सभी यूनानी कहानियों, गाथाओं और दुःखान्त नाटकों में हम नियति के आदेशों की कठोर क्रूरता पाते हैं जिन्हें कोई भी नहीं झुका सकता।

*

जो श्रद्धा वैश्व भगवान् के प्रति जाती है वह लीला की आवश्यकताओं के कारण अपनी क्रियाशक्ति में सीमित रहती है।

इन सीमाओं से पूरी तरह छुटकारा पाने के लिए तुम्हें परात्पर भगवान् तक पहुंचना चाहिये।

*

एकमात्र आशा है अदृश्य दिव्य शक्ति की क्षमता से।

*

केवल परम चेतना ही तुम्हारे 'कर्म' पर असर डाल सकती है और

यह चेतना स्वतन्त्र है, समस्त मानव चेतना से ऊपर है।

*

परम शक्ति सभी गतिविधियों को हाथ में ले रही है। वह उन्हें सत्य में बदल देगी। किसी प्रयास की जरूरत नहीं, मन से या किसी और यन्त्र से सहायता की कोई जरूरत नहीं है, यहां तक कि अब व्यक्तिगत स्वीकृति की भी जरूरत नहीं रही।

*

जो पूर्वनिर्दिष्ट हैं उन्हें आन्तरिक मार्गदर्शक की सहायता मिलती है।

*
* *

भागवत शुभचिन्ता : हमेशा सक्रिय, जब हम उसे नहीं देखते तब भी।

*

आओ, हम इस भागवत शुभचिन्ता को, जिसे प्रायः नहीं समझा जाता, समझें और कृतज्ञता के साथ स्वीकार करें।

*

सर्वांगीण सान्त्वना : जिसे मनुष्य केवल भगवान् में ही पा सकता है।

*

सान्त्वना : एक आशीर्वाद जो भगवान् हमें देते हैं।

सुन्दरता

कलात्मक रुचि सुन्दर चीजों से प्रसन्न होती है और अपने-आप सुन्दर होती है।

*

कलात्मक संवेदनशीलता : कुरूपता के साथ लड़ने के लिए एक शक्तिशाली सहायक।

*

कलात्मक कार्य : सुन्दरता की सेवा में सभी कार्य।

*

माताजी,

क्या हम 'क' से (जो एक कलाकार है) ऐसे काम करने के लिए कह सकते हैं जो कलात्मक नहीं हैं?

सभी चीजें और हर एक चीज कलात्मक भाव से करने पर कलात्मक हो सकती है।

२७ *अप्रैल,* १९६६

*

सुन्दरता एक महान् शक्ति है।

*

आध्यात्मिक सुन्दरता में संक्रामक शक्ति होती है।

*

सुन्दरता को अपनी पूरी शक्ति तब तक नहीं मिलती जब तक वह भगवान् को अर्पित न हो।

आगामी कल की सुन्दरता : वह सुन्दरता जो भागवत शक्ति को व्यक्त करेगी।

*

भगवान् को अभिव्यक्त करती हुई आगामी कल की सुन्दरता : वह सुन्दरता जो केवल भगवान् द्वारा और भगवान् के लिए ही रहती है।

*

सुन्दरता अपने-आपमें काफी नहीं है, वह भागवत होना चाहती है।

*

सुन्दरता का शुद्ध संवेदन केवल महान् शुद्धि के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

*

सुन्दरता का आदर्श अपने अनन्त लक्ष्य की ओर गति करता है।

*

जीवन की सबसे अधिक बहुमूल्य वस्तुओं में ऐसी चीजें हैं जिन्हें तुम अपनी भौतिक आंखों से नहीं देखते।

१० नवम्बर, १९६९

सामान्य

आशावाद : अपने विपरीत की अपेक्षा अधिक सहायक।

*

कुतूहल : अगर हम अपवादिक बनना चाहें तो हमारे गुण हमें अपवादिक बनायें।

मानसिक कुतूहल : खतरनाक न बन जाने के लिए इसे गम्भीरता के साथ नियन्त्रित करना चाहिये।

*

भौतिक कुतूहल का मूल्य उसके उद्देश्य से होता है।

*

शुद्ध ब्रह्मचर्य : जरा तपस्यापूर्ण और गर्वीला, यह बहुत संयमी है।

*

कोशिश छोटी-सी चीज है लेकिन वह भविष्य के लिये प्रतिज्ञा हो सकती है।

*

आविष्कारों का कोई उपयोग नहीं अगर वे भगवान् द्वारा नियन्त्रित न हों।

*

सोने का उपयोग भगवान् की सेवा को छोड़कर और किसी चीज में न होना चाहिये।

*

हितैषिता : सरल और मधुर, सभी की आवश्यकताओं की ओर ध्यान देने वाली।

*

निःस्वार्थता : गहराई तक खुली हुई ताकि किसी चीज से इन्कार न करे।

व्यक्तिगत सलाहें

संक्षिप्त उत्तर

मेरा मन सन्देहों और अन्य निम्न प्रभावों से इतना ज्यादा घिरा हुआ है कि मुझे लगता है कि अगर मेरा शरीर अभी छूट जाये तो ज्यादा अच्छा होगा। इस सबके बावजूद साक्षी पुरुष होने के नाते मैं इन सब बेतुकी गतिविधियों की ओर से तटस्थ हूं।

हां, ये बेतुकी हैं। उन्हें झाड़ फेंको।

मेरे आशीर्वाद सहित।

१९३३

*

पता नहीं क्यों, कुछ दिनों से मैं कुछ अस्वस्थ-सा अनुभव कर रहा हूं। मेरा मन क्षुब्ध है, मेरा प्राण उदास है और मेरा शरीर रुग्ण।

चिन्ता न करो, चुपचाप रहो, अपनी श्रद्धा को अक्षुण्ण बनाये रखो। यह स्थिति चली जायेगी।

१ फरवरी, १९३३

*

पता नहीं कैसे, मेरे उत्सर्ग के लिए हानिकर विचार मेरे मन में घुस आते हैं और मुझे अस्त-व्यस्त कर देते हैं। मैं अपनी पूरी कोशिश करता हूं कि उन्हें भगा दूं और आपके ध्यान में मग्न रहूं लेकिन बहुधा वे लौट आते हैं। वे बार-बार क्यों आते हैं और कहां से आते हैं? क्या वे वैश्व प्रकृति से आते हैं जो अभी तक शुद्ध नहीं हुई है और क्या वे तब तक आते रहेंगे जब तक मेरा समस्त मानवीय स्वभाव रूपान्तरित न हो जायेगा?

हां, वे पुनरुद्धारवंचित विचार वैश्व प्रकृति से आते हैं लेकिन जिस हद तक

हम स्वयं रूपान्तरित होते हैं हम उन्हें भी दूर रख सकते हैं और फिर वे हमें तकलीफ नहीं देते।

*

हमेशा वह चीज ज्यादा पसन्द करना जो औरों के पास है, एक प्राणिक तरंग है। उसकी ओर ध्यान न दो।

२ जून, १९३४

*

क्या तुम्हारा मतलब यह है कि केवल तुम्हारा मन ही मेरी क्रिया के प्रति खुला है? यह ठीक न होगा क्योंकि मैं मन की अपेक्षा कहीं अधिक तुम्हारे ऊपर हृदय द्वारा काम करती हूं।

४ जून, १९३४

*

हम अपने कार्यों और हरकतों के सच्चे आन्तरिक कारण के बारे में प्रायः हमेशा ही अचेतन होते हैं।

हां, सत्ता की हरकतें हमेशा बहुत जटिल होती हैं।

५ जून, १९३४

*

मेरी भौतिक सत्ता आपके प्रेम के लिए प्यासी है। मां, देर न लगाइये। आप जानती हैं बच्चा तर्क की बात नहीं सुनता, वह केवल अपनी मां के वक्ष पर रहना चाहता है।

तुम भली-भांति जानते हो कि मैं हमेशा तुम्हारे अन्दर और तुम्हारे साथ हूं। भौतिक चेतना में भी और अन्य चेतनाओं में भी।

१० जुलाई, १९३४

*

हां, बाहरी प्रकृति को धीर, स्थिर होना चाहिये और भगवान् की ओर मुड़ना चाहिये।

२१ दिसम्बर, १९३६

*

कम-से-कम मानसिक तौर पर हम अपनी गलतफहमी और भूल के बारे में समझते हैं और हमने निश्चय कर रखा है कि उन्हें सुधारने के लिये पूरा जोर लगायेंगे और हम यह विश्वास करते हैं कि आपकी कृपा की शक्ति द्वारा वह सुधार तेजी से हो जायेगा। हां, वह बहुत थोड़े समय में भले ही न हो पर होगा जरूर।

वह तुरन्त क्यों न हो? सद्भावना और श्रद्धा के साथ कुछ भी असम्भव नहीं है।

६ जुलाई, १९३९

*

माताजी, जब कोई मुझसे पूछता है कि यहां इतने वर्ष रह कर मैंने क्या किया है तो मैं कहता हूं कि मैंने भक्ति के साथ सेवा की है और यही मेरी साधना है। मैं और कुछ नहीं समझता। यह सच है कि मैं बहुत देर से यह समझा और कभी-कभी मुझे चिन्ता भी हुई है। माताजी की कृपा से मैं उनकी सेवा के बारे में कुछ-कुछ समझता हूं और उसी में मैं 'उनकी शक्ति' और 'उनके प्रेम' का अनुभव करता हूं और मुझे लगता है कि मेरे लिए यह बहुत काफी है। क्यों, है न माताजी?

निश्चय ही तुम ऐसी चेतना के साथ अधिकाधिक अच्छी तरह समझते हो और कार्य करते हो जो पूर्ण प्रकाश की ओर प्रगति करती जा रही है।

*

जब कोई मुझसे कोई चीज मांगता है तो मना करना कुछ कठिन

होता है। मुझे लगता है कि यह मेरे स्वभाव की एक दुर्बलता है। है न माताजी?

यह इस पर निर्भर है कि तुम उसे कैसे देखते हो और किस भाव से करते हो।

*

माताजी, आज मैंने कतरनों से यह पंखा बनाया है और उसे आपके चरणों में अर्पित करता हूं। लेकिन पता नहीं आप इसे कलात्मक गुणों के आधार पर स्वीकार करेंगी या नहीं क्योंकि वे तो इसमें हैं ही नहीं—यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। माताजी, मुझे विश्वास है कि आप इसे मेरी भौतिक भेंट के रूप में स्वीकारेंगी। हम जो भी काम करते हैं उनके अन्य गुणों की अपेक्षा मैं इसे बहुत महत्त्वपूर्ण मानता हूं। निश्चय ही, मेरा यह अर्थ नहीं है कि कलात्मक सुन्दरता की अवहेलना करनी चाहिये। माताजी, क्या मेरी बात ठीक है?

हां, तुम्हारी बात ठीक है और इसके अतिरिक्त पंखा अनाकर्षक नहीं है। इसमें एक अपनी ही मोहकता है।

*

मुझे बहुत खेद है कि मेरे बारे में कुछ ऐसी धारणा बनी है कि मैं पैसा खींच रहा हूं और उसे जहां जाना चाहिये अर्थात् माताजी के पास, वहां से अलग रास्ते पर लगा रहा हूं। मेरा प्रयत्न यह रहता है कि समस्त धन माताजी का है और हमें उनके आदेश के अनुसार ही उसका उपयोग करना चाहिये। जहां कहीं मेरी चलती है, मैं यही करता हूं और मुझे दुःख है कि मेरे बारे में ऐसी उल्टी धारणा बनी। मैं अपने मन का भार हल्का करने के लिए आपको लिख रहा हूं।

पता नहीं यह अफवाह किसने फैलायी है, लेकिन मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं कि मुझे मालूम है कि यह सच नहीं है। तो, चिन्ता न करो और मेरे

आशीर्वाद के साथ अपने हृदय में शान्ति बसने दो।

*

तुम जिस चीज की खोज करते हो वह हमेशा तुम्हारे लिए तैयार रहती है। चैत्य मोड़ को पूरा होने दो और वह अपने आप तुम्हें उस चीज तक पहुंचा देगा जिसके लिए तुम अभीप्सा कर रहे हो।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

१५ फरवरी, १९३९

*

कभी-कभी मैं गम्भीरता से सोचता तो हूं पर समझ नहीं पाता कि मेरी सत्ता क्या चाहती है। यह कैसी बात है कि मैं वास्तविक सत्ता को अनुभव नहीं करता जिसका अस्तित्व है और जिसे सत्ता और सम्भवन का आनन्द प्राप्त होता है? मुझे किसी सृजनात्मक कार्य में वास्तविक दिलचस्पी क्यों नहीं है? मेरा मन सक्रिय है। वह समझना और प्रकाशमय होना तथा चीजों के सत्य को देखना और जानना चाहता है। मुझे लगता है कि मेरा मन इस दिशा में विकसित हो रहा है। कभी-कभी मेरे हृदय में आवेग उठता है कि किसी ऐसी चीज को पकड़ूं जो सचमुच मेरी आत्मा को सन्तुष्ट कर सके लेकिन वह आवेग ज्यादा समय नहीं टिकता। वह सत्ता की एक सपाट-सी अवस्था में गायब हो जाता है। आपका क्या ख्याल है, मेरी सच्ची सत्ता क्या चाहती है?

भगवान्।

और मुझे यह भी लगता है कि आप मुझ से कुछ सन्तुष्ट नहीं हैं।

ऐसी कोई बात नहीं है। हर एक की अपनी कठिनाइयां होती हैं। और मैं उसे उनमें से निकलने में सहायता देने के लिए हूं।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२५ फरवरी, १९४२

*

मुझे यह ख्याल आया है कि जब मैं आपसे सीधा सुझाव या आदेश न भी पाऊं तो आपके कार्य के हित में मुझे वही करना चाहिये जो मैं अपने-आप कर सकूं ताकि मैं अपने ही ढंग से[1] *अपनी अधिक-से-अधिक क्षमता के साथ आपकी सेवा कर सकूं। कृपया मुझे निर्देश दें और अगर मैं गलत होऊं तो ठीक कर दें।*

यह हमेशा खतरनाक होता है। तुम्हें भगवान् की सेवा *अपने निजी ढंग से नहीं* बल्कि भगवान् के ढंग से करनी सीखनी चाहिये।

आशीर्वाद।

१० अप्रैल, १९४७

*

निर्णय करने के लिए मैंने एक तरकीब खोज निकाली है। मैं मामले को स्थगित कर देता हूं और आन्तरिक रूप से उसे आपके आगे रखता हूं। समाधान अपने-आप आ जाता है।

वास्तव में यही सच्चा तरीका है और सब जगह इसी का उपयोग करना चाहिये।

*

वर दीजिये कि जाने अजाने मैं वही करूं जो आप मुझसे करवाना चाहती हैं।

यही ठीक चीज है और है सबसे अधिक अच्छी।

*

मेरे प्यारे बालक, निश्चय ही तुम एक जीवन से दूसरे जीवन में चले गये हो लेकिन यह नया जन्म तुम्हारे शरीर में हुआ है और अब नयी

[1] माताजी ने इन चार शब्दों को रेखांकित कर दिया था।

प्रगति के लिए तुम्हारे आगे मार्ग खुला हुआ है।

मेरे प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१९ अप्रैल, १९६०

*

मैं मार्ग जानता हूं लेकिन अगर रास्ते में ही डाकू मुझे लूट लें तो मैं क्या करूं?—मौलाना आजाद।

डाकुओं को पकड़ने के लिए परम प्रभु को पुकारो।

२६ अक्तूबर, १९६३

*

मैं निम्नलिखित प्रश्न पर माताजी से प्रकाश चाहता हूं। संसार जैसा है, उसमें वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार ही हमें काम करना होता है। तो हम उपलब्ध परिस्थितियों का उपयोग करते हुए बल इकट्ठा करें और फिर भागवत इच्छा को उसके शुद्ध रूप में प्रकट करने का प्रयास क्यों न करें?

लेकिन धरती पर जीने के तथ्य का मतलब ही यह है कि हम "उपलब्ध परिस्थितियों का उपयोग" कर रहे हैं, अन्यथा जीना असम्भव होता।

आशीर्वाद।

१८ मार्च, १९६५

*

भगवती मां,

अगर भविष्य में किसी भी तरह का दौरा आये तो क्या तुरन्त आपको सूचना भेज दूं बजाय इसके कि लोग मुझे झट अस्पताल पहुंचा दें?

निश्चय ही, मुझे तुरन्त सूचना दो ताकि मैं सहायता कर सकूं।

३० सितम्बर, १९६६

*

भगवती मां, मेरे प्राण में कुछ कठिनाई हो रही है। कृपया मेरी सहायता कीजिये।

यदि तुम्हें कुछ काम करना होता?...

आशीर्वाद।

२५ मई, १९६७

*

भगवती मां,

मैं जो चाहता हूं वह है अपनी समस्त सत्ता को भविष्य में आगे बढ़ने देना। क्या आप मेरे उन भागों को सहायता देंगी जिन्हें धक्के की जरूरत है?

यह बड़ा अच्छा निश्चय है। धक्का दिया जाता है और दिया जायेगा।

तो अब प्रतिरोध न करो।

प्रेम और आशीर्वाद।

२० मई, १९६८

*

भगवती मां,

मैं तैयार हूं।

तो चलो, शुरू करो।

आशीर्वाद।

१ जुलाई, १९६९

*

कल दर्शन के बाद से मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरे अन्दर कोई चीज आध्यात्मिक जीवन के विरुद्ध विद्रोह कर रही है। मुझे इस विद्रोह से डर लगता है। मैं क्या करूं?

जब तुम मेरे सामने थे उस समय जिस चीज ने तुम्हारे अन्दर विद्रोह किया

था यह वही चीज है जो तुम्हें आध्यात्मिक जीवन बिताने से रोकती है। अब जब कि तुम शत्रु के बारे में सचेतन हो तो अगर तुम निश्चय करो तो उसे निकाल बाहर कर सकते हो।

२१ नवम्बर, १९६९

*

मैंने किताबों के लिए कुछ पैसे जमा किये थे। एक दिन मैंने वह पैसे आपको दे दिये। उसके तुरन्त बाद किसी ने मुझे ठीक वही किताबें बल्कि उनसे कुछ अधिक भेंट में दीं।

इस प्रकार की चीजें सैकड़ों बार हो चुकी हैं और अधिकाधिक हो रही हैं —लेकिन मुझे यह बिलकुल "स्वाभाविक" मालूम होती है, यद्यपि मैं इसे समझाने के लिए इच्छुक नहीं हूं।

*

'क' आपकी और श्रीअरविन्द की फोटो पाकर बहुत खुश हुआ। उसने मुझसे कहा कि इन्हें खोलने के बाद उसने अपने कमरे के वातावरण में स्पष्ट परिवर्तन अनुभव किया। माताजी, आपने अपने हाथ से मुझे श्रीअरविन्द का जो फोटो दिया था उसके लिए मैंने भी यह अनुभव किया था कि वह जीवन से स्पन्दित हो रहा है। यह आपके स्पर्श के कारण है न?

श्रीअरविन्द और मैं जिस फोटो पर हस्ताक्षर करते हैं उसमें हमेशा एक शक्ति रख देते हैं। इस फोटो को श्रीअरविन्द ने भी देखा था और उसके फ्रेम की प्रशंसा की थी।

*

(लेखन-कार्य में कठिनाई के बारे में)

ग्रहणशील बनो और सब ठीक हो जायेगा।

*

लिखते जाओ। तुम्हें कैसे पता कि *प्रेरणा* तुम्हारे पास आने के लिए तैयार नहीं है?

*

जो उसे ग्रहण करना जानता है उसके लिए प्रेरणा अपने बहुत सारे उपहार लेकर आती है।

*

मधुर मां,

एक युवक, जिसने अपनी "उच्चतर शिक्षा" समाप्त कर ली है, कुछ दिन पहले मेरे पास आया था। उसने कहा कि वह मेरे साथ "दिव्य जीवन" पढ़ना चाहता है। चूंकि मैंने पुस्तक सिर्फ यत्र-तत्र, अंशों में पढ़ी है इसलिए मैंने उससे कह दिया कि मैं उसकी सहायता न कर सकूंगा। लेकिन वह बहुत आग्रह करता रहा और आखिर मुझे उसकी बात माननी पड़ी।

वह मुझसे पुस्तक में से प्रश्न पूछता है जिनमें से कुछ काफी कठिन होते हैं। और यद्यपि मैं उत्तर नहीं जानता, पर वे जैसे-जैसे मेरे पास आते हैं, मैं उसे देता जाता हूं। हम दोनों ने देखा कि उत्तर ठीक होते हैं और उत्तरों की भाषा लगभग वैसी ही होती है जैसी इस पुस्तक में श्रीअरविन्द की भाषा है।

मैं जानना चाहता हूं (१) क्या यह अन्तःप्रेरणा है? (२) क्या ऐसा कोई लोक है जहां समस्त ज्ञान रहता है और अगर हम उस लोक की ओर खुल सकें तो हमें जिस किसी ज्ञान की जरूरत हो वह मिल सकता है? (३) अगर पढ़ाना मेरा कार्य है तो ग्रहणशीलता बढ़ाने के लिए मुझे क्या करना चाहिये?

श्रीअरविन्द की शिक्षा के साथ तुम्हारा सचेतन सम्पर्क है। वह उच्चतर मानसिक जगत् में सार्वभौम और अमर है।

तुम मौन होकर जितने एकाग्र होओगे उतने ही स्पष्ट रूप से उसे पा सकोगे।

आशीर्वाद।

१३ जून, १९६८

*

(२४ जून १९७० को 'श्रीअरविन्द शोध अकादमी' की स्थापना हुई थी ताकि उच्चतर स्तर पर माताजी और श्रीअरविन्द के ग्रन्थों का अध्ययन करने के इच्छुक शोध करने वाले छात्रों की सहायता की जा सके। जब इसका पहले-पहल प्रस्ताव रखा गया तो माताजी ने संस्थापक को लिखा :)

जो कुछ भी किया जाये वह मानवजाति की प्रगति में योगदान दे सकता है, लेकिन सब कुछ निर्भर है उसे करने के ढंग पर।

तुम्हारे और तुम्हारी योजना के लिए मेरे आशीर्वाद।

मार्च १९७०

कुछ लम्बे पत्र

तुम्हारा पत्र मुझे दिया गया है। तुमने उसमें जो प्रश्न पूछे हैं वे मेरे विकास के एक स्तर पर बहुत अधिक रुचिकर थे इसलिए बड़ी खुशी से मैं उनका उत्तर दूंगी। फिर भी, जो उत्तर मानसिक रूप से तैयार किया जाता है, वह कितना ही पूर्ण क्यों न हो, सच्चा उत्तर नहीं हो सकता, ऐसा उत्तर जो मन के सभी प्रश्नों और सन्देहों को चुप करा सके। निश्चिति केवल आध्यात्मिक अनुभूति से आती है और सुन्दर-से-सुन्दर दार्शनिक ग्रन्थ कभी कुछ क्षणों के लिए जिये गये ज्ञान का स्थान नहीं ले सकते या उसकी बराबरी नहीं कर सकते।

तुम कहते हो : "क्या एक औसत विकासवाला आदमी, जो अब पार्थिव कामनाओं से दुःखी नहीं होता, जो संसार के साथ केवल अपने स्नेह द्वारा

संलग्न है, पुनर्जन्म की आशा छोड़ सकता है? क्या मानवीय स्तर से परे एक कम पार्थिव अवस्था नहीं है जहां आदमी तब जाता है जब कामनाएं उसे मानवीय स्थिति में वापिस नहीं बुलातीं। मुझे यह बात बिलकुल तर्कसंगत मालूम होती है। मनुष्य श्रेणीक्रम के शिखर पर नहीं हो सकता। पशु उसके बहुत निकट है; क्या वह भी परवर्ती स्तर के बहुत नजदीक नहीं है?"

पहली बात तो यह है कि जो चीज धरती के साथ सम्बन्ध बनाये रखती है वह केवल प्राणिक कामना नहीं है बल्कि कोई भी विशिष्ट मानव क्रियाकलाप है और निश्चय ही स्नेह इसका एक भाग है। व्यक्ति पुनर्जन्म की अनिवार्यता के साथ, कामनाओं के साथ जितना बंधता है उतना ही अपनी संवेदनशीलता और स्नेह द्वारा भी। लेकिन हर चीज की तरह पुनर्जन्म के बारे में भी हर मामले का अपना समाधान होता है और यह निश्चित है कि पुनर्जन्म से मुक्ति की सतत अभीप्सा और उसके साथ चेतना के उत्थान और उदात्तीकरण के लिए सतत प्रयास—इन दोनों का परिणाम होना चाहिये पार्थिव जीवन की ृंखला का कट जाना, यद्यपि वह वैयक्तिक अस्तित्व का अन्त नहीं कर देता जो एक और लोक में बढ़ता चला जाता है। लेकिन यह क्यों सोचा जाये कि उसका एक और अधिक वायवीय जगत् में अस्तित्व उसकी "परवर्ती अवस्था" होगी जो मानव की तुलना में वैसी होगी जैसा मानव पशु की तुलना में है। मुझे तो यह सोचना ज्यादा युक्तिसंगत लगता है (और ज्यादा गहरा ज्ञान इस निश्चिति की पुष्टि करता है) कि परवर्ती स्थिति भी भौतिक होगी, यद्यपि हम इस भौतिक के बारे में यह सोच सकते हैं कि वह अवतरण के कारण, 'प्रकाश' और 'सत्य' के मेल के कारण आवर्धित और रूपान्तरित होगा। मानव जीवन के सभी बीते युगों और कल्पों ने इस *नयी स्थिति* के अवतरण की तैयारी की है और अब उसके साकार और ठोस रूप में चरितार्थ होने का समय आ गया है। यही श्रीअरविन्द की शिक्षा का सारतत्त्व है, उस दल का लक्ष्य है जिसे उन्होंने अपने चारों ओर इकट्ठा होने दिया है, उनके आश्रम का लक्ष्य।

तुम्हारे दूसरे प्रश्न[१] के बारे में, मैं तुम्हें श्रीअरविन्द के लेखों के कुछ

[१] "भागवत आत्मा ने मूर्त रूप लिया तो उसने पहले ही से सब कुछ देख लिया था और हर चीज के लिए इच्छा की थी, तब फिर ऐसा क्यों लगता है कि वह किसी

उद्धरण भेजने की सोच रही हूं। लेकिन जब मैंने उनसे कहा कि मैं 'लाइफ डिवाइन' के कुछ सन्दर्भों का अनुवाद करके तुम्हें भेजना चाहती हूं तो उन्होंने कहा कि अगर मैं तुम्हें समुचित रूप से पूरा उत्तर भेजना चाहूं तो मुझे कम-से-कम दो अध्यायों का अनुवाद करना होगा। मेरी परेशानी देखकर स्वयं उन्होंने निश्चय किया है कि वे इस विषय पर कुछ पृष्ठ लिख देंगे। उन्होंने अभी हाल में ये पृष्ठ[१] मुझे दिये हैं और मैंने तुरन्त उनका अनुवाद करना शुरू कर दिया है।

मुझे जिन पृष्ठों के अनुवाद करने का गौरव प्राप्त होगा, मैं उनकी ताजगी नहीं बिगाड़ना चाहती, इस बीच जब तक मैं वह तुम्हें न भेज पाऊं, मैं यूं कह सकती हूं कि मैं समस्या की अपनी बहुत सरल और संक्षिप्त-सी दृष्टि प्रस्तुत करती हूं।

इस बारे में तो कोई सन्देह ही नहीं है कि जिस संसार में हम जीते हैं वह निःशेष रूप से अपनी बाह्यतम अभिव्यक्ति में बहुत अधिक सफल नहीं है लेकिन इस बात पर भी शंका नहीं की जा सकती कि हम उसके भाग हैं और परिणामस्वरूप करने लायक युक्तियुक्त और समझदारी की बात एक ही है कि हम उसे पूर्ण करने के लिए काम में जुट जायें, अधिक-से-अधिक खराब में से भी सर्वोत्तम को निकालें और उसे अधिक-से-अधिक सम्भव अद्भुत जगत् बनायें। क्योंकि मैं यह और कह दूं कि, यह रूपान्तर सम्भव ही नहीं, निश्चित है। 'ज्ञान' की शान्ति और उसका आनन्द तुम्हारे साथ रहें।

१४ जून, १९३३

*

लक्ष्य या चेतना की खोज में है क्योंकि इसे तो वह आरम्भ में ही चरितार्थ कर सकती थी? उसने पीड़ा और अशुभ को अनुमति ही क्यों दी, जो उसके सारतत्त्व में मौजूद हैं? अगर मानव अशुभ की जिम्मेदारी मनुष्य पर ही डाली जाये तो भी पशुओं और वनस्पतियों को जो अन्याय आक्रान्त करता है उसकी जिम्मेदारी तो भागवत विधान की ही है। भागवत विधान ने सब कुछ आनन्द में ही क्यों नहीं रचा? पीड़ा हमें हमेशा पूर्णता की ओर नहीं ले जाती, इसकी जगह बहुत बार वह हमें असाध्य निराशा में डाल देती है।"

[१] श्रीअरविन्द साहित्य संग्रह के २२वें खण्ड में प्रकाशित।

पहले से और चिरकाल के लिए सखी और बहन,

अपने ९ जून के पत्र में जो अभी-अभी मिला है तुम कहती हो कि बुद्ध "कोमल व्यंग्य के साथ मुस्कुरा रहे हैं," लेकिन बुद्ध की मुस्कान केवल ज्योतिर्मय उपलब्धि से पहले की पूर्ण समझदारी की मुस्कान हो सकती है।

और इस स्थिति में जिसमें भौतिक जीवन तुम्हारे लिए अपनी बहुत कुछ ठोस वास्तविकता खो चुका है, तुम चाहे हिमालय के एकान्त में होओ या 'न' की ओर जाती हुई सड़क पर स्थित मकान की निर्जनता में, तुम्हारे लिए प्रगाढ़ बौद्ध अनुकम्पा की गहरी शान्ति में रहना समान रूप से सरल होना चाहिये।

*

हां, तो मेरा ख्याल है कि तुमसे यह कहने वाली मैं पहली हूं कि तुम मुझे औरों से इतने भिन्न नहीं लगते—मेरा मतलब है, *विशिष्ट व्यक्ति*—क्योंकि यूं तो एक तरह से हर एक अन्य सबसे भिन्न होता है, लेकिन यह वह भिन्नता नहीं है जिसकी तुम बात कर रहे हो।

और मेरा ख्याल है कि तुम्हारा अपने लोगों पर और जिनके साथ तुम रहते थे उनके मन पर तुम्हारे "भिन्न" होने का प्रभाव इस तथ्य से पड़ा क्योंकि तुम *रूढ़िविरोधी* हो। इसे साधारणतः स्वभाव और मिज़ाज में बहुत बड़ा "अन्तर" माना जाता है। यह केवल इस बात का चिह्न है कि तुम, आन्तरिक स्वाधीनता की एक हद तक पहुंच गये हो जो तुम्हें कम-से-कम आंशिक रूप में सामूहिक सुझावों और सामाजिक नियमों से *स्वाधीन बना देती है* और वह आन्तरिक स्वाधीनता विकसित चैत्य के चिह्नों में से एक है। लेकिन *अब* जो लोग धरती पर हैं उनमें विकसित चैत्य, आखिर, कोई बहुत अपवादिक चीज नहीं है।

मुझे लगता है कि तुम्हें भी औरों की तरह हमसे प्रोत्साहन का अपना हिस्सा मिला है लेकिन तुमने उसकी उपेक्षा की क्योंकि हो सकता है कि यह ठीक वैसा न था जिसकी तुम आशा या इच्छा करते थे।

निश्चय ही इससे पहले कि तुम आध्यात्मिक प्रगति कर सको एक अहंकार-केन्द्रित गर्व को तोड़ना जरूरी था लेकिन अब चीज लगभग पूरी

हो चुकी और भविष्य के लिए चिन्तित होने की जरूरत नहीं।

अभी के लिए मैं इतना ही कह सकती हूं।

मेरी सहायता, मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

२३ अक्तूबर, १९३९

*

प्रिय महोदया,

तुम्हारा पत्र मुझे अभी-अभी मिला है और मैं तुरन्त उत्तर दे रही हूं। तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर ये हैं :

तुम्हारी बहन की बीमारी की तीव्रता बहुत कम समय रही और उसे बहुत अधिक कष्ट नहीं हुआ। अन्तिम दिनों में वह कह रही थी कि वह अपने ऊपर महान् ज्योति और शक्ति का अनुभव कर रही थी, उसका अन्त बहुत शान्तिपूर्ण रहा। उसे पता न था कि वह मरने वाली है, हम भी उसे जिन्दा रखने के लिए संघर्ष कर रहे थे और उसे खतरे की संगीनता के बारे में कुछ नहीं बताया गया था। केवल एक बार उसे कुछ ऐसा लगा था कि वह शरीर छोड़ने वाली है और वह अपनी भौतिक चीजों, धन, सम्पत्ति आदि के बारे में तुम्हें वसीयत लिख भेजना चाहती थी। उसने मुझे बताया कि वह क्या लिखना चाहती थी लेकिन जब ठीक लिखने की बात आयी तो उसे बहुत कमजोरी का अनुभव होने लगा और उसने यह काम छोड़ दिया। उस समय उसे तुम्हारी बहुत चिन्ता हो रही थी और वह सोच रही थी कि तुम उसके बिना क्या करोगी—इससे पहले कई बार उसने यह इच्छा प्रकट की थी कि तुम यहां आकर उसके साथ रहो। कई बार उसने यह निवेदन किया कि मेरी शक्ति और सुरक्षा तुम्हारे साथ रहें और मैंने उसे यह वचन दिया कि जब कभी तुम उनकी चाह करोगी ये तुम्हारे साथ होंगी।

हम बड़ी खुशी से उसकी कब्र का पत्थर अपने ही खर्च से बनवा लेते परन्तु मैं इसके बारे में तुम्हारी भावना समझती हूं और यह काम तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही होगा। उसके नक्शे के लिए मैं अपने यहां के वास्तुकार पर निर्भर थी। उसकी तुम्हारी बहन के साथ बहुत दोस्ती थी और तुम्हारी बहन उसके काम को बहुत पसन्द करती थीं। लेकिन उसे भारत की सेना से बुलावा आया है और अब वह कहीं बहुत दूर है और इतना व्यस्त है

कि उसके पास नक्शा बनाने के लिए समय नहीं है। समय बचाने के लिए मैंने यह सोचा कि तुम खुद ही उसके लिए डिज़ाइन की व्यवस्था कर लो और उसे बनवाने के लिए मेरे पास भेज दो। हां, वह बहुत ज्यादा सीधी-सादी होनी चाहिये वरना उसे यहां बनवाना कठिन होगा। मैं इतना कह दूं कि उसे अपनी कब्र के पत्थर पर सलीब बनवाना पसन्द न आता। मेरा प्रस्ताव है कि उस पर एक अभिलेख हो (फ्रेंच में हो क्योंकि यह एक फ्रेंच कब्रिस्तान है)।

('क' के भौतिक अवशेष यहां दफनाये गये हैं)

(जन्म की तारीख—मृत्यु की तारीख)

हम स्मारक-शिला, जहां तक हो सके, उसकी वार्षिकी के आस-पास खड़ी करना चाहते हैं अतः मुझे डिज़ाइन की जल्द से जल्द जरूरत है। उस जमीन का माप संलग्न है, स्मारक जमीन से छोटा होना चाहिये।

भवदीया

१९५४

*

(दो सरकारी उच्च पदाधिकारियों को लिखे गये पत्रों के बारे में)

मैंने "क" को लिखा गया तुम्हारा पत्र पढ़ लिया है। मुझे खेद है कि मुझे "ख" को लिखे गये पत्र को पढ़ने का अवसर नहीं मिला।

तुम यह पत्र मुझे दिखलाये बिना ही भेजना चाहते थे, इस तथ्य से ही तुम्हें सावधान हो जाना चाहिये था कि तुम जिस आवेश का आज्ञा-पालन कर रहे थे उसकी प्रेरणा कहां से है। स्पष्ट है कि वह भागवत प्रेरणा नहीं हो सकती।

यह तो हुआ, अब मुझे कहना है कि पत्र में अपने-आपमें मूलतः कोई गलत चीज नहीं है। तुम जो कहते हो वह ठीक है लेकिन निश्चय ही यह उस व्यक्ति के लिए नहीं है जिसे तुम यह भेजना चाहते थे, न ही यह किसी और ऐसे ही व्यक्ति के लिए, यानी, किसी प्रमुख राजनैतिक पदवाले व्यक्ति के लिए है। राजनेता केवल अपने ही ज्ञान और अपनी ही शक्ति पर विश्वास करते हैं और फिर उनके पास ऐसे लोगों के सैकड़ों पत्र आते हैं

जो यह सोचते हैं कि उन्हें संसार की अवस्था का समाधान मिल गया है और सामान्यतः इन राजनैतिक नेताओं में विवेक-शक्ति नहीं होती। वे क्या सत्य है और क्या मिथ्या इसमें पहचान नहीं कर सकते और समझते हैं कि ऐसे पत्र धार्मिक कट्टरपंथियों (पागलों) के गरम दिमाग की उपज होते हैं। हम नहीं चाहेंगे कि हमें उनके साथ मिलाया जाये, अतः सम्भ्रान्त मौन ही ज्यादा अच्छा है।

बहरहाल, निन्नानवे प्रतिशत से अधिक सम्भावना तो यही है कि यह पत्र गंतव्य स्थान तक कभी पहुंचेगा ही नहीं और किन्हीं अवाञ्छनीय हाथों में पड़ जा सकता है।

११ जून, १९५४

*

निश्चय ही उचित चीज का करना क्रूरता या स्वार्थपरता नहीं है। जो चीज क्रूर और स्वार्थपूर्ण है वह है अन्धे होकर अपनी कमजोरी के पीछे चलते जाना और इस तरह किसी दूसरे को भी अपने साथ ऐसे गढ़े में घसीट ले जाना जिसमें से बाहर निकल आना हमेशा कठिन होता है और यह कभी अपना बहुत-सा समय और शक्ति नष्ट किये बिना नहीं होता– चाहे इससे कहीं अधिक ज्यादा और कहीं अधिक खराब न भी हो। अतः चिन्ता न करो। अब गम्भीरता के साथ अपने जीवन का अर्थ और लक्ष्य जानने की कोशिश करो और उसे पूरी तरह, सचाई के साथ पूरा करने के लिए अपने-आपको तैयार करो।

*

चिन्ता न करो। यह गुज़र जायेगा।

प्राण के आत्म-सम्मान के चेहरे पर एक अच्छी चपत लगी है, वह रूठ गया है और उसने हड़ताल कर दी है। जब वह यह समझना शुरू करेगा कि यह मूर्खता है और इसका परिणाम कुछ नहीं होता तो वह फिर से समझदार हो जायेगा और फिर से चैत्य की समझदारी भरी सलाह मानेगा जो उसे स्थिर-शान्त रहने के लिए और अपना काम अच्छी तरह करने के लिए कहती है। वह कहती है कि कोई भी सच्चे मूल्य की वस्तु

गुम नहीं हुई है, अपरिवर्तनीय सच्चा प्रेम हमेशा रहता है, केवल वही गतिविधियां नष्ट की गयी हैं जो 'भागवत कार्य' के साथ मेल नहीं खाती थीं।

तुम्हें ऐकान्तिक रूप से भगवान् के कार्य से सम्बन्ध रखना चाहिये क्योंकि केवल वही हमारे जीवन में सच्चा सुख दे सकता है।

*

जो हुआ है लगभग वैसी ही आशा थी। हर एक अपने जीवन में अपनी निजी प्रकृति के अनुसार कार्य करता है और जो अपनी श्रद्धा में स्थिर नहीं हैं वे अपने प्रेम में भी स्थिर नहीं हो सकते।

निश्चय ही मैं तुमसे नाराज नहीं हूं और जब कभी तुम चाहो, मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है। रही बात कुछ गलत चीज करने की तो सभी मनुष्य गलतियां करते हैं जब तक वे इस अज्ञान के जगत् में रहते हैं, क्योंकि अगर वे ठीक करना भी चाहें तो जब तक उनकी चेतना का रूपान्तर न हो जाये, तब तक उन्हें यह पता नहीं होता कि ठीक है क्या। और रूपान्तर के लिए जिस पहली चीज की जरूरत है वह है सचाई, निष्कपटता, केवल सच बोलना ही नहीं (यह कहने की जरूरत नहीं कि यह एक प्रारम्भिक अनिवार्य शर्त है) बल्कि हमेशा अपने और भगवान् के प्रति सच्चा होना।

*

सारी चीज इतने सशक्त रूप से प्रतीकात्मक है और इतने स्पष्ट रूप से यह प्रकट करती है कि किसी अक्खड़ और अज्ञानी मानव मन के नेतृत्व में रहना कितना भयंकर हो सकता है जो केवल अपनी ही शक्ति पर निर्भर रहता हो और भागवत कृपा की सहायता को अस्वीकार करता हो।

मुझे विस्तृत व्याख्या में जाने की जरूरत नहीं क्योंकि इस संकेत से तुम आसानी से सारी चीज समझ सकते हो। क्या तुम्हें याद है कि मैं कुछ आग्रह के साथ तुमसे पूछ रही थी कि मोटर *कौन* चला रहा था और जब तुमने कहा कि तुम्हारा ड्राइवर चला रहा था तो मुझे राहत का अनुभव हुआ। लेकिन स्टीयरिंग व्हील तुम्हारे ड्राइवर के हाथ में *नहीं* था और इस

परिवर्तन के कारण उस बेचारे को भोगना पड़ा।

जो चीज सारे मामले को इतना अधिक असाधारण बना रही है वह है "क" के साथ मेरी बातचीत। मैंने उससे पूछा कि क्या तुम्हें योग में दिलचस्पी है। उसने कहा दार्शनिक ऊहापोह के रूप में मुझे दिलचस्पी है लेकिन व्यवहार में लाने में नहीं। जब मैंने कहा कि यह दिलचस्पी बाद में आ सकती है तो उसने कहा, "जी नहीं, मैं नास्तिक हूं, मैं भगवान् को नहीं मानता।" मैंने मुस्कुराते हुए पूछा, "तो फिर तुम *अपने* विश्व की व्यवस्था कैसे करते हो?" तब वह व्यंग्य समझ गया और उसने उत्तर दिया, "मेरी वैज्ञानिक वृत्ति है, मैं किसी चीज का खण्डन नहीं करता पर मैं किसी चीज पर विश्वास भी नहीं करता।" मैंने 'ख' के लिए खतरे का अनुभव किया और कुछ जोर देकर कहा, "लेकिन मैं आशा करती हूं कि तुम औरों के विश्वासों में दखल भी नहीं दोगे, तुम 'ख' को जैसा वह सोचे और अनुभव करे वैसा मानने की छूट दोगे।" "निश्चय ही" उसका उत्तर था, लेकिन मैंने उस पर विश्वास नहीं किया।

'ख' से कहो कि उसका मन और मनोभाव बदलने के लिए उस पर कितना भी दबाव क्यों न पड़े, वह अपनी श्रद्धा अटूट बनाये रखे। उसे कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ सकता है लेकिन उसे कभी विश्वास के साथ भागवत कृपा को पुकारना न भूलना चाहिये और भागवत सुरक्षा और सहायता निश्चय ही उसके साथ होंगी।

रही तुम्हारी बात तो, 'ख' के लिए चिन्ता या भय की बात न सोचो। उसकी कठिनाइयां—और जीवन कभी उनसे खाली नहीं होता—अधिक बाहरी प्रकार की होंगी, ऐसी सम्भावना नहीं है और दूसरी तरह की कठिनाइयों का वह श्रद्धा के साथ सामना कर सकती है और उन पर विजय पा सकती है।

*

अपनी मां से कहो कि वह अपने हृदय के अन्दर गहराई में पैठे, वह अनुभव करेगी कि भागवत कृपा उसके साथ है। मैं उसे अपने आशीर्वाद सहित एक कार्ड भेज रही हूं। उस पर जो लिखा है, तुम उसका अनुवाद उसे सुना दो। उसे यह भी बतला दो कि दुर्घटना के समय तुम्हारे पिता की

चेतना अपने शरीर को छोड़ गयी थी। इसी कारण वह हिला-डुला या बोला नहीं। इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है और इसके लिए विशेष रूप से दु:खी होने का कोई कारण नहीं है।

*

मैंने इसलिए उत्तर नहीं दिया कि उसका मन अपनी कामनाओं के कारण इतना अधिक अस्तव्यस्त था कि मैं जो कुछ लिखती उसे वह न समझ पाती। तब से मैंने उसके मन और प्राण को जरा अधिक खोलने और उन्हें ग्रहणशील बनाने के लिए उन पर काम करने का प्रयास किया है जिससे वह यह समझ सके कि बच्चों के लिए प्रेम और सृष्टि में वे भविष्य के लिए जिस बढ़ती हुई आशा का प्रतिनिधित्व करते हैं उसका यह अर्थ नहीं है कि हर एक के और सभी के बच्चे होने चाहियें। हर एक के लिए, स्त्री हो या पुरुष, मैं वही बताती हूं जो उसके लिए उसकी प्रकृति और आध्यात्मिक आवश्यकता के अनुसार अच्छे-से-अच्छा हो। लेकिन निश्चय ही यह हमेशा कामनाओं के अनुसार नहीं होता।

अक्तूबर, १९६०

*

'ग' बहुत ही सुसंस्कृत लड़की है, बहुत ही अधिक संवेदनशील है। उसे बहुत जल्दी चोट पहुंचती है। उसे कभी न डांटो, उसके साथ कठोरता से न बोलो या उसे कुछ भी करने के लिए बाधित न करो। मुझे वह बहुत अच्छी लगी। लेकिन वह इतनी भयभीत लग रही थी—मुझे पता नहीं उसे मेरे बारे में किसने क्या कहा होगा जो उसे ऐसा लग रहा था। उससे कह दो कि मुझे वह बहुत अच्छी लगी। वह बहुत सुसंस्कृत है लेकिन किसी कारण वह एकदम बन्द रहती है। उसे पूरी तरह मुक्त अनुभव करने दो, उसके चारों तरफ कोई घेरा न डालो। वह यहां पूरी तरह से विश्रांत और मुक्त अनुभव करे, और उससे कह दो कि वह अपने-आपको ढीला छोड़ दे और यह अनुभव करे मानों वह हमेशा सूर्य के प्रकाश में है।

१६ सितम्बर, १९६८

फटकार

यह हमेशा की वही पुरानी कहानी है; "शोरबे के बदले अपने जन्माधिकार को बेचना" (मैं 'जन्माधिकार' का अर्थ समझती हूं भागवत सिद्धि तक सर्वप्रथम पहुंचने की सम्भावना या योग्यता)।

४ मई, १९३२

*

वह अशुभ जिसे भगवान् ने भुला दिया है उसे हर एक को भूल जाना चाहिये।

१८ दिसम्बर, १९३३

*

किस अधिकार से तुम चाहते हो कि तुम्हारी इच्छा औरों को प्रभावित करे? हर एक को स्वतन्त्र होना चाहिये। केवल गुरु को ही अपनी इच्छा उस शिष्य पर आरोपित करने का अधिकार है जिसने उन्हें चुन लिया हो।

२१ मार्च, १९३४

*

वास्तविक आवश्यकता के साथ-साथ सच्चा समाधान आता है।

२ जुलाई, १९३६

*

हमें उस सबसे बचने की सावधानी हमेशा रखनी चाहिये जो हमारे अन्दर दिखावे के भाव को प्रोत्साहित करता हो।

*

लोग जितने अधिक महत्त्वहीन होते हैं उतनी ही अधिक गम्भीरता से अपने-आपको लेते हैं।

१५ दिसम्बर, १९४४

*

उपाधियां मनुष्य को कोई मूल्य नहीं प्रदान करतीं, जब तक कि वे भगवान् की सेवा में न प्राप्त की गयी हों।

*

किसी भी उक्ति को उसकी अपनी गरिमा से जांचना चाहिये, न कि उस हस्ताक्षर की महानता से जिसके साथ वह टंकी हो।

*

कोई उक्ति तभी अच्छी होती है जब वह किसी हस्ताक्षर के बिना भी अच्छी हो।

*

बहुत अधिक बोलने से व्यक्ति बुद्धिमान् नहीं बनता; व्यक्ति तभी बुद्धिमान् कहा जाता है जब वह क्षमाशील हो, भय या शत्रु से रहित।

*

जो तुमसे पवित्र वचन सुनने की आशा करते हैं उनके साथ पवित्र वचन बोलने से ज्यादा आसान कुछ नहीं है लेकिन ऐसे लोगों को पाना ज्यादा मुश्किल है जो पवित्र वचन सुनना चाहते हों।

*

मैंने श्रीअरविन्द के शिष्यों को यह बताने की आवश्यकता नहीं समझी कि आश्रम, पहली अप्रैल को लोगों को बुद्धू बनाने की मूर्खतापूर्ण आदत का अनुकरण करने का स्थान नहीं है।

लेकिन अब मैं देखती हूं कि कुछ आश्रमवासियों ने ये मूर्खताएं करने के लिए मेरी इस चुप्पी का फायदा उठाया, और मुझे इसके लिए खेद है।

१ अप्रैल, १९४५

*

चीजों को छिपाने की कोशिश मत करो; तुम जो कुछ छिपाना चाहते

हो वह और भी अधिक प्रत्यक्ष बन जाता है।

१९ अप्रैल, १९५२

*

केवल उन्हें ही अपने हस्ताक्षर किसी को देने चाहियें जो लिखित शब्द के साथ-साथ भागवत शक्ति और चेतना का संचार कर सकते हों।

१० अप्रैल, १९५४

*

आओ, हम यह आशा करें कि आन्तरिक सिद्धि बाहरी सिद्धि के बराबर सिद्ध होगी।

२६ अप्रैल, १९५४

*

ज्यादा अच्छा है कि मनुष्य पर भरोसा न रखो।

जुलाई, १९५९

*

निष्ठावान् होना मनुष्य के स्वभाव में नहीं है।

*

माताजी, भगवान् ने इतने सारे मनुष्यों की रचना क्यों की?

एक अच्छा मनुष्य पाने की आशा में।

*

और फिर भी भगवान् हर जगह हैं, बुद्धिमान् में भी और अज्ञानी में भी।

*

धरती पर मनुष्य की उत्पत्ति के साथ सबसे पहले आयी आग को वश

में करने की सामर्थ्य। पार्थिव जीवों में मनुष्य पहला था जिसने अंगीठी में ऊष्माभरी आग सुलगायी, जिसने अंधेरे में प्रभा फैलाते प्रकाश को चमकाया। अग्नि पर प्रभुत्व पशु से मनुष्य की श्रेष्ठता का स्पष्ट चिह्न है।

*

केवल एक ही चीज, मनुष्य का विशेषाधिकार अगर वह सचमुच मनुष्य है: नैतिक और शारीरिक स्वच्छता।

*

तुम तब तक आध्यात्मिक प्रगति की आशा कैसे कर सकते हो जब तक तुम ऐसी सौदेबाजी और हिसाब-किताब से बद्ध रहोगे?

१७ दिसम्बर, १९५९

*

मैं केवल एक ही क्षमायाचना को स्वीकार कर सकती हूं; वह यह है: "मैं यह दुबारा कभी न करूंगा", और अपना वचन निभाओ। बाकी सब दिखावा है।

७ अप्रैल, १९६३

*

एक चीज *न करना* बहुत आसान है। तुम्हें अब शहर के सिनेमा हॉल में कभी नहीं जाना चाहिये, कभी नहीं, और दोष मिटा दिया जायेगा। हृदय पार्थिव मानवीय जगत् का है; अन्तरात्मा वैश्व आध्यात्मिक जगत् की है।

आशीर्वाद।

७ मार्च, १९६५

*

किसी लड़की को उसे पसन्द होते हुए भी चूमना काफी भद्दी और अशोभनीय चीज है लेकिन किसी लड़की को उसे पसन्द न होने पर भी चूमना गंवारू और मूर्खताभरी हरकत है।

*

कम-से-कम एक लाख अमरीकियों ने L.S.D. और मेस्केलीन द्वारा अनुभूतियां प्राप्त की हैं–ऐसी अनुभूतियां जिन्हें साइकेडेलिक कहा जाता है, जिसका अर्थ है "चेतना का विस्तार"। ये स्वापक अमेरिका में वैध ठहराये जा सकें इसके लिए राष्ट्रव्यापी आन्दोलन चल रहा है। यहां साइकेडेलिक मैगजीन की एक प्रति प्रस्तुत है (१९६६, नं.७)। इसमें एक ऐसा लेख है, जिसमें मेस्केलीन द्वारा उच्च यौगिक अवस्था प्राप्त करने का दावा किया गया है।

पत्रिका में चिह्नित हिस्सा मैंने पढ़ लिया है। एक बात निश्चित है–ये अनुभूतियां आध्यात्मिक नहीं हैं और इन्हें यह नाम देना वास्तविक आध्यत्मिक अनुभूति के बारे में पूर्ण अज्ञान का प्रमाण है।

स्वापक का प्रभाव या तो प्राण में निरर्थक भटकना होगा या सत्ता के अवचेतन भाग में सोये हुए किसी अवचेतन संकेत का जागना होगा।

ऐसे निरर्थक विषय पर और कुछ कहने के लिए समय नहीं है।

१९६८

*

सुख को ढूंढ़ना कष्ट को बुलाना है क्योंकि ये एक ही चीज के चित और पट हैं।

*

वह सब जो व्यक्ति की चेतना को सत्ता के सबसे अधिक जड़-भौतिक स्तरों में ही बनाये रखने में सहायक होगा, एक अपराध होगा।

*

पारितोषिक वस्तुतः जीवन के निम्न स्तर की चीजें हैं—लेकिन अगर हम अब भी वहीं हैं...

*

(मोटरकार के चुनाव के बारे में)

क्या तुम थके बिना और रास्ते में अधिक समय लगाये बिना जाना चाहते हो, या तुम ठाठबाटवाले और बड़े आदमी जैसे दीखना चाहते हो?

*

चीजों से कतराना भी कामना के जितना ही खराब है—अत: पंखा ले लो और भगवान् की इच्छा को पूरा होने दो, क्योंकि अन्तत: उनकी इच्छा ही सफल होती है!

*

भागवत इच्छा जानने के लिए तुम्हें पसन्दों और कामनाओं से रहित होना चाहिये।

*

सतही प्रतिक्रियाएं वाञ्छनीय नहीं होतीं।

*

ऐसी कम्पनी जिसका कोई नाम नहीं, कोई व्यापार नहीं, कोई पैसा नहीं, वह कम्पनी नहीं, *धोखेबाजी* है।

*

ईमानदारी से व्यापार करना अधिकाधिक जोखिम भरा होता जा रहा है।

धोखा न देने के साथ-साथ धोखा न खाने का भी संकल्प।

*

(एक महिला के बारे में जो श्रीअरविन्द की उत्तराधिकारिणी होने का दावा करती थी)

यह सब एकदम-से हमेशा के लिए बन्द होना चाहिये। यह एकदम *जालसाजी*

है और जो लोग जालसाजी करते हैं उन्हें जेल जाना चाहिये[१] या कम-से-कम उन्हें मिथ्यात्व को फैलाने और सीधे-साधे लोगों को छलने नहीं देना चाहिये। उसकी पहली सभी भविष्यवाणियां असफल रहीं। ये सब भी उसी तरह असफल होंगी और जो उसकी बात पर विश्वास करते हैं वे केवल बुद्धू बन रहे हैं।

*

(एक साधक के बारे में जो आश्रम में आने से पहले संन्यासी रह चुका था। अपने किसी ध्यान में उसने अपने चारों तरफ सांप ही सांप देखे।)

जरूर उसके अन्दर संन्यासी के गेरुआ वस्त्र त्यागने के परिणामों के बारे में एक भय (शायद अवचेतन) होगा और यह भय सांपों के आक्रमण आदि में अनूदित हो जाता है। तुम उसे कह सकते हो कि डरे नहीं और यह भी कि मुझे सूचना मिल गयी है और उसे कोई कष्ट नहीं पहुंचायेगा।

वह इस विश्वास के साथ फिर से ध्यान करने की कोशिश करे कि उसकी रक्षा की जा रही है—लेकिन यह कोशिश पहले उसे औरों के साथ नहीं करनी चाहिये। अगर उसका ध्यान शान्ति से हो जाये तो वह फिर से औरों के साथ ध्यान कर सकता है।

*

उसने मेज पर मेरे सामने कागज का एक पुर्जा खिसकाया जिसे देखकर लगता था कि किसी कापी से फाड़ा गया होगा, उसमें कोई पत्र शीर्षक न था या वह कोई सरकारी कागज नहीं था, उस पर उसने भद्दे लेख में यह लिखा था कि अगर आवश्यकता होगी तो मैं अतिरिक्त टिकटों के लिए पैसा देने का वादा करता हूं।

मुझे वह उस गरीब यात्री की तरह लगा जिसे जंगल के किसी कोने

[१] यहीं पर माताजी ने हाशिये में "मज़ाक" शब्द लिख दिया—यह बतलाने के लिए कि वे यह नहीं चाहती थीं कि आश्रम अदालत में जाये।

में डाकुओं के दल ने घेर लिया हो और हाथ में पिस्तौल लिये, उसे छोड़ने से पहले जेबें खाली करने के लिए कह रहे हों। मैं क्षण भर के लिए हिचकिचायी लेकिन मैं खिलाड़ी हूं और मैंने यह सोचते हुए हस्ताक्षर कर दिये, "देखेंगे, वे कितनी दूर तक जाने का साहस रखते हैं।"

इस जगत् में निःस्वार्थ होने के लिए तुम्हें बहुत मूल्य चुकाना पड़ता है!

*

(एक बहुत धनी व्यक्ति आश्रम में आया। जाते समय उसने यह बहाना बनाते हुए कि अभी उसके हाथ में पर्याप्त धन नहीं है, नाम-मात्र की भेंट की। लेकिन घर लौटते समय यात्रा के दौरान गुण्डों ने उसे पकड़ लिया और उसकी जान खतरे में पड़ गयी; छूटने के लिए उसने तुरन्त ५००० रु. दे दिये। जब यह घटना माताजी को सुनायी गयी, तो उन्होंने लिखा :)

यह-की-यही कहानी, जरा-से हेर-फेर के साथ, कितनी, कितनी बार सुनायी जा सकती है!

और भागवत कृपा की कार्य-क्षमता की कहानियों के बारे में क्या कहोगे?

शायद वे संख्या में कम हों, लेकिन कितना अधिक आश्वासन देने वाली होती हैं!

*

जब तुम भगवान् के लिए सब कुछ बलिदान करने की बात करते हो तो इसका यह अर्थ होता है कि तुम उन चीजों से बहुत आसक्त हो, उन चीजों का तुम्हारे लिए बहुत मूल्य है, फिर भी तुम भगवान् के लिए उन्हें छोड़ने को तैयार हो।

असल में तो तुम्हें भगवान् के सिवाय और किसी वस्तु से या व्यक्ति से आसक्त न होना चाहिये, और उनके अलावा तुम्हारे लिए किसी भी चीज का कोई मूल्य नहीं होना चाहिये। और ऐसी स्थिति में तुम भगवान्

के लिए बलिदान करने की बात नहीं कर सकते।†

*

हर चीज संक्रामक है। हर अच्छी चीज और हर बुरी चीज के अपने स्पन्दन होते हैं। अगर तुम उन स्पन्दनों को पकड़ लो तो, तुम उस चीज को पा लेते हो। सच्चा योगी इन स्पन्दनों को जानता है और उनका उपयोग कर सकता है; इसी तरह यह तुम्हें शान्ति इत्यादि दे सकता है। यहां तक कि तथाकथित दुर्घटनाएं भी संक्रामक होती हैं। तुम दूसरों का दुःख पकड़ लेते हो और उसी तरह दुःखी हो सकते हो।†

*

सौन्दर्यबोध के दृष्टिकोण से मैं कह सकती हूं कि गेहुआं रंग सफेद से ज्यादा अच्छा होता है, लेकिन यह सोचना एकदम असंगत और मूर्खतापूर्ण है कि कोई केवल अपने रंग के कारण अधिक अच्छा या बुरा है। अफ्रीका का नीग्रो यह मानता है कि उसका रंग सबसे अधिक सुन्दर है। जापानी सोचता है कि उसका रंग किसी भी दूसरे से बेहतर है। रंग को लेकर ऐसी धारणा बहुत ही निम्न कोटि की चीज है। यह चेतना के बहुत ही निम्न स्तर का संकेत देती है—ऐसी चेतना का जो निश्चेतना से अभी-अभी उठ रही हो। यह कोई विचार नहीं, कोई संवेदना नहीं, बल्कि उससे भी निम्नतर कोई चीज है। जब तुम रंग के पूर्वाग्रह की सीमा में सोचते हो तो तुम्हारा अपना चैत्य तुम्हारी मूर्खता पर हंसता है; वह जानता है कि वह सफेद, गेहुएं, पीले, लाल, काले और सभी तरह के शरीर में रह चुका है। जब तुम्हारे अन्दर इस तरह का पक्षपात जागे, तो उसे अपनी चेतना के सामने ले आओ और वह गायब हो जायेगा।†

*

कुछ लोग हैं जो अपने पैरों पर खड़े रह सकते हैं। वे कोई चीज इसलिए करते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि उसे करना अच्छा है। वे अपने आपको निर्बाध रूप से गुरु को अर्पित कर देते हैं और उनके बताये मार्ग पर चलते हैं। लेकिन हर समय यह एक निर्बाध क्रिया होती है। कुछ और

हैं जो दास होते हैं। वे जो कुछ करते हैं उसके लिए कोई सामाजिक या शासकीय मान्यता चाहते हैं। उनके अन्दर आत्मविश्वास केवल तभी हो सकता है जब कोई सत्ताधारी उन्हें मान्यता दे। यह दास-मनोवृत्ति है।†

व्यावहारिक बातें

सामान्य

किसी भी बहाने साइकिलें बाहर धूप में नहीं छोड़ी जानी चाहियें।

२७ फरवरी, १९३३

*

फ्रेंच के बारे में चिन्ता न करो; तुम थोड़ी-थोड़ी करके सीख जाओगे।

*

हाइड्रोजन पैरोक्साइड महंगा है। मैं यह जानना चाहूंगा कि क्या मैं नुस्खे में इसे लिख सकता हूं?

तुम अभी के लिए दे सकते हो और बाद में जब 'क' ज्यादा अच्छा हो जाये तो पैरोक्साइड के स्थान पर पोटैशियम क्लोरेट का उपयोग करो।

३१ मार्च, १९३५

*

सुब्बू हाउस में लगे पेड़ हमारे नहीं बल्कि *मकान मालिक* के हैं और उन्हें *मकान मालिक की* अनुमति के बिना नहीं काटा जा सकता।

इससे भिन्न कुछ और करने से हम बहुत मुश्किल में पड़ सकते हैं।

१९३७

*

चूंकि तुम चिमटियों (ट्वीजर्स) का ऑर्डर दे रहे हो, इसलिए ज्यादा अच्छा होगा कि एक ही साथ दूसरी चीजों का भी ऑर्डर दे दो जिनकी तुम्हें जरूरत हो। उनकी अचानक आवश्यकता पड़ सकती है और तब ऑर्डर देने का समय नहीं होता। इस तरह थोड़ा-थोड़ा करके खरीद लेने से, एक दिन हमारे पास समुचित सामान जुट जायेगा।

आशीर्वाद।

६ जुलाई, १९३८

*

मैं तुम्हारे सितार सीखने की बहुत आवश्यकता नहीं देखती—लेकिन अगर तुम्हें मजा आता है तो तुम जारी रख सकते हो।

मेरे आशीर्वाद सहित।

२८ मार्च, १९४०

*

माताजी,

मैंने जो घर अपने लोगों के लिए लिया है वह किसी यक्ष्मा के रोगी का था। इस बात का मुझे तब पता चला जब मैं घर के लिए पैसा दे चुका था। लेकिन फिर हमने सारे घर को धुलवाया और कुछ कमरों में गन्धक जलाया। इस विचार ने मुझे परेशान नहीं किया कि यक्ष्मा का कोई मरीज यहां रह चुका है, क्योंकि वह करीब ६ महीने पहले चला गया था।

फिर भी वातावरण में संक्रमण का भय फेंका जा चुका है, अतः मैं आपसे उन सबकी सुरक्षा के लिए प्रार्थना करता हूं जो वहां रहेंगे।

चूंकि घर को अच्छी तरह साफ और रोगाणुमुक्त किया जा चुका है, इसलिए किसी तरह का कोई खतरा नहीं है। उन लोगों को डरना नहीं चाहिये।

मेरे आशीर्वाद।

१९ फरवरी, १९४०

*

अगर आज रात को दर्द न चला जाये, तो कल आराम करना ज्यादा अच्छा होगा।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२७ जुलाई, १९३९

*

फरिश्ते कौन हैं? विश्व में उनका क्या कार्य है? हम उनके साथ

किस तरह सम्बन्ध जोड़ सकते हैं? क्या ऐसी किताबें प्राप्य हैं जो बता सकें कि आरम्भ कैसे करें? कृपया मुझे इन चीजों के बारे में कुछ बताइये।

संक्षेप में तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देना असम्भव है।

मैं ऐसी कोई किताब नहीं जानती जो इस विषय पर कोई मूल्यवान् जानकारी दे।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२ जून, १९४०

*

(दलाई लामा के पुनर्जन्म और उसकी खोज की कहानी के बारे में)

एक समय मैं उनकी कहानी जानती थी, लेकिन अब मैं भूल चुकी हूं, अतः मैं इस बारे में एक सामान्य वक्तव्य के सिवाय और कुछ नहीं कह सकती कि मनुष्य ऐसी किसी चीज की कल्पना नहीं कर सकता जो कम-से-कम एक बार भी न घटी हो; अतः वक्तव्य के पीछे हमेशा कोई सत्य होता है। भूल है उसे व्यापक बनाकर एक नियम गढ़ लेना।

*

माताजी,

मेरे माता-पिता प्रायः मुझसे जेबखर्च के लिए कुछ रुपये रखने के लिए कहते हैं, लेकिन मैं इसलिए मना करता आया हूं कि मैं यह नहीं चाहता कि वे यह अनुभव करें कि मुझे यहां किसी चीज का अभाव है। आपके ख्याल से छोटे-मोटे खर्चों के लिए कुछ रुपये रखना मेरे लिए वाञ्छनीय है?

तुम जेबखर्च के रूप में कुछ रुपये रख सकते हो।

मेरा प्रेम और आशीर्वाद।

२५ सितम्बर, १९४०

*

जब तुम किसी से "*बोंजूर*" (फ्रेंच शब्द जिसका अर्थ है सुप्रभातम्) कहते हो, तो तुम उसके लिए *अच्छे दिन की* शुभाकांक्षा प्रकट करते हो। अगर तुम यह सचेतन रूप से, तुम जो कह रहे हो उसके बारे में सोच कर करो, तो "*बोंजूर*" शब्द में महान् शक्ति आ जाती है और वह दिन को अच्छा दिन बनाने में सहायता करती है।

७ अक्तूबर, १९५१

*

(किसी ने माताजी को किसी परिचित व्यक्ति के बारे में लिखा। अन्त में लिखा :)

१९५७ में जब मैं भारत आया तो मैंने स्पष्ट स्वप्न देखा कि यह आदमी मुझे ५०,००० डालर देगा—जो "क" के मकान का दाम है (जैसा कि मैं अब जानता हूं) क्या आप इसमें कोई मजेदार चीज देखती हैं? आपके सम्पर्क करने के लिए मैंने एक स्पष्ट मानसिक चित्र देने का प्रयत्न किया है।

तुम इसके बारे में उसे लिख सकते हो और परिणाम के लिए, जो निश्चय ही परम प्रभु के हाथों में है, अचञ्चल श्रद्धा के साथ प्रतीक्षा करो।

प्रेम और आशीर्वाद सहित।

१४ अप्रैल, १९६३

*

माताजी,

मुझसे कहा गया है कि स्टूडियो की उत्तरी और दक्षिणी दीवारों पर केवल सादा कांच लगाया जायेगा। अगर ऐसा हुआ तो खेद का विषय होगा। ये दोनों हिस्से पूरी तरह से कांच से ढके हैं और जैसे-जैसे सूरज उत्तर में जाता है, उत्तर-पूर्व से तेज रोशनी अन्दर आती है। जब सूर्य दक्षिण में जाता है तब भी यही होता है। कांच इतने ऊंचे हैं कि उस ऊंचाई पर पर्दे भी नहीं लगाये जा सकते।

सादे कांच को घिसे हुए कांच (ग्राउंड ग्लास) में बदलना कोई

मुश्किल काम नहीं है। केवल और एक दो महीने की बात है। कांच जुटाने में १८ महीने लगे हैं, और दो महीनों में कोई फर्क नहीं पड़ना चाहिये।

मुझे विश्वास है कि अगर तुम सब जगह तुषारित कांच (फ्रॉस्टेड ग्लास) लगाओगे तो कमरे में इतना अंधेरा हो जायेगा कि वहां काम करना असम्भव होगा।

इसीलिए मैंने "क" को इस विषय में उत्तर नहीं दिया था।

लेकिन अब मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से बता सकती हूं कि मैं क्या देखती हूं। बहरहाल, अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण होगा कि कांच पर हल्का स्प्रे किया जाये ताकि, अगर बहुत अंधेरा लगे तो स्प्रे निकाला जा सके।

आशीर्वाद।

७ अगस्त, १९६३

*

मधुर मां,

'क' के घर के नये किरायेदारों ने नीचे के सभी दरवाजों पर ताला लगा दिया है जिससे मैं अब स्नानागार आदि का उपयोग नहीं कर सकता। चूंकि मेरे कमरे के लिए स्नानागार आदि नहीं हैं, मैं क्या करूं?

शुरू से ही मैंने तुम्हारे व्यक्तिगत उपयोग के लिए, तुम्हारे दूसरे कमरे में एक कमोड और जिंक टब रखने के लिए कहा था ताकि तुम औरों से एकदम स्वतन्त्र रहो। मुझे मालूम है कि पानी की व्यवस्था हो गयी है। यह कैसी बात है कि कमोड और टब वहां नहीं लगाये गये?

नीचे की व्यवस्था नीचे रहने वालों के लिए है, और वहां रहने वालों को उसे बन्द करने का पूरा अधिकार है।

आशीर्वाद।

२३ अगस्त, १९६३

*

जो स्थान तुम्हारे लिए रखे गये हैं उनमें से किसी एक में मैं तुम्हें केवल कुछ समय के लिए जाने के लिए कह रही हूं।

तुम्हारा इन्कार मुझे मुश्किल में डाल देगा क्योंकि मैं वचन दे चुकी हूं।

आशीर्वाद।

*

ये कलकत्ते से आये हुए कुछ छापे के प्रूफ हैं। ये सारे बहुत अच्छे नहीं हैं। मैं कुछ संशोधन करने के लिए कह रहा हूं।

ये प्रूफ *अच्छे नहीं* हैं। तुम उनसे और क्यों करवाना चाहते हो? वे तो बस काम को खराब कर रहे हैं और यह समय और धन दोनों का बहुत बड़ा अपव्यय है। प्रायः ये सभी चित्र, जैसे वे हैं, अनुपयोगी हैं और इन्हें दुबारा करना होगा।

मैं उन्हें और काम देने के बारे में सहमत नहीं हो सकती।

आशीर्वाद।

१२ जनवरी, १९६६

*

माताजी,

क्या हमें अपनी कृषि-योजना रासेन्द्रन के बगीचे में फिर से बनानी चाहिये, या ऐनी हाउस में काम करना चाहिये, या फिर दोनों जगह करने का प्रयास करना चाहिये?

अगर तुम्हारे अन्दर दोनों जगह अच्छी तरह करने की सामर्थ्य है तो दोनों करो। अगर तुम्हारी सारी ऊर्जा एक में ही लग जाती है तो ऐनी हाउस पर केन्द्रित होओ।

आशीर्वाद।

४ मई, १९६६

*

मधुर मां,

आप संस्कृत के नये जीवन के बारे में जो चाहती हैं उसके लिए हम एक सन्देश चाहेंगे जिसकी एक झलक आपने अपने १९६७ के ११ नवम्बर के वार्तालाप में दी थी। हम इस सन्देश का अनुवाद करके आश्रम की पत्रिकाओं में छापना चाहेंगे, क्योंकि कुछ शिष्य यह जानना चाहते हैं कि आपने इस विषय में क्या कहा है।

मैं किसी सन्देश की कोई आवश्यकता नहीं देखती। सन्देश केवल उन्हें विश्वास दिलाते हैं जिन्हें पहले से ही विश्वास है।

संस्कृत सीखना और उसे सचमुच जीवन्त भाषा बनाना अधिक अच्छा होगा।

आशीर्वाद।

१६ अगस्त, १९६९

*

माताजी, मैं गनपावर राकेट के साथ परीक्षण करना चाहता हूं, इन विस्फोटक और खतरनाक साधनों के साथ कुछ करने से पहले "क" ने मुझसे आपसे पूछने के लिए कहा है। क्या आप अनुमति देंगी?

अनगढ़ और अविकसित स्वभाव शोर पसन्द करते हैं। विस्फोटक हमेशा खतरनाक होते हैं; ये सब उत्सुकता के विषय नहीं हो सकते।

२ सितम्बर, १९७१

*

मुझे लिखने के लिए तुम्हें ऐसे कागज और लिफाफों का उपयोग नहीं करना चाहिये जिनमें पत्रशीर्षक छपे हों—यह अपव्यय है।

विद्यालय को सूचित कर दो।

*

बेकरी की दीवारों में बहुत चींटियां हैं। वे मेजों पर आकर बेकिंग के डब्बों में घुस जाती हैं।

तुम्हें इसका पता लगाना होगा कि ये कहां से आती हैं, किस छेद से बाहर निकल रही हैं, और वहां उस छेद के पास थोड़ी-सी चीनी रख दो। वे उसे ले जाने में व्यस्त रहेंगी और फिर तुम्हें परेशान न करेंगी।

*

माताजी, आज मैंने मौलसिरी के पेड़ पर मधुमक्खी का एक छत्ता देखा। हम इस पेड़ की छाया में काम करते हैं। छत्ता बड़ा होता जायेगा और पेड़ बहुत ऊंचा नहीं है। क्या किया जा सकता है?

अगर तुम उन्हें परेशान न करो तो मुझे नहीं लगता कि वे तुम्हें डंक मारेंगी। लेकिन अगर तुम्हें डर हो...

पकाना और खाना

जब तुम तरकारियों में गेहूं का आटा मिलाना चाहो तो ज्यादा अच्छा होगा कि पहले उसे किसी अलग बर्तन में जरा से पानी में, या ज्यादा अच्छा होगा, सब्जी के रसे में घोल लो। पहले उसे बर्तन में उबालो और बहुत सावधानी के साथ गोल-गोल घुमाते हुए उसे सारे समय चलाते जाओ। जब वह उबल जाये तो तुम उसे तरकारियों में मिला सकते हो, फिर वह बर्तन की तली में नहीं चिपकेगा।

८ फरवरी, १९३२

*

बहुत तेज आग खाने को जला देती है, बर्तन को खराब कर देती है और ईंधन को व्यर्थ में नष्ट करती है। धीमी आंच का अर्थ है खाना पकने में कुछ अधिक समय लगना लेकिन इसका अर्थ खाने में एक अधिक अच्छा परिणाम पाना भी है।

जल्दबाजी में किया गया काम हमेशा खराब काम होता है; अगर तुम अच्छा परिणाम चाहते हो तो समय लगाना होगा।

*

यह कहना कि तुम्हारा बनाया खाना खराब है, ठीक नहीं होगा। ज्यादा-से-ज्यादा मैं इतना कह सकती हूं कि वह हमेशा एक समान अच्छा नहीं होता, लेकिन खराब तो वह हर्गिज नहीं होता, और कुछ चीजें *काफी सफल* होती हैं। हो सकता है कि आन्तरिक कठिनाइयों का कोई काल तुम पर से गुजरा हो, लेकिन तुम्हें उसमें से पहले से अधिक मजबूत बनकर निकलना ही होगा। जब आन्तरिक कठिनाई चली जायेगी, तो खाना पहले की तरह सदा ही अच्छा होगा।

२४ दिसम्बर, १९३७

*

मैंने भोजन, मसालों इत्यादि के प्रभाव के बारे में इतनी परस्पर-विरोधी बातें सुनी हैं कि तार्किक रूप से मैं इस निश्चय पर पहुंची हूं कि दूसरी चीजों की तरह, यह भी व्यक्तिगत मामला होना चाहिये और परिणामस्वरूप कोई व्यापक नियम नहीं बनाया जा सकता और उसे लागू करना तो और भी कम। मेरे ढील देने का यही कारण है।

*

अल्यूमीनियम के बर्तनों के बारे में मुझे कुछ नहीं बताया गया, उनके लिए मैं स्वीकृति नहीं देती क्योंकि भोजन के लिए अल्यूमिनियम अच्छा नहीं है। मैं अपने निजी अनुभव की बात कर रही हूं।

*

तुम जानते हो कि इस बारे में मैं बिलकुल आग्रही नहीं हूं कि नौकर खाने-पीने की चीजों को हाथ लगायें—लेकिन ऐसा लगता है कि बहुतों को यह पसन्द है, मेरा ख्याल है आलस्य के कारण!!

*

रसोईघर में, सफाई *सबसे अधिक* अनिवार्य चीज है।

खाने में बालों के गिरने को रोकने के लिए, ज्यादा अच्छा है कि खाना बनाते समय सिर को ढके रहो।

बर्तनों में कीड़े न गिरने पाएं इसके लिए विशेष ख्याल रखना चाहिये।

*

औरों के साथ खाते समय जो वातावरण बनता है अगर तुम्हें पसन्द न हो तो मैं इसका कोई कारण नहीं देखती कि तुम उनके साथ खाओ।

१३ सितम्बर, १९४०

*

भौतिक दृष्टिकोण से, निश्चय ही बिना जल्दबाजी के, शान्ति के साथ खाना अधिक अच्छा है, और मुझे पूरा विश्वास है कि बहुधा तुम इसके लिये समय निकाल सकते हो। बात तो व्यवस्था की है।

२७ सितम्बर, १९४३

*

जिस जगह खाना बनता है वहां किये गये सारे झगड़े खाने को अपाच्य बना देते हैं। खाना पकाने का काम शान्ति और सामञ्जस्य में होना चाहिये।

मार्च, १९६१

*

एक बचकाना प्रश्न : क्या पशु पक्षियों को भोजन का स्वाद हमारे जैसा ही मिलता है?

हां, लेकिन वे उसके बारे में हमारी तरह सोचते नहीं।

आश्रम के पुस्तकालय से पुस्तकें लेना

मधुर मां,

मुझसे कहा गया है कि निम्नलिखित चीजों के लिए मुझे आपकी स्वीकृति लेनी होगी : (१) पुस्तकालय से पुस्तकें लेने के लिए; (२) बेकरी से रोटी खरीदने के लिए। क्या मुझे आपकी स्वीकृति मिल सकती है?

यदि तुम्हें असामान्य मात्रा में नहीं चाहिये तो रोटी तुम मुफ्त में ले सकते हो।

रही बात किताबों की, हम किताबें देना बन्द करने के लिए बाधित हुए हैं क्योंकि बहुत बड़ी संख्या में किताबें गुम हो गयी हैं—लेकिन अगर तुम उन्हें थोड़े समय के लिए रखो और अधिक सावधान होने का वचन दो, तो मैं स्वीकृति दे सकती हूं।

आशीर्वाद।

११ जनवरी, १९६३

*

मधुर मां,

अपने पढ़ने के लिए क्या मैं कभी-कभी पुस्तकालय से किताबें ले सकता हूं? कुछ वर्ष पहले आपने मुझे स्वीकृति दी थी।

अगर तुम पुस्तकालय के नियमों का पालन करो और किताबों की बहुत अच्छी तरह देखभाल करो तो ले सकते हो।

आशीर्वाद।

१२ मार्च, १९६४

*

प्यारी मां,

क्या मैं जॉन ब्यूसैल कृत 'द पपेट थियेटर' लेने की स्वीकृति पा

सकता हूं? बड़े दिन पर बच्चों को उपहार देने के लिए, हाथ की कठपुतलियां बनाने के लिए 'क' को यह पुस्तक दिखाना चाहता हूं।

हां, उधार के रूप में और सावधानी के साथ।

२६ नवम्बर, १९६४

*

मधुर मां,

क्या मैं घर पर पढ़ने के लिए पुस्तकालय से किताबें ले सकता हूं? अंग्रेजी और दूसरे अध्ययन के लिए मुझे इनकी आवश्यकता है।

अगर 'ख' (पुस्तकालयाध्यक्ष) स्वीकार करे, और अगर तुम उनको बहुत अच्छी तरह सम्भाल कर रखो।

२३ दिसम्बर, १९६४

*

माताजी,

१९६५ की छुट्टियों में और १९६६ में स्कूल के समय क्या आप मेरी कक्षा के विद्यार्थियों को पुस्तकालय से किताबें लेने की अनुमति देंगी? ये किताबें (सूची साथ में है) उनकी फ्रेंच कक्षाओं के लिए उपयोगी होंगी।

बहुत अच्छा।

पुनश्च : निश्चित रूप से उन्हें इन पुस्तकों को अच्छी तरह सम्भाल कर रखना होगा और नया साल शुरू होने से पहले उन्हें साफ-सुथरी और अच्छी हालत में लौटाना होगा।

११ अक्तूबर, १९६५

*

(पुस्तकालय के मुख्य अध्यक्ष को)

'ग' पुस्तकालय से कुछ किताबें लेना चाहता है। वह कहता है कि वह उनकी *अच्छी तरह सम्भाल* करेगा। क्या तुम उसे देने के लिए तैयार हो?

१३ फरवरी, १९६६

चित्रकारी

मेरे ख्याल से प्रकृति के कुछ रेखाचित्र उपयोगी होंगे, विशेष रूप से हाथ पैर के अनुपात और आकार के सामञ्जस्य के दृष्टिकोण से यह उपयोगी होगा।

२५ जनवरी, १९३४

*

(माताजी के मुकुट के लिए एक डिज़ाइन के बारे में)

सचमुच डिज़ाइन बहुत सुन्दर है और निश्चय ही एक बहुत सफल मुकुट बनायेगा।

७ सितम्बर, १९३४

*

भित्ति चित्र का यह विचार मुझे अच्छा लगा और 'ख' की छत पर 'क' के कमरे की दीवार इसके लिए आदर्श स्थान है। बस एक बात है : जिस दीवार पर अभी पेण्ट हुआ है उस पर चूना टिकेगा क्या? यह 'ग' से पूछना पड़ेगा।

वहां समुद्र का दृश्य बहुत अच्छा रहेगा।

७ सितम्बर, १९३४

*

(कलाकार के कार्य से सम्बन्धित लोगों के लिए बने कार्डों के बारे में, जिनके नाम कार्डों के साथ-साथ भेजे गये थे)

सभी कार्ड बहुत अच्छे हैं, कुछ बहुत ही सुन्दर हैं। मैं एक के सिवाय सभी को वितरण के लिए लौटा रही हूं। उसे 'ग' ने चुनकर बड़ी खुशी से अपने पास रख लिया है।

सभी नाम ठीक हैं।

२७ अक्तूबर, १९३५

*

(टाउन हॉल की दीवारों पर लगाने के लिए एस्बेस्टस पर की जाने वाली चित्रकारी के लिए रेखांकनों के बारे में)

हां, यह ठीक है। जब रेखांकन तैयार हो जायें तो उन्हें मेयर और गवर्नर को दिखाना होगा और इसमें कुछ समय लगेगा। कहने का मतलब यह है कि रेखांकन और चित्रकारी को शुरू करने के बीच प्रदर्शनी और दर्शन के लिए बहुत समय होगा।

*

जैसा कि मैंने तुमसे कहा, इन रेखांकनों को गवर्नर को इस महीने की दस या उसके आस-पास किसी तारीख को दिखाना अच्छा होगा—क्योंकि आम सभा की बैठकें हो रही हैं और अन्तिम निर्णय सभा के द्वारा ही लिया जायेगा। चार रेखांकन और कमरे की ऊंचाई का उल्लेख पर्याप्त होगा।

१ नवम्बर, १९३५

*

(टाउन हॉल की चित्रकारी के रेखांकनों के बारे में)

ये सचमुच बहुत सुन्दर हैं। मैं सुझाव देने लायक किसी परिवर्तन की

जरूरत नहीं देख रही।

३ नवम्बर, १९३५

*

(दिसम्बर १९३५ के अन्त में आश्रम के चित्रकारों के चित्रों की एक प्रदर्शनी के बारे में। कुछ चित्र फ्रेंच गवर्नर को उपहारस्वरूप दिये गये थे)

मैं तुमसे यह कहना भूल गयी कि गवर्नर को दिये जाने वाले दो चित्रों पर फ्रेम लगाने से पहले हस्ताक्षर करने होंगे। क्या तुम 'ग' को इसकी सूचना दे दोगे?

ऐसा लगता है कि प्रदर्शनी बहुत सफल रही।

हमारे आशीर्वाद सहित।

६ जनवरी, १९३६

*
* *

मैं आपकी राय जानने के लिए चित्रकला की कुछ पुस्तकें भेज रहा हूं। मैं "सेजान" और "वैनगॉग" के बारे में आपकी राय जानना चाहता हूं, क्योंकि आधुनिक आलोचक उनकी बहुत प्रशंसा करते हैं।

तुम्हारी भेजी हुई पुस्तकों में "सेजान" और "वैनगॉग" के जो चित्र हैं, बहुत सुन्दर हैं (विशेषकर "सेजान" के)। मैं दो-एक दिन में किताबें लौटा दूंगी—मैं उन्हें अच्छी तरह से देखना चाहती हूं।

१२ मार्च, १९३६

*

अगर तुम चित्र आंकने के लिए सच्ची प्रेरणा का अनुभव नहीं करते तो मैं तुम्हारे चित्र आंकने की कोई आवश्यकता नहीं समझती।

आशीर्वाद।

अप्रैल, १९३९

*

कला को सीखने का तुम्हारा तरीका उचित है और अगर तुम अपनी मनोवृत्ति और प्रयास में पूरी सचाई रखते हुए सीखते रहोगे तो तुम जरूर सफल होगे।

पूर्वीय कला के तुम्हारे मूल्यांकन में कुछ चीज ठीक है, लेकिन वह अपूर्ण है। फिलहाल हम इस विषय को छोड़ देंगे क्योंकि अभी मेरे पास यह सब समझाने का समय नहीं है। रही बात लिओनार्दो द विंची, माइकल एंजलो और राफेल की, तो इन्हें मैं एक ही स्तर पर नहीं रख सकती। पहले दो अन्तिम से कहीं अधिक महान् हैं। ये दोनों सर्जक शक्ति के लोक के हैं, लिओनार्दो में अधिक सूक्ष्मता, अचञ्चल, गभीर दृष्टि और पवित्रता है, माइकल एंजलो में अधिक शक्ति, अधिक बल है, विशेष रूप से उसकी उन मूर्तियों में जो अतुलनीय रूप से अपूर्व हैं। राफेल अधिक मानसिक और सतही है।

३० जून, १९३९

*

'क' ने मुझे बताया है कि आपने ध्यान के कक्ष को सजाने की स्वीकृति दे दी है। मैं सिर्फ उसी कमरे को सजाना चाहता था जहां आप प्रणाम के लिए बैठा करती थीं। मैंने सुना कि आप सारा हॉल और ऊपर जाने की सीढ़ी तक सारी जगह करवाना चाहती हैं। यह बहुत बड़ी योजना है। लेकिन 'ख' भी इस काम को करने में रुचि रखता है, और पूछा जाये तो 'क' भी हमारा साथ दे सकता है। मैं आपसे यह कहना चाहता हूं कि काम को चुपचाप और सुसामञ्जस्य के साथ करने के लिए एक ही आदमी को सारी चीज का डिज़ाइन बनाना चाहिये और सभी को उसी के अनुसार काम करना चाहिये। मैं आपसे यह जानना चाहूंगा कि क्या आपके पास कोई विषय-विशेष है। मैं आपसे यह जानना चाहूंगा कि काम को कैसे किया जाये? कृपया अपना विचार बताइये।

मैं इस बात से सहमत हूं कि एक ही आदमी को सारी चीज का डिज़ाइन बनाना चाहिये, दूसरे लोग कार्य में उसके साथ हो सकते हैं।

मेरे पास कोई विषय या योजना नहीं है। मैं केवल इसकी इच्छा रखती हूं कि रंग और साथ-साथ रचना के दृष्टिकोण से भी सजावट शान्त होनी चाहिये।

कुछ रेखांकन और योजना तैयार करो, और मेरे पास भेजो।

आशीर्वाद

३१ जुलाई, १९३९

माताजी की अनुभूतियां

अनुभूतियों का लेखन

तत्त्वतः अनुकम्पा और कृतज्ञता चैत्य गुण हैं। वे चेतना में तभी प्रकट होते हैं जब चैत्य सत्ता क्रियात्मक जीवन में भाग लेती है।

प्राण और भौतिक उन्हें दुर्बलताओं के रूप में अनुभव करते हैं, क्योंकि वे उनके संवेगों की मुक्त अभिव्यक्ति को दबा देते हैं, जो सामर्थ्य की शक्ति पर आधारित होते हैं।

हमेशा की तरह, जब मन अपर्याप्त रूप से प्रशिक्षित होता है, तो प्राण सत्ता का साथी और भौतिक प्रकृति का दास होता है, इस प्रकृति के विधान अपनी अर्धचेतन यान्त्रिकी प्रक्रिया में इतने अभिभूत करने वाले होते हैं कि, मन उन्हें पूरी तरह समझ नहीं पाता। जब मन पहली चैत्य गतियों की अभिज्ञता में जागता है तो वह अपने अज्ञान द्वारा उन गतियों को विकृत कर देता है। वह अनुकम्पा को दया में या ज्यादा-से-ज्यादा उदारता में, और कृतज्ञता को बदला चुकाने की इच्छा में बदल देता है और फिर धीरे-धीरे मान्यता देने और समादर करने की सामर्थ्य में बदल देता है।

जब सत्ता में चैत्य चेतना सर्वसमर्थ हो तभी उन सबके लिए जिन्हें किसी भी रूप में सहायता की आवश्यकता हो अनुकम्पा और जो कुछ किसी भी रूप में भागवत उपस्थिति और कृपा को प्रकट करता है उसके प्रति कृतज्ञता अपने मौलिक उज्ज्वल शुद्ध रूप में प्रकट होती है। तब अनुकम्पा में त्यक्त गौरव का भाव या कृतज्ञता में हीनता का कोई पुट नहीं होता।

१५ जून, १९५२

*

भगवान् सर्वत्र हैं, सबमें हैं, और वे सर्वम् हैं। हां, 'अपने' सार तत्त्व और 'अपनी' परम सद्वस्तु में। लेकिन प्रगतिशील भौतिक अभिव्यक्ति के जगत् में, तुम्हें भगवान् जैसे हैं उनके उस रूप के साथ नहीं बल्कि भगवान् जैसे होंगे, उस रूप के साथ तदात्म होना चाहिये।

३० जून, १९५२

शरीर-चेतना की कुछ अनुभूतियां

तुम समान सटीकता के साथ कह सकते हो कि सब कुछ भगवान् हैं और कुछ भी भगवान् नहीं हैं। सब कुछ इस पर निर्भर है कि तुम समस्या को किस कोण से देखते हो।

उसी तरह से तुम कह सकते हो कि भगवान् निरन्तर सम्भूति की अवस्था में हैं और यह भी कि वे शाश्वतकाल के लिए अपरिवर्तनशील हैं।

भगवान् के अस्तित्व को अस्वीकारना और स्वीकारना दोनों बातें समान रूप से सच हैं; लेकिन हर एक केवल अंशतः सत्य है। तुम सकारात्मकता और नकारात्मकता के ऊपर उठकर ही सत्य के निकट जा सकते हो।

इससे और आगे चलकर यह भी कहा जा सकता है कि संसार में जो कुछ होता है वह भागवत संकल्प का परिणाम है और यह भी कि इस संकल्प को ऐसे जगत् में अभिव्यक्त और प्रकट करना है जो इसका प्रतिवाद करे या इसे विकृत कर दे। व्यवहार में, इन दोनों वृत्तियों में से एक, जो कुछ घटता है उसके प्रति शान्त समर्पण की ओर और दूसरी, इसके विपरीत, जो होना चाहिये उसकी विजय लाने के लिए निरन्तर संघर्ष की ओर ले जाती है। सत्य को जीने के लिए, तुम्हें इन दोनों वृत्तियों से ऊपर उठना, इन्हें मिलाना सीखना होगा।

अप्रैल, १९५४

*

अपने विश्वास को बनाये रखो अगर यह तुम्हारे जीवन को बनाने में सहायता करे, लेकिन यह भी जानो कि यह केवल एक विश्वास है और दूसरे विश्वास भी तुम्हारे विश्वास के जितने अच्छे और सच हैं।

अप्रैल, १९५४

*

सहन करना श्रेष्ठ भाव से भरपूर होना है; इसका स्थान पूर्ण समझदारी को लेना चाहिये।

अप्रैल, १९५४

*

सत्य रैखिक नहीं, सार्वभौम है। यह आनुक्रमिक नहीं, समकालिक है। अतः इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता; इसे जीना होगा।

अप्रैल, १९५४

*

अपने समस्त ब्योरों में जगत् जैसा है उसकी पूर्ण और समग्र चेतना पाने के लिए, आरम्भ से ही इन ब्योरों के बारे में कोई व्यक्तिगत प्रतिक्रिया, कोई आध्यात्मिक अभिरुचि, यहां तक कि वे कैसे होने चाहियें, इसका भान भी नहीं होना चाहिये। दूसरे शब्दों में, सर्वांगीण तादात्म्य द्वारा प्राप्त ज्ञान के लिए आवश्यक शर्त है—पूर्ण तटस्थता और निरपेक्षता के साथ पूर्ण स्वीकृति। अगर ब्योरे की कोई बात, चाहे वह कितनी छोटी क्यों न हो, तटस्थता से बच निकले तो वह तादाम्य से भी बच निकलती है। अतः सभी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से रहित होना सम्पूर्ण ज्ञान के लिए प्रारम्भिक आवश्यकता है—चाहे वे प्रतिक्रियाएं कितने भी उच्चस्तरीय हेतु के लिए क्यों न हों।

अतः विरोधाभासी रूप में हम कह सकते हैं कि हम किसी वस्तु को केवल तभी जान सकते हैं जब हमें उससे लगाव न हो या अधिक यथार्थ रूप से कहें तो जब हम स्वयं उसके लिए चिन्तित न हों।

अप्रैल, १९५४

*

देव ने हमेशा, हर बार, धरती को रूपान्तरित करने और नये जगत् की सृष्टि करने के इरादे से ही जन्म लिया है। लेकिन आज तक, अपने कार्य को सम्पन्न किये बिना ही उन्हें अपने शरीर को त्यागना पड़ा। और हमेशा यही कहा गया कि धरती तैयार नहीं थी और कार्य सम्पन्न करने के लिए मनुष्यों ने आवश्यक शर्तों को पूरा नहीं किया।

लेकिन आविर्भूत देव की अपूर्णता ही उनके चारों तरफ के लोगों की पूर्णता को अनिवार्य बनाती है। अगर अवतीर्ण प्रभु आवश्यक प्रगति के लिए अनिवार्य पूर्णता को धारण किये रहते तो यह प्रगति उनके चारों तरफ के जड़-भौतिक जगत् की स्थिति पर आश्रित न होती। और फिर भी

निःसंशय, इस परम विषयाश्रित जगत् में अन्योन्याश्रय निरपेक्ष है; अतः आविर्भूत भागवत सत्ता में अधिक ऊंचे स्तर की पूर्णता चरितार्थ करने के लिए समस्त अभिव्यक्ति में अमुक हद तक पूर्णता अनिवार्य होती है। परिवेश में अमुक पूर्णता की आवश्यकता मनुष्यों को प्रगति करने के लिए बाधित करती है, इस प्रगति की अक्षमता ही, वह चाहे जो भी हो, भागवत सत्ता को अपने शरीर की प्रगति के कार्य को तेज करने को प्रेरित करती है। अतः प्रगति की ये दोनों क्रियाएं एक साथ होती हैं और एक-दूसरे की पूरक हैं।

अप्रैल, १९५४

शरीर-चेतना की नयी अनुभूतियां

जब तुम अपने जीवन में पीछे की ओर देखो, तो प्रायः हमेशा तुम्हें यह अनुभव होता है कि अमुक-अमुक परिस्थितियों में, तुम अधिक अच्छा कर सकते थे, यद्यपि हर क्षण तुम आंतरिक सत्य की आज्ञा का पालन कर रहे थे। इसका कारण यह है कि विश्व निरन्तर गति कर रहा है और जो पहले पूर्ण रूप से सत्य था आज अंशतः सत्य है। या अधिक यथार्थ रूप से कहा जाये तो, जिस क्षण वह कर्म किया गया था उसी क्षण वह जितना आवश्यक था अब उतना आवश्यक न होगा; उसके स्थान पर कोई और कर्म अधिक उपयोगी होगा।

अगस्त, १९५४

*

जब हम रूपान्तर की बात करते हैं तब भी इस शब्द का अर्थ हमारे लिये धुंधला-सा होता है। यह हमें ऐसा आभास देता है कि कुछ होने वाला है और परिणामस्वरूप सब कुछ ठीक होगा। धारणा अपने-आपमें प्रायः यह रूप ले लेती है: अगर हमारे सामने कठिनाइयां हैं तो कठिनाइयां विलीन हो जायेंगी; जो बीमार हैं वे बीमारी से छुटकारा पा लेंगे, अगर शरीर दुर्बल और असमर्थ है, तो दुर्बलता और असामर्थ्य दूर हो जायेंगे;

आदि-आदि। लेकिन जैसा मैंने कहा, यह सब बहुत अस्पष्ट है, यह केवल एक आभास है। हां, तो शारीरिक चेतना के बारे में एक विलक्षण बात यह है कि वह किसी चीज को पूरे विस्तार से और यथार्थता के साथ नहीं जान सकती जब तक कि वह उसे उपलब्ध करने के बिन्दु तक न पहुंच जाये। अतः जब रूपान्तर की प्रक्रिया स्पष्ट हो जायेगी, जब मनुष्य यह जान पायेगा कि क्रियाओं और परिवर्तनों के किस क्रम में पूर्ण रूपान्तर होगा—किस क्रम में, किस तरह यानी, कौन-सी चीजें पहले आयेंगी और कौन-सी बाद में—जब सब कुछ, पूर्ण ब्योरे में मालूम हो जायेगा तब वह इस बात का निश्चित सूचक होगा कि उपलब्धि का मुहूर्त निकट है, क्योंकि हर बार जब तुम्हें किसी ब्योरे की यथार्थ प्रतीति होती है तो इसका यह अर्थ होता है कि तुम उसे प्राप्त करने के लिए तैयार हो।

अभी के लिए, तुम सारी चीज का अन्तर्दर्शन पा सकते हो। उदाहरण के लिए, यह पूरी तरह निश्चित है कि अतिमानसिक प्रकाश के प्रभाव तले सबसे पहले शरीर-चेतना का रूपान्तर होगा; उसके बाद शरीर के सभी अवयवों के कर्म और सभी क्रियाओं पर संयम और प्रभुत्व में प्रगति होगी; उसके बाद, धीरे-धीरे यह प्रभुत्व क्रिया के मौलिक परिवर्तन के रूप में और फिर स्वयं अवयवों की रचना के परिवर्तन में बदल जायेगा। यह सब कुछ निश्चित है, यद्यपि इसका अन्तर्दर्शन पर्याप्त रूप से यथार्थ नहीं है। लेकिन अन्त में जो होगा—जब विभिन्न अवयवों का स्थान भिन्न शक्तियों, गुणों और स्वभावों की एकाग्रता के केन्द्र ले लेंगे तो उनमें से हर एक अपनी विशेष पद्धति के अनुसार कार्य करेगा—यह सारी चीज अभी तक केवल एक धारणा है और शरीर इसे अच्छी तरह नहीं समझ पाता, क्योंकि यह अभी तक सिद्धि से दूर है और शरीर पूरी तरह से केवल तभी समझ सकता है जब वह उसे प्राप्त कर सकने के बिन्दु पर हो।

अगस्त, १९५४

*

अतिमानसिक शरीर अलैंगिक होगा, क्योंकि तब पाशविक प्रजनन की आवश्यकता नहीं रहेगी।

मानव आकार केवल अपने प्रतीकात्मक सौन्दर्य को बनाये रखेगा,

और हम अब भी पुरुषों में जननेन्द्रिय और स्त्रियों में स्तनग्रन्थि जैसे कुछ कुरूप उभारों के विलोपन का अनुमान लगा सकते हैं।

अगस्त, १९५४

*

शरीर केवल अपने बाहरी आकार, अपने अत्यन्त ऊपरी रंग-रूप में दिव्य नहीं है। यह आज विज्ञान की नयी-से-नयी खोजों के लिए भी उसी तरह भ्रामक है जैसा भूतकाल की आध्यात्मिकता के लिए था।

अगस्त, १९५४

*

हे परम सद्वस्तु, हे अतिमानसिक सत्य, यह शरीर पूरी तरह तीव्र कृतज्ञता से स्पन्दित हो रहा है। तूने इसे एक-के-बाद-एक, वे सभी अनुभूतियां प्रदान की हैं जो इसे एकदम निश्चित रूप से तेरी ओर ले जा सकती हैं। यह एक ऐसे बिन्दु पर आ गया है जहां तेरे साथ तादात्म्य एकमात्र वाञ्छनीय ही नहीं बल्कि एकमात्र सम्भव और स्वाभाविक वस्तु है।

मैं इन अनुभूतियों का भला किस तरह वर्णन करूं जो दो विरोधी छोरों पर हैं? एक छोर से मैं कहूंगी :

"प्रभो, सचमुच तेरे निकट होने के लिए, तेरे योग्य बनने के लिए, व्यक्ति को अपमान के चषक-पर-चषक खाली करने होंगे और फिर भी अपमानित नहीं अनुभव करना होगा। व्यक्ति का अपमान उसे सचमुच मुक्त करता और केवल तेरा बनने के लिए तैयार करता है।"

और दूसरे छोर से मैं कहूंगी :

"प्रभो, सचमुच तेरे निकट होने के लिए, सचमुच तेरे योग्य बनने के लिए व्यक्ति को मानव मूल्यांकन के शिखर पर पहुंचना होगा और फिर भी गौरवान्वित अनुभव न करना होगा। जब मनुष्य किसी को भगवान् कहता है केवल तभी उसे अपनी अक्षमता का अनुभव होता है और तेरे साथ पूरी तरह एक होने की आवश्यकता का अनुभव करता है।"

ये दोनों युगपत् अनुभूतियां हैं : एक दूसरी को मिटा नहीं देती, बल्कि इसके विपरीत, वे एक दूसरे की पूरक मालूम होती हैं और इस तरह

अधिक तीव्र हो जाती हैं। इस तीव्रता में अभीप्सा बहुत अधिक बढ़ जाती है, और उसके प्रत्युत्तर में *तेरी उपस्थिति* स्वयं कोषाणुओं में प्रत्यक्ष बन जाती है, जो शरीर को ऐसे बहुरंगी कैलिडोस्कोप का आभास देती है जिसमें निरन्तर गति करते असंख्य ज्योतिर्मय कण किसी अदृश्य और सर्वसमर्थ परम 'हाथ' द्वारा भव्य रूप में पुनर्व्यवस्थित होते हैं।

अगस्त, १९५४

भाग २

वार्तालाप

३० दिसम्बर, १९५०

यह वार्ता माताजी के लेख "पूर्वदृष्टि" पर आधारित है।

('श्रीमातृवाणी', खण्ड १२)

"नियति को पहले से देख सकना! कितनों ने इसके लिए प्रयास किया है, कितनी पद्धतियां बनी हैं, भविष्य-दर्शन की कितनी विद्याएं रची गयी हैं, विकसित की गयी हैं और फिर झूठे पांडित्य और अन्धविश्वासों के आरोप के साथ नष्ट हो गयी हैं। नियति को पहले से जान लेना इतना कठिन क्यों रहा है? जब कि यह प्रमाणित हो चुका है कि हर चीज अनिवार्य रूप से पूर्वनिर्दिष्ट है तो क्या कारण है कि हम नियति को निश्चिति के साथ जानने में सफल नहीं होते?"

पूर्वदृष्टि का मतलब है पहले से देख लेना; पर क्या तुम मुझे बता सकते हो कि कल क्या होने वाला है? मुझे नहीं लगता कि तुम बता सकते हो। हां, तुम यह तो कह ही सकते हो कि हम खायेंगे, सोयेंगे आदि सामान्य चीजें लेकिन तुम यह नहीं कह सकते कि कोई अप्रत्याशित चीज घटेगी। क्यों? किसी ने कहा है : "इसके लिए विशेष आंख होनी चाहिये।" आकृतियों के बिना पूर्वदृष्टि सम्भव है : आकृतियों के बिना एक मानसिक ज्ञान भी होता है। सन्त लोग प्रायः पूर्वदृष्टि वाले होते हैं, हमेशा नहीं, पर बहुधा। मुझे नहीं लगता कि तुम तीसरी आंख का मतलब साइक्लोप्स जैसी माथे के बीच में तीसरी आंख से ले रहे हो। नहीं, इसका मतलब है आन्तरिक आंख जो किसी और ही लोक की होती है। इस आंख से आदमी साधारणतः भौतिक चीजें नहीं देखता और अगर देखता भी है तो बहुत विशेष कोण से। ऐसे लोग हैं जो यह देख सकते हैं कि बहुत अधिक दूरी पर या अन्य देशों में क्या हो रहा है।

क्या ये चीजें चैत्य दृष्टि द्वारा देखी जाती हैं?

नहीं, साधारणतः चैत्य दृष्टि भौतिक चीजों में नहीं पड़ती।

तो क्या मानसिक दृष्टि होती है?

हो सकता है, लेकिन तब तुम्हें प्राप्त होते हैं उन लोगों के विचार जो उस जगह हैं जिस जगह को तुम देख रहे हो क्योंकि ये लोग, वहां जो कुछ हो रहा है उस पर अपने *विचार* केन्द्रित कर रहे होते हैं।

सामान्यत: "नियतिवाद" का अर्थ लिया जाता है कारण-कार्य की ृंखला। अगर तुम यह करो तो वह होगा। उदाहरण के लिए, अगर तुम अमुक प्रकार का भोजन खाओ तो तुम बीमार हो जाओगे, अगर तुम विष निगल जाओ तो मर जाओगे, आदि-आदि। लेकिन बहुधा ऐसा होता है कि अमुक नियतिवादों के परिणामों को दूसरे नियतिवाद रद्द कर देते हैं।

"इसका समाधान भी योग में पाया जाता है। योग साधना द्वारा तुम न केवल नियति को देख सकते हो बल्कि उसमें हेर-फेर भी कर सकते हो और उसे लगभग पूरी तरह बदल भी सकते हो। सबसे पहले, योग हमें यह सिखाता है कि हम एक अकेली सत्ता नहीं हैं, एक सीधी-सादी सत्ता नहीं हैं जिसकी केवल एक सीधी और तर्क-संगत नियति है। बल्कि हमें स्वीकार करना होगा कि अधिकतर लोगों की नियति जटिल, यहां तक कि अंड-बंड होती है। क्या यह जटिलता ही हमें, अप्रत्याशित और अनिश्चित होने का भाव नहीं देती जिसके परिणामस्वरूप हम कहते हैं कि इसके बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता।"

ऐसे लोग हैं जिनकी नियति बहुत जटिल होती है जिसे देखकर लगता है कि उनके साथ जो कुछ घटता है वह अप्रत्याशित होता है और जब तक तुम किसी असाधारण दृष्टि से न "देखो", उसे पहले से नहीं देखा जा सकता।

"समस्या को हल करने के लिए, शुरू में ही तुम्हें यह जानना चाहिये कि सभी जीवित प्राणी और विशेषकर मनुष्य बहुत सारी सत्ताओं से मिलकर बने होते हैं। ये सत्ताएं एक-दूसरे के पास आती हैं, एक

दूसरे में प्रवेश करती हैं, कभी आपस में एक-दूसरे को इस तरह व्यवस्थित कर लेती हैं कि एक दूसरे की पूरक बनें और कभी एक-दूसरे के विपरीत होकर एक-दूसरे का निषेध करती हैं।"

"सत्ता" एक व्यक्तित्व या विलग सत्ता है। हममें से हर एक के अन्दर ऐसे बहुत-से "व्यक्तित्व" होते हैं। अगर ये व्यक्तित्व मेल खायें, एक-दूसरे के पूरक हों तो इनसे मनुष्य, एक समृद्ध और जटिल "व्यक्ति" बनता है। लेकिन सामान्यतः ऐसा होता नहीं। ये व्यक्तित्व एक-दूसरे के साथ मेल नहीं खाते। उदाहरण के लिए उनमें से एक कुछ प्रगति करना, अधिकाधिक पूर्ण बनना, चीजों का अधिक गहरा ज्ञान पाना, अधिक-से-अधिक चरितार्थ करना और सत्ता की पूर्णता की ओर बढ़ना चाहता है और हो सकता है कि दूसरा, जहां तक हो सके, केवल मौज-मजा करना चाहता है। एक दिन वह यह करेगा, दूसरे दिन कुछ और इत्यादि। अगर व्यक्तित्व मेल न खाये तो इस आदमी का जीवन असंगत होगा और यह असामान्य नहीं है : वस्तुतः ऐसे लोग बहुत-से हैं।

"इनमें से हर एक सत्ता या सत्ता की स्थिति अपने ही जगत् से सम्बन्ध रखती है और अपने साथ अपना भाग्य और अपनी नियति लिये रहती है। इन सभी नियतियों का मेल व्यक्ति की नियति बनाता है और यह कभी-कभी बहुत असंगत होती है।"

आदमी में बहुत-से व्यक्तित्व हो सकते हैं—उदाहरण के लिए दस या बीस और हर एक की अपनी नियति होती है। भौतिक जगत् में व्यक्तित्व का अर्थ है मानव शरीर। तो मानव शरीर में बहुत-सी विलग सत्ताएं होती हैं जिनमें से हर एक की अपनी नियति होती है। तब फिर क्या होता है? ये सत्ताएं एक-दूसरे के साथ ठीक तरह नहीं चल पातीं और रगड़-झगड़ और आन्तरिक अव्यवस्था पैदा करती हैं। सबसे बलवान् का हाथ ऊंचा रहता है। वह और सब पर छा ही नहीं जाती बल्कि उन्हें दबा देती है और विद्रोह करने से रोकती है। तो अन्त में अभागी विलग सत्ताएं, जिन्हें दबा दिया जाता है, जाकर सो जाती हैं। वे अपना समय देखती रहती हैं और

जब उनका समय आता है तो झट उछलकर ऊपर आ जाती हैं और सब कुछ उलट-पलट कर देती हैं। अगर ऐसा जल्दी-जल्दी हो तो उस व्यक्ति का जीवन बहुत अव्यवस्थित हो जाता है। वह आज एक चीज हाथ में लेगा और कल कोई और। इसी तरह चलता रहेगा।

मेरा ख्याल है कि यह कहना सच नहीं है कि जिसमें आन्तरिक जटिलता नहीं है वह सामञ्जस्यपूर्ण है। जिन लोगों के अन्दर इस तरह का भ्रान्तिमूलक सामञ्जस्य होता है वे भौतिक जीवन में बहुत गहरे डूबे होते हैं, जरा-सी भी अप्रिय चीज उन्हें पूरी तरह अस्त-व्यस्त कर देती है क्योंकि उनके अन्दर और कुछ होता ही नहीं। नहीं, सचमुच सामञ्जस्य वाले व्यक्तित्व का अर्थ है आन्तरिक विलग सत्ताओं की सचेतन व्यवस्था; यह व्यवस्था सहज रूप से जन्म से पहले भी हो सकती है पर यह विरल है। व्यवस्था बाद में साधना द्वारा, उचित शिक्षा द्वारा प्राप्त होती है, लेकिन इसमें सफल होने के लिए तुम्हें सचेतन रूप से चैत्य पुरुष को केन्द्र बनाकर उसके चारों ओर विविध विलग सत्ताओं को व्यवस्थित करना और उनमें सामञ्जस्य लाना चाहिये। सच्चा सामञ्जस्य और आन्तरिक व्यवस्था ऐसे ही सतत प्रयास का परिणाम होती हैं।

"लेकिन इन सत्ताओं की व्यवस्था और सम्बन्ध को व्यक्तिगत साधना और संकल्प के प्रयास द्वारा बदला जा सकता है चूंकि उनकी विभिन्न नियतियां एक-दूसरे पर चेतना की एकाग्रता के अनुसार अलग-अलग क्रिया करती हैं और उनके संयोजन प्राय: हमेशा ही परिवर्तनशील होते हैं इसलिए उन्हें पहले से नहीं देखा जा सकता।"

गणित में हम कभी-कभी बहुत-सी संख्याएं लेकर उनके सभी सम्भव संयोजन देखने की कोशिश करते हैं। हमें एकदम पता लग जाता है कि यह असम्भव है क्योंकि ऐसी बहुत-सी संख्याएं हैं जिन्हें व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसी तरह तुम्हारे अन्दर अगर बहुत सारी नियतियां एक साथ आयें और विभिन्न संयोजनों में हों, यह इस पर निर्भर होता है कि उस समय सत्ता का कौन-सा भाग प्रधान होता है, उस समय अगर, तुम यह देखने की कोशिश करो कि क्या होने वाला है तो निश्चय ही यह बहुत अधिक कठिन होता

है। चेतना की स्थितियों के बारे में भी यही बात है। एक नियति एक व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करती है। वे सब नियतियां एक-दूसरे पर क्रिया करती हैं और जो चीजें हो सकती हैं उनकी संख्या भयावह है। तो तुम उसे पहले से कैसे देख लोगे? विश्व के "विधान" हमेशा स्वतन्त्र रूप से काम करते हैं और यही विश्व की संरचना का "रहस्य" है।

> *"तो जीवन की कला इसमें होनी चाहिये कि आदमी अपनी उच्चतम चेतना में रहे और जीवन और कर्म में अपनी उच्चतम नियति को अन्य नियतियों पर अधिकार करने दे ताकि कोई भूल-चूक होने के डर के बिना कह सके: हमेशा अपनी चेतना के शिखर पर रहो और तुम्हारे साथ हमेशा वही होगा जो अच्छे-से-अच्छा होगा। लेकिन यह ऐसी पराकाष्ठा है जहां तक पहुंचना आसान नहीं है। अगर इस आदर्श अवस्था को पाना सम्भव न हो तो व्यक्ति कम-से-कम जब संकट में या बहुत नाजुक स्थिति में हो तो अभीप्सा, प्रार्थना और भगवान् के संकल्प के प्रति विश्वासपूर्ण समर्पण द्वारा अपनी उच्चतम नियति को बुला सकता है। तब, उसके आह्वान की सचाई के अनुपात में यह उच्चतर नियति सत्ता की साधारण नियति में और जहां तक उसका व्यक्तिगत सम्बन्ध है घटना-क्रम में अनुकूल रूप से हस्तक्षेप करती है। इस प्रकार की घटनाएं बाहरी चेतना को चमत्कार या भागवत हस्तक्षेप के रूप में दिखायी देती हैं।"*

मैं तुम्हें एक उदाहरण सुनाती हूं कि कैसे चेतना, उच्चतर चेतना हस्तक्षेप करती है।

एक आदमी दफ्तर जाने के लिए घर से निकलता है। वह कुछ दूर जाता है। अचानक उसे ख्याल आता है कि वह कुछ चीज भूल आया है। वह उस चीज को लाने के लिए पीछे को मुड़ता है और ठीक उसी समय उस जगह, जहां वह मुड़े बिना जा पहुंचता, वहां एक सीसे का पाइप आ गिरता है। इस आदमी की चेतना में किसी चीज ने उसे वापिस जाने के लिए कहकर उसकी जान बचा ली। जब हम कहते हैं कि चेतना का हस्तक्षेप नियति को बदल सकता है तो इसका यही मतलब होता है। इस

मनुष्य की दो नियतियां थीं—शायद औरों के अतिरिक्त—एक चाहती थी कि वह मर जाये और दूसरी चाहती थी कि वह जीवित रहे।

क्या इसे "संयोग" नहीं कह सकते?

नहीं, क्योंकि संयोग प्राय: बिल्कुल असंगत चीज है, कोई ऐसी चीज जो बिना कारण होती है। अगर तुम यह मानते हो कि जीवन असंगत चीज है तो तुम्हें अभी बहुत कुछ सीखना है। इसके विपरीत वह बिलकुल सुसंगत है। हर छोटी-से-छोटी चीज भी सुनिश्चित है और अगर किसी चीज से तुम्हें ऐसा लगता है कि वह "संयोग" है तो इसका कारण यह है कि तुम नियतियों के बारे में कुछ नहीं जानते। वे तुम्हारी पहुंच के एकदम परे हैं क्योंकि ऐसे असंख्य विधान हैं जो आपस में अन्दर-ही-अन्दर बुने हुए हैं और तुम उनके बारे में कुछ नहीं जानते। तो अगर कोई चीज इन नियमों के अनुसार होती है तो तुम उसे "संयोग" या "चमत्कार" कहते हो।

पवित्र ने बतलाया है कि गणित में यदि बीच में आने वाले तत्त्वों की संख्या बहुत अधिक है और अगर वे स्वतन्त्र रूप से काम करते हैं तो परिणाम "संयोग" प्रतीत होता है।

मैंने अभी समझाया है कि यह केवल एक "प्रतीति" है।

जो लोग प्रगति करने और चेतना में विकसित होने के लिए कोशिश करते हैं वे अनुभव करते हैं कि जिस चीज को कभी वे मुसीबत या आफत मानते थे वह पन्द्रह वर्ष बाद उन्हें आशीर्वाद, भागवत कृपा का प्रभाव, परम कल्याण प्रतीत होता है। उच्चतर दृष्टिकोण से, यह एकदम स्पष्ट है कि अगर तुम अपने साधारण जीवन में उच्चतम चेतना को उतार लाओ तो, वह तुम्हारे जीवन में परम मंगलमयी होगी।

जिन लोगों ने थोड़ी प्रगति की है उन्हें हमेशा यह अनुभूति हुई है। वे स्पष्ट रूप से यह देखते हैं कि वह तथाकथित "मुसीबत" वस्तुत: उनके ऊपर उठने का पहला चरण था, एक ऐसा आरोहण था जो उस आफत के बिना सम्भव न होता। अगर किसी के अन्दर अन्तर्दृष्टि हो और वह अपनी इच्छा से उच्चतर चेतना में चढ़ सके तो वह देखेगा कि जब वह अपनी उच्चतम चेतना के सम्पर्क में होता है तो उसके लिए अच्छी-से-

अच्छी चीज घटती है।

लेकिन यह समझ सकने के लिए दो शर्तें हैं। तुम्हें प्रगति करने के लिए प्रयास करना होगा और पूरी तरह सच्चे होना होगा, क्योंकि अगर तुम सच्चे नहीं होओगे तो तुम्हें अपने जीवन में अन्तर्दृष्टि कभी प्राप्त न होगी। तुम्हें अपने-आपको देख सकना और यह कह सकना चाहिये "मैं कितना छोटा हूं।"

अगर कोई चीज अपरिहार्य रूप से निश्चित है तो उसे बदला कैसे जा सकता है?

मैं तुम्हें एक सरल-सा उदाहरण दूंगी—लेकिन यह चेतना की किसी भी अवस्था में हो सकता है।

एक पत्थर गिरता है। अगर वह अपनी नियति पूरी करे तो वह जमीन पर आ गिरेगा। है न? लेकिन तुम वहां हो और तुम्हारे अन्दर प्राणिक या मानसिक कामना जगी—एक या दूसरी—और तुम पत्थर को हाथ में पकड़ लेते हो। तुमने पत्थर की नियति बदल दी। एक पत्ता गिरता है, वह अपनी सामान्य नियति के अनुसार चले तो धरती पर आ रहेगा। तुम्हारे प्राण में कामना उठी, तुम पत्ते को अपने हाथ में ले लेते हो, तुमने पत्ते की नियति बदल दी। यह चीज विश्व में करोड़ों बार होती है और चूंकि यह बहुत सामान्य है इसलिए कोई उसकी ओर ध्यान नहीं देता।

लेकिन कल्पना करो कि तुम्हारी चेतना का स्तर बहुत ऊंचा है। अगर तुम यहां की नियति में अभीप्सा, आवेग, प्रार्थना द्वारा उच्चतर चेतना ला सको, यानी अपनी उच्चतर चेतना तक पहुंच सको और उसे अपनी भौतिक नियति तक उतार लाओ तो हर चीज तुरन्त बदल जायेगी। लेकिन चूंकि तुम देख या समझ नहीं पाते कि क्या हो रहा है इसलिए तुम उसे संयोग या चमत्कार कह देते हो।

हर एक नियति भौतिक नियति में सक्रिय नहीं होती और अगर तुम इस भौतिक नियति को बदलना चाहो तो तुम्हें ऊपर से एक और नियति को नीचे उतार सकना चाहिये। इस तरह उसमें कोई नयी चीज प्रवेश करेगी—उच्चतर चेतना के ये "अवतरण" हमेशा होते रहते हैं लेकिन

चूंकि हम उन्हें समझ नहीं पाते, आने वाली "कोई नयी चीज" साधारण मनुष्यों द्वारा "चमत्कार" में बदल दी जाती है।

हम जड़-भौतिक जगत् में अतिमानसिक शक्ति और चेतना को उतार कर ठीक यही चीज करना चाहते हैं। पहले-पहल यह सीधे नहीं, प्रसार और विस्तार द्वारा काम करती है। उसका कार्य लगभग प्रच्छन्न रहता है। वह जैसे-जैसे भौतिक जगत् में उतरती है उसका कार्य अधिकाधिक प्रच्छन्न और विकृत होता जाता है, यहां तक कि लगभग अदृश्य हो जाता है। अगर वह बिना किसी विकार और छिपाव के सीधा कार्य कर सकती तो वह हर चीज को बिलकुल अप्रत्याशित रूप से बदल देती।

मैं आशा करती हूं कि एक दिन तुम्हें इसका ठोस उदाहरण मिलेगा।

६ जनवरी, १९५१

(यह वार्ता माताजी के लेख "रूपान्तर" और "बालक को हमेशा क्या याद रखना चाहिये" पर आधारित है)

"हम सर्वांगीण रूपान्तर चाहते हैं, शरीर के साथ-साथ उसकी सभी क्रियाओं का भी रूपान्तर। लेकिन किसी भी दूसरी चीज को हाथ में लेने से पहले अनिवार्य कदम जिसे चरितार्थ करना होगा, वह है चेतना का रूपान्तर...। यह तो बस एक आरम्भ है; बाहरी चेतना के लिए, बाहरी सक्रिय सत्ता के विभिन्न क्षेत्र और विभिन्न भाग आन्तरिक रूपान्तर के परिणामस्वरूप क्रमशः धीरे-धीरे रूपान्तरित होते हैं।"

मैं सर्वांगीण रूपान्तर और चेतना के रूपान्तर, जिसके बारे में मैंने पहले कहा था, इन दोनों में भेद क्यों कर रही हूं? चेतना और सत्ता के दूसरे भागों में क्या सम्बन्ध है? ये दूसरे भाग कौन-से हैं?

चेतना का यह रूपान्तर ऐसी चीज है जो उन सभी को प्राप्त होती है जिन्होंने योग-साधना की हो और जो भागवत उपस्थिति या अपनी सत्ता के परम सत्य का अनुभव पा चुके हों। मैं यह नहीं कहती कि "बहुतों ने" इसे चरितार्थ किया है, लेकिन फिर भी ऐसे काफी हैं। इस अनुभूति और सर्वांगीण रूपान्तर में अन्तर क्या है?

सर्वांगीण रूपान्तर में बाहरी प्रकृति और आन्तरिक चेतना, दोनों का रूपान्तर होता है। चरित्र, आदतों इत्यादि के साथ-साथ विचार और चीजों के बारे में मानसिक दृष्टिकोण भी पूरी तरह से बदल जाता है।

हां, लेकिन कोई ऐसी चीज भी है जिसमें परिवर्तन नहीं होता जब तक कि तुम खास ध्यान न दो और अपने प्रयास में डटे न रहो। वह क्या है? शरीर की चेतना। शरीर की चेतना क्या है? प्राणिक चेतना, निस्सन्देह—समग्र रूप में भौतिक चेतना। लेकिन फिर, इस समग्र भौतिक चेतना में, भौतिक मन है—ऐसा मन जो हर सामान्य वस्तु में व्यस्त रहता है और

अपने चारों तरफ की हर वस्तु को प्रत्युत्तर देता है। इसमें प्राणिक चेतना भी होती है जो संवेदनों, आवेगों, उत्साहों और कामनाओं की अभिज्ञता है, अन्त में है स्वयं भौतिक चेतना, जड़-भौतिक चेतना, शरीर की चेतना, और यही है जिसका अभी तक कभी पूरी तरह से रूपान्तर नहीं हुआ है। शरीर की कुल मिलाकर व्यापक चेतना का रूपान्तर तो हो चुका है, यानी तुम उन विचारों, उन आदतों की दासता से छुटकारा पा सकते हो जिन्हें तुम अब आगे अनिवार्य नहीं समझते। यह परिवर्तन हो सकता है, इसका परिवर्तन हुआ है। लेकिन जिसका परिवर्तन होना बाकी है वह है कोषाणुओं की चेतना।

कोषाणुओं में एक चेतना होती है, इसे ही हम "शरीर चेतना" कहते हैं। और यह पूरी तरह शरीर से बंधी होती है। इस चेतना को बदलने में बहुत कठिनाई होती है, क्योंकि यह सामूहिक सुझाव के प्रभाव के अधीन होती है जो पूरी तरह से रूपान्तर के विरुद्ध है। अतः तुम्हें इस सामूहिक सुझाव के साथ संघर्ष करना पड़ता है, न केवल वर्तमान के सामूहिक सुझाव के साथ बल्कि उस सामूहिक सुझाव के साथ भी जो समूची पार्थिव चेतना से आता है, पार्थिव मानव चेतना, जो मानव के एकदम प्रारम्भिक रूप के साथ-साथ आयी है। इससे पहले कि कोषाणु सहज रूप से परम सत्य के प्रति, जड़-भौतिक की शाश्वतता के प्रति सचेतन हों उस पर विजय पानी होगी।

निस्सन्देह, अभी तक, जिन्होंने इस सचेतन रूपान्तर को पाया है, जो अपने अन्दर, अपनी सत्ता की गहराइयों में, शाश्वत और अनन्त जीवन के प्रति सचेत हो गये हैं वे इस चेतना को बनाये रखने के लिए, निरन्तर अपनी आन्तरिक अनुभूति से सम्बन्ध जोड़ते हैं, अपने आन्तरिक निदिध्यासन में लौटते हैं, एक तरह से लगभग सतत ध्यान में निवास करते हैं। और जब वे ध्यान से निकलते हैं, तो उनकी बाहरी प्रकृति पहले जैसी ही होती है, और उनके सोचने और प्रतिक्रिया करने के तरीके में कोई विशेष अन्तर नहीं आता—बशर्ते कि वे काम करना पूरी तरह से छोड़ दें। लेकिन इस स्थिति में आन्तरिक सिद्धि, चेतना का यह रूपान्तर केवल उसी व्यक्ति के लिए उपयोगी होता है जिसने उसे प्राप्त किया है, तो भी, वह जड़-भौतिक की अवस्था या पार्थिव जीवन को जरा भी नहीं बदलता।

इस रूपान्तर की सफलता के लिए, मनुष्यों को, यहां तक कि सभी जीवित प्राणियों को अपने-अपने जड़-भौतिक परिवेश के साथ-साथ, रूपान्तरित होना होगा। अन्यथा चीजें जैसी हैं वैसी ही रहेंगी : एक व्यक्तिगत अनुभव पार्थिव जीवन को नहीं बदल सकता। रूपान्तर के पुराने विचारों में—यानी चैत्य सत्ता और आन्तरिक जीवन के साथ सचेतन होने—और जिस रूपान्तर की हम कल्पना करते और जिसके बारे में कहते हैं, उनमें यही मौलिक भेद है। केवल एक व्यक्ति या व्यक्तियों के एक समूह को या सभी व्यक्तियों को भी नहीं बल्कि जीवन को, न्यूनाधिक रूप से विकसित इस जड़-भौतिक जीवन की समस्त चेतना को, रूपान्तरित होना होगा। इस तरह के रूपान्तर के बिना संसार में वही कष्ट, वही विपत्तियां, वही नृशंसताएं बनी रहेंगी। कुछ गिने-चुने व्यक्ति अपने चैत्य-विकास द्वारा इससे छुटकारा पा लेंगे लेकिन सामान्य जनसमूह कष्ट की उसी अवस्था में रहेगा।

अगर केवल आन्तरिक चेतना का ही परिवर्तन हो, तो बाहरी सत्ता में कुछ अशुद्धियां नहीं रह जायेंगी क्या?

हां, निश्चय ही। हमारे योग और पुरानी योग-साधनाओं में, जो केवल आन्तरिक चेतना से ही सम्बन्ध रखती थीं, यही मौलिक भेद है। पुराने विचार थे—और कुछ लोग भगवद्गीता की भी इसी तरह से व्याख्या करते हैं—कि धुएं के बिना अग्नि नहीं होती, जीवन में अज्ञान के बिना कोई जीवन नहीं होता। यह सामान्य अनुभूति है, लेकिन यह हमारा विचार नहीं है, है न?

हम अनुभूति से जानते हैं कि अगर हम नीचे अवचेतना में उतरें, भौतिक चेतना से नीचे, अवचेतना में और उससे भी अधिक नीचे निश्चेतना में उतरें तो हम अपने अन्दर इस कुलागत रोग का स्रोत पा सकते हैं जो हमारी प्रारम्भिक शिक्षा और जिस परिवेश में हम रहते थे उससे आता है। यह व्यक्ति को, उसकी बाहरी प्रकृति को एक विशिष्टता प्रदान करती है, और सामान्यतः ऐसा माना जाता है कि हम इसी तरह जन्मे हैं और इसी तरह रहेंगे। लेकिन नीचे अवचेतना में, निश्चेतना में जाने पर तुम इस अवधारणा के स्रोत को ढूंढ़ सकते हो, और जो कुछ किया जा चुका है उसे

मिटा सकते हो, सचेतन और सोद्देश्य क्रिया द्वारा साधारण प्रकृति की प्रवृत्तियों और प्रतिक्रियाओं को परिवर्तित कर सकते हो और इस तरह अपने चरित्र का सचमुच रूपान्तर कर सकते हो। यह सर्वसुलभ प्राप्ति नहीं है, लेकिन ऐसा किया जा चुका है। इस तरह तुम निश्चित रूप से कह सकते हो कि न केवल यह किया जा सकता है, बल्कि यह किया जा चुका है। सर्वांगीण रूपान्तर की ओर यह पहला चरण है, लेकिन इसके बाद, कोषाणुओं का रूपान्तर रह जाता है जिसके बारे में मैंने पहले कहा था।

किसी बुलेटिन[१] में श्रीअरविन्द का एक लेख है जिसमें उन विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन किया गया है जिनके द्वारा समूची भौतिक सत्ता का परिवर्तन किया जा सकता है। और यही चीज है जो अब तक कभी नहीं की गयी।

क्या व्यक्ति के अन्दर की निश्चेतना उसकी अपनी होती है या सारी पृथ्वी की?

निश्चेतना में व्यष्टि रूप नहीं है और जब तुम अपने अन्दर नीचे निश्चेतना में जाते हो तो वह जड़-भौतिक की निश्चेतना होती है। हम यह नहीं कह सकते कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निश्चेतना होती है, क्योंकि तब तो वहां पहले से ही व्यष्टिभाव का आरम्भ हो चुका होगा, और जब तुम निश्चेतना में उतरते हो, तो शायद वह वैश्व नहीं तो कम-से-कम पार्थिव निश्चेतना तो होती ही है।

वह प्रकाश, वह चेतना जो निश्चेतना में, उसे रूपान्तरित करने के लिए उतरती है, आवश्यक रूप से ऐसी चेतना होनी चाहिये जो उसके इतनी पास हो कि उसे छू सके। किसी ऐसे प्रकाश की कल्पना करना सम्भव नहीं है—उदाहरण के लिए अतिमानसिक प्रकाश की—जो निश्चेतना को व्यष्टिभाव दे सके। लेकिन एक सचेतन, व्यष्टिगत सत्ता के द्वारा इस प्रकाश को नीचे निश्चेतना में लाकर उसे धीरे-धीरे सचेतन बनाया जा सकता है।

[१] श्रीअरविन्द शारीरिक शिक्षा-विभाग की पत्रिका।

सबसे पहले, अवचेतना को सचेतन होना होगा, और सचमुच सर्वांगीण रूपान्तर की मुख्य कठिनाई यही है कि चीजें निरन्तर अवचेतना से ऊपर उठती रहती हैं। तुम सोचते हो कि तुमने अमुक वृत्ति को वश में कर लिया है—उदाहरण के लिए, क्रोध को। तुम अपने क्रोध को वश में करने का भरसक प्रयास करते हो और एक हद तक सफल भी हो जाते हो, पर फिर वह किसी ऐसे कारण से अचानक ऊपर उठ आता है जिसे तुम जानते तक नहीं, मानों तुमने उसके लिए एकदम कुछ न किया हो, और तुम्हें सब कुछ फिर से शुरू करना पड़ता है। अगर वह सत्ता का रूपान्तरित भाग होता जो अपनी पुरानी आदतों की ओर चला जाता तो यह बहुत ही दुःखद स्थिति होती, लेकिन बात ऐसी नहीं है। यह जड़-भौतिक भाग, जड़-भौतिक जीवन है जिसे, हम कह सकते हैं कि, अवचेतन जीवन पोसता और सहारा देता है। और यह अवचेतना कुछ लोगों के चारों तरफ व्यष्टिरूप लेना शुरू करती है; इसका एक प्रकार की अवचेतना के साथ सादृश्य होता है जो हमारी अपनी अवचेतना जैसी होती है। और यही वह जगह है जहां जो चीजें तुमने दबा दी थीं या अपनी प्रकृति से निकाल बाहर कर दी थीं, चली जाती हैं—और एक दिन वे फिर से उठ खड़ी होती हैं। लेकिन अगर तुम अवचेतना में प्रकाश ला सको और उसे सचेतन बना सको तो ऐसा फिर न होगा।

बहुधा ऐसा अनुभव होता है कि हम किसी विकार या गलत वृत्ति के विरुद्ध न्यूनाधिक सफलता के साथ संघर्ष कर रहे हैं, लेकिन ठीक उस समय जब हम पूर्ण विजय की आशा छोड़ देते हैं, तो ऐसा लगता है मानों उसे बाहर से हटा दिया गया है। ऐसा क्यों होता है?

इसके दो मुख्य कारण हैं। ऐसी अवस्था में तुम अचानक ग्रहणशील बन सकते हो, और ग्रहणशीलता की इस स्थिति में तुम उस सहायता को पा लेते हो जो विकार को दूर करने के लिए आवश्यक होती है और इस तरह सहायता प्रभावशाली हो जाती है। दूसरा कारण यह है कि, धैर्य और अध्यवसाय के साथ कोशिश करते-करते, —शायद अजाने ही—तुम अवचेतना में कठिनाई के स्रोत को पा लेते हो। एक बार यह हो जाये तो तुम अपने

अन्दर जिसे रूपान्तरित करना चाहते थे उसका रूपान्तर करना आसान हो जाता है। लेकिन तुम्हें ऐसा लग सकता है कि यह रूपान्तर "बाहर" से आया है, क्योंकि जो कुछ हो रहा था उसका तुम्हें भान नहीं था। यह बाहर से नहीं आता, यह तुम्हारी सक्रिय चेतना के बाहर होता है, और तुम्हें केवल अपनी क्रिया के "परिणाम" का भान होता है। यह इन दोनों में से कोई एक बात हो सकती है या फिर दोनों ही हो सकती हैं।

*
* *

"बालक को हमेशा क्या याद रखना चाहिये?

"पूर्ण निष्कपटता की आवश्यकता।
"परम सत्य की अन्तिम विजय की निश्चिति।
"चरितार्थ करने की इच्छा के साथ निरन्तर प्रगति की सम्भावना।"

मैं पूर्ण निष्कपटता पर जोर क्यों देती हूं? शायद छोटे बच्चे निष्कपटता का अर्थ न जानते हों लेकिन बड़ों को निश्चित रूप से जानना चाहिये! तुम सभी बचपन में से गुजर चुके हो और शायद तुम्हें याद हो जब तुम छोटे थे तो तुम्हें क्या सिखाया गया था, क्या बताया गया था। प्रायः हमेशा, मां-बाप अपने बच्चों से कहते हैं, "तुम्हें झूठ नहीं बोलना चाहिये, झूठ बोलना बहुत बुरा है।" लेकिन दुर्भाग्य यह कि वे स्वयं बच्चों की उपस्थिति में झूठ बोलते हैं और फिर बच्चे आश्चर्य करते हैं कि वे उनसे ऐसी चीजें क्यों करवाना चाहते हैं जो वे स्वयं नहीं करते?

लेकिन, इसके अलावा, मैं इस बात पर इतना जोर क्यों देती हूं कि बच्चों को बहुत ही छोटी उम्र से यह बताना चाहिये कि सच्चा और निष्कपट होना एकदम अनिवार्य है? मैं उनकी बात नहीं कर रही जो यहीं बड़े हुए हैं, बल्कि उन्हें सम्बोधित कर रही हूं जो सामान्य परिवार में, सामान्य विचारों के साथ पले हैं। बच्चों को बहुधा यह सिखाया जाता है कि किस तरह दूसरों को नीचा दिखायें या दूसरों की आंखों में अच्छा दीखने के लिए किस तरह का स्वांग करें। कुछ मां-बाप बच्चों को डर से वश में

रखने की कोशिश करते हैं। और यह शिक्षा का सबसे बुरा सम्भव तरीका है, क्योंकि यह झूठ, धोखा, कपट और इस तरह की बाकी चीजों को उकसाता है। लेकिन अगर तुम बच्चों को बार-बार कुछ इस तरह की चीजें समझाओ : अगर तुम पूरी तरह से सच्चे और निष्कपट नहीं होते, केवल दूसरों के साथ ही नहीं बल्कि अपने साथ भी, अगर तुम कभी भी अपनी अपूर्णताओं, अपनी असफलताओं को छिपाने की कोशिश करते हो, तो तुम कभी कोई प्रगति नहीं करोगे, तुम जीवन-भर कोई प्रगति किये बिना हमेशा जैसे हो वैसे ही बने रहोगे। इसलिए, अगर तुम केवल इस प्रारम्भिक अचेतन अवस्था से विकसनशील चेतना में उठना चाहते हो तो उसके लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज, एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है निष्कपटता। अगर तुमने कोई ऐसा काम किया है जो तुम्हें नहीं करना चाहिये था, तो तुम्हें स्वयं अपने आगे उसे स्वीकार करना चाहिये; अगर तुम्हारे अन्दर कोई असराहनीय उचंग उठी हो तो तुम्हें उसकी ओर सीधा देख कर अपने-आप से कहना चाहिये, "यह अच्छा नहीं था", "यह घृणास्पद था" या यहां तक कि "यह धूर्ततापूर्ण था"।

और यह मत सोचो कि कुछ लोग हैं जिन पर यह नियम लागू नहीं होता, क्योंकि तुम भौतिक जगत् में भौतिक प्रकृति में हिस्सा लिये बिना नहीं जी सकते, और भौतिक जगत् मूल रूप में मिश्रण है। तुम देखोगे कि जब तुम पूरी तरह से सच्चे और निष्कपट बन जाओगे तो तुम्हारे अन्दर कुछ भी ऐसा नहीं है जो एकदम अमिश्रित हो। लेकिन केवल तभी जब तुम अपने-आपको अपनी चेतना के उच्चतम प्रकाश में आमने-सामने देख सको, तुम अपनी प्रकृति से जो कुछ निकालना चाहोगे वह सब गायब हो जायेगा। पूर्ण निष्कपटता को पाने की चेष्टा किये बिना, वह विकार, वह छोटी-सी छाया एक कोने में दुबकी रहती है और बाहर आने का अवसर ढूंढ़ती है।

मैं प्राण की बात नहीं कर रही जो पाखण्डी है। मैं केवल मन की बात कर रही हूं। यदि तुम्हारे अन्दर छोटी-सी अप्रिय संवेदना, जरा-सी व्याकुलता हो तो फिर देखो मन कितनी जल्दी तुम्हें अनुकूल सफाई दे देगा! वह दोष को परिस्थितियों के या किसी और के मत्थे मढ़ देता है, वह कहता है कि तुमने जो किया वह ठीक था और तुम उसके लिए जिम्मेवार नहीं हो,

इत्यादि। अगर तुम अपने अन्दर भली-भांति देखो तो तुम देखोगे कि ऐसा ही होता है और तुम इसे बहुत विनोदपूर्ण भी पाओगे! अगर बालक बहुत छोटी उम्र से ही इस तरह सतर्कता के साथ अपने-आपको परखना शुरू कर दे, ईमानदारी के साथ अपना निरीक्षण करे जिससे वह न तो अपने-आपको धोखा दे न ही दूसरों को धोखा दे, तो यह उसकी आदत बन जायेगी और वह बाद के बहुत सारे संघर्षों से बच जायेगा।

अब मैं अभिभावकों और अध्यापकों से कह रही हूं, क्योंकि बच्चों को यह सिखाना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि ऐसा "दिखाना" मानों वे बहुत अच्छे हैं, ऐसा "दिखाना" मानों वे आज्ञाकारी हैं, ऐसा "दिखाना" मानों वे अच्छी तरह से पढ़ रहे हैं, इत्यादि एकदम व्यर्थ होता है। बहुत बार, अभिभावक और शिक्षक इस मार्ग को अपनाते हैं कि वे उनकी "मानों ऐसे हैं" चीज को बढ़ावा देते हैं। बहुत बार देखा गया है कि अगर बच्चा आकर सहज रूप से अपनी गलती स्वीकार कर लेता है तो उसे डांट पड़ती है। यह अभिभावक के द्वारा की गयी गलतियों में सबसे बड़ी गलती है। तुम्हें स्वयं पर इतना काबू होना चाहिये कि तुम बच्चे को कभी न डांटो, चाहे उससे कोई बहुत कीमती और प्रिय वस्तु भी क्यों न टूट जाये। तुम्हें उससे बस इतना ही पूछना चाहिये, "तुमने यह कैसे किया?"—"क्या हुआ?" क्योंकि बच्चे को यह देखना चाहिये कि यह कैसे हुआ, ताकि वह अगली बार अधिक सावधान रहे। बस इतना ही। इस तरह तुम देखोगे कि बच्चा तुम्हें धोखा देने के बदले तुम्हारे प्रति सच्चा और निष्कपट होगा।

अपने चरित्र का रूपान्तर करने में सबसे बड़ी बाधा है पाखण्ड। अगर तुम किसी बच्चे के साथ व्यवहार करते हुए इस बात को हमेशा याद रखो तो तुम उसका बहुत भला करोगे। निश्चय ही तुम्हें उसे उपदेश या भाषण इत्यादि नहीं देने चाहियें। तुम्हें बस उसे इतना समझाना है कि सत्ता में एक आभिजात्य, एक महान् पवित्रता, सौन्दर्य के लिए एक महान् प्रेम होता है जो इतना शक्तिशाली होता है कि अधिक-से-अधिक धूर्त और अपराधी व्यक्ति भी सचमुच सुन्दर, वीरतापूर्ण या निःस्वार्थ कार्य को स्वीकार करने को बाधित होते हैं।

क्योंकि, मनुष्यों में, एक उपस्थिति होती है, पृथ्वी की सबसे अलौकिक परम उपस्थिति, और केवल कुछ विरल अपवादों को छोड़कर जिनके बारे

में यहां कहने की मुझे जरूरत नहीं, सभी में यह उपस्थिति उनके हृदय में सोयी पड़ी रहती है—भौतिक हृदय में नहीं बल्कि चैत्य केन्द्र में—और जब यह परम वैभव पर्याप्त पवित्रता के साथ अभिव्यक्त होता है, तो वह सब प्राणियों में इस परम उपस्थिति की प्रतिध्वनि को गुंजा देता है।

कपट को समाज की तरफ से इतना बढ़ावा क्यों मिलता है?

क्योंकि समाज पर सफलता का भूत सवार होता है।

क्या सचाई, और वफादारी में कोई भेद है?

दो भिन्न चीजों में हमेशा भेद होता है। निस्संदेह, सच्चे और निष्कपट हुए बिना वफादार होना और वफादार हुए बिना सच्चे होना बहुत कठिन है लेकिन मैं ऐसे लोगों को जानती हूं जो वफादार थे लेकिन फिर भी उनमें एक तरह की सचाई, निष्कपटता नहीं थी। इससे उल्टा भी असामान्य नहीं है। एक चीज से दूसरी अपने-आप नहीं आ जाती, लेकिन निश्चित रूप से ईमानदारी, ऋजुता, वफादारी और निष्कपटता का एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है। मेरे ख्याल से किसी के लिए वफादार और ईमानदार हुए बिना पूरी तरह से सच्चा और निष्कपट बनना बहुत कठिन है, लेकिन निश्चित ही इसमें सर्वाधिक प्रयास अपेक्षित है।

क्या यह सच नहीं है कि वफादारी किसी चीज या किसी व्यक्ति के प्रति किसी भावना तक सीमित होती है? क्या सचाई अधिक विस्तृत चीज नहीं होती?

हां, है। कह सकते हैं वफादारी में किसी व्यक्ति या किसी वस्तु के प्रति एक तरह के क्रमसोपान का सम्बन्ध होता है। एक तरह का पारस्परिक अवलम्बन होता है। सामान्य धारणा है कि वफादारी का अर्थ है अपने वचन का पालन करना, अपने कर्तव्य को बहुत ही सावधानी से निभाना इत्यादि।

अगर कोई जंगल में एकदम अकेला रहता हो तो भी वह पूर्ण सचाई

और निष्कपटता का पालन कर सकता है, लेकिन तुम वफादारी का पालन केवल समाज में, दूसरों के साथ सम्बन्ध रखते हुए कर सकते हो। ऐसा व्यक्ति जो भागवत उपस्थिति के प्रति आन्तरिक भक्तिभाव से पूरी तरह समर्पित हो वह उस परम उपस्थिति के प्रति वफादार हो सकता है। इसमें तुम्हारे सामने की किसी चीज के साथ या वैश्व सत्ता के साथ सम्बन्ध समाविष्ट है।

जर्मनी के जनरल हिटलर के प्रति वफादार थे, लेकिन वे अपने प्रति सच्चे और निष्कपट नहीं थे।

यह बहुत जटिल प्रश्न है। हो सकता है कि वे अपने आदर्श के सम्बन्ध में सच्चे रहे हों। पता नहीं।

मैं ऐसी सत्ताओं को जानती हूं जो भागवत जीवन, भागवत उपलब्धि के विरुद्ध सबसे अधिक सक्रिय यन्त्र थे। हां, एक हद तक, वे अपने आदर्श के प्रति बहुत वफादार, अपने...[१] में बहुत सच्चे और निष्कपट थे। ये सत्ताएं असुर कहलाती हैं, लेकिन जैसा कि मैंने अभी कहा, वे अपने आदर्श के प्रति सच्ची थीं।

तो सचाई, निष्कपटता पर्याप्त नहीं है?

मैंने यह नहीं कहा कि उनके अन्दर पूर्ण सचाई थी। मैंने बस इतना ही कहा कि वे बहुत सच्चे थे। शायद, उनकी सत्ता के किसी भाग में कोई ऐसी चीज थी जिसने जितना वह जानती थी उससे अधिक जानने की कोशिश नहीं की। यह बहुत सम्भव है।

कुछ लोग समझते हैं कि उन्होंने पूर्ण सचाई पा ली है।

अगर तुम्हें विश्वास है कि तुमने पूर्ण सचाई पा ली है, तो तुम विश्वास रखो कि तुम मिथ्यात्व में डूबे हुए हो।

[१] प्रतिलेखन में एक शब्द नहीं था।

१८ जनवरी, १९५१

(यह वार्ता माताजी के लेख "जीवन विज्ञान" पर आधारित है।)

चैत्य सत्ता की रचना आन्तरिक परम सत्य द्वारा होती है और वह उसके चारों ओर संगठित होती है।

*

प्राण कर्मों में जोश भरता है। यह इच्छाओं, आवेगों, कामनाओं, विद्रोह आदि का आसन है।

*

भौतिक वह ठोस क्षेत्र है जो विचारों को, प्राण की गतियों आदि को निश्चित रूप देता और सीमाबद्ध करता है। यह कर्मों का दृढ़ आधार है।

*

अपनी चैत्य सत्ता को पाने का अर्थ है एक तरह का दृढ़ विश्वास, चैत्य सत्ता के अस्तित्व पर श्रद्धा। तुम्हें उसके बारे में सचेत होना चाहिये और फिर जीवन और कर्मों को दिशा देने का काम उसे करने देना चाहिये, तुम्हें उसकी राय लेनी चाहिये और उसे अपना पथ-प्रदर्शक बनाना चाहिये। चैत्य सत्ता को अधिकाधिक सौंपने पर तुम अपनी सत्ता की गतिविधियों के बारे में सचेत होते जाते हो।

*

लक्ष्य का होना पर्याप्त नहीं है। हमेशा अपनी सभी गतिविधियों के मूल में जाने की कोशिश करते हुए लक्ष्य को पाने का संकल्प होना चाहिये।

*

आत्म-प्रभुत्व का अर्थ है अपने और अपनी गतिविधियों के बारे में

सचेतन होना, वही करना जिसे करने का तुमने निश्चय किया है, वह नहीं जिसे दूसरे करवाना चाहते हैं।

*
**

"अलग-अलग देश और काल में अपने अन्दर प्रत्यक्ष दर्शन (हमारे अन्दर स्थित चैत्य उपस्थिति) को पाने की और अन्त में उसके साथ एक हो जाने की बहुत-सी विधियां बतायी गयी हैं। कुछ विधियां मनोवैज्ञानिक हैं, कुछ धार्मिक, यहां तक कि कुछ यान्त्रिक भी हैं। वस्तुतः हर एक को वही विधि ढूंढ़नी होगी जो उसके लिए सबसे अधिक अनुकूल हो, और अगर व्यक्ति के अन्दर उत्कट और अटल अभीप्सा हो, आग्रही और क्रियात्मक संकल्प हो, तो उसे किसी-न-किसी तरीके से निश्चित रूप से वह सहायता मिलेगी जिसकी लक्ष्य तक पहुंचने के लिए आवश्यकता होगी। बाहरी रूप में पढ़कर अध्ययन द्वारा, और आन्तरिक रूप में एकाग्रता, ध्यान, अन्तःप्रकाश और अनुभूति द्वारा मिल सकती है।"

यान्त्रिक, धार्मिक और मनोवैज्ञानिक विधियों में क्या अन्तर है? धार्मिक विधियां वे हैं जो विभिन्न धर्मों के द्वारा अपनायी गयी हों। ऐसे धर्म बहुत नहीं हैं जो आन्तरिक परम सत्य की बात करते हैं; उनके लिए अपने भगवान् के साथ सम्पर्क में आना ही अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। स्वर्ग और नरक : यह घुमा-फिराकर कहने का तरीका होता है...[१]

मनोवैज्ञानिक पद्धतियां वे हैं जो चेतना की अवस्थाओं के साथ काम करती हैं, जो अपनी अन्तरात्मा को प्राप्त करने के प्रयास में समस्त क्रिया-कलापों से अलग होकर अनासक्ति, आत्म-तन्मयता, एकाग्रता, उच्चतर सद्वस्तु, समस्त बाह्य गतिविधि के त्याग आदि की सचेतन आन्तरिक अवस्था उत्पन्न करने का प्रयास करती हैं। मनोवैज्ञानिक पद्धति वह है जो विचारों, भावनाओं और कर्मों पर काम करती है।

यान्त्रिक विधियां वे हैं जो शुद्ध रूप से यान्त्रिक तरीकों पर आधारित

[१] प्रतिलेखन में शब्द नहीं थे।

होती हैं—तुम उनका अमुक तरह से उपयोग करके उनसे लाभ पा सकते हो। उदाहरण के लिए प्राणायाम को लो, यह अक्सर यान्त्रिक रूप से कार्य करता है लेकिन कभी-कभी यह सलाह दी जाती है कि इसके साथ अपने विचार की किसी एकाग्रता को जोड़ दो, किसी शब्द को जपो जैसा कि विवेकानन्द की शिक्षा में है। यह एक हद तक क्रिया करता है लेकिन फिर इसका प्रभाव धुंधला पड़ जाता है। मनुष्यों की ऐसी चेष्टाएं भिन्न-भिन्न कालों और स्थानों में व्यक्तिगत रूप में कुछ-कुछ सफल हुई हैं लेकिन वे कभी कोई सामूहिक परिणाम नहीं लायीं।

मनोवैज्ञानिक विधि कहीं अधिक कठिन होती है लेकिन होती बहुत प्रभावकारी है : कर्म करते हुए अपने आन्तरिक संकल्प की ऐसी अवस्था में रहो जो तुम्हारी सत्ता के परम सत्य के सिवाय और किसी चीज को अभिव्यक्त न करे, और सभी चीजों को उसी परम सत्य पर आश्रित रखो। निश्चय ही, अगर तुम कुछ न करो, तो यह ज्यादा आसान होता है लेकिन उस हालत में अपने को ठगना भी आसान होता है। जब तुम एकान्त की पूर्ण नीरवता में लोगों से बहुत दूर बैठकर न्यूनाधिक सन्तोष की दृष्टि से अपने-आपका निरीक्षण करते हो तो तुम यह कल्पना कर सकते हो कि तुम किसी बहुत ही अद्‌भुत चीज को चरितार्थ कर रहे हो। लेकिन जब तुम जीवन के प्रत्येक क्षण परीक्षा में से गुजरते हो, तुम्हें अपनी अपूर्णताओं, अपनी कमजोरियों, दिन में सौ बार अपनी छोटी-छोटी दुर्भावनाओं के उठने के बारे में सचेतन होने का अवसर मिलता है तो तुम अपने...[१] होने के भ्रम को पहचान लेते हो, और तब तुम्हारे प्रयास अधिक सच्चे और निष्कपट होते हैं।

इसीलिए किसी निर्जन वन में आश्रम बनाने का निश्चय करने की बजाय, जहां सब कुछ बहुत सुन्दर हो, बहुत शान्त हो, संसार से अलग-थलग रह कर केवल अपने छोटे-से स्व की परवाह करने के बजाय हम इससे उल्टा करने की कोशिश कर रहे हैं, यानी, जीवन के सभी क्रिया-कलापों को लेकर उन्हें यथासम्भव अधिक-से-अधिक सचेतन बनाने, और दूसरों के साथ सम्पर्क में अपनी सभी आन्तरिक वृत्तियों के प्रति अधिक

[१] प्रतिलेखन में शब्द नहीं है।

स्पष्ट रूप से अभिज्ञ होने की कोशिश कर रहे हैं।

कठिनाइयों से भागना उन्हें पार करने या उन पर विजय पाने का तरीका नहीं है। अगर तुम दुश्मन से दूर भागो तो उसे हरा नहीं पाओगे लेकिन उसे तुम्हें हराने का पूरा अवसर मिलेगा। इसीलिए हम हिमालय के किसी शिखर पर न होकर यहां पॉण्डिचेरी में हैं। यद्यपि मैं स्वीकार करती हूं कि हिमालय का शिखर आनन्ददायक होगा—लेकिन शायद इतना प्रभावकारी न हो।

अगली बार मैं मानसिक अनुशासन के बारे में कहूंगी, क्योंकि इस विषय पर कहने के लिए मेरे पास बहुत कुछ है। यह पथ पर भयंकर रोड़ा है; लोग समझते हैं कि उनमें श्रेष्ठ बुद्धि है और उसके आधार पर वे उन चीजों का मूल्यांकन करते हैं जिनके बारे में वे कुछ भी नहीं जानते। मनुष्यजाति के लिए अगर यह सबसे बड़ी बाधा न भी हो तो भी कम-से-कम बड़ी बाधाओं में से एक तो है ही। क्योंकि सब जानवरों में केवल मनुष्य ही ऐसा है—माफ करना, लेकिन हम अब भी पशु हैं—जो स्पष्ट वाणी का उपयोग कर सकता है और पृष्ठ पर पृष्ठ लिख सकता है... वह समझता है कि वह महान् है क्योंकि वह लिख सकता है और वह जो कुछ सोचता है, अनुभव करता है उसे दूसरों को पढ़ा भी सकता है। और फिर इस मानसिक महानता, मानसिक कुलीनता के ऊंचे आसन से वह अपने से कहीं अधिक श्रेष्ठ चीजों को बचकाना कहकर रफा-दफा कर देता है।

क्या चैत्य सत्ता आन्तरिक सत्य के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेती है?

वह अपने-आपको उसके चारों ओर व्यवस्थित कर लेती है और उसके साथ सम्पर्क स्थापित करती है। चैत्य को परम सत्य ही गति देता है। परम सत्य ऐसी चीज है जो शाश्वत रूप से स्वयं सत् है। वह देश और काल में किसी पर निर्भर नहीं होता जब कि चैत्य सत्ता ऐसी सत्ता है जो बढ़ती है, रूप लेती है, प्रगति करती है और अधिकाधिक व्यष्टि रूप लेती है। इस तरह वह इस परम सत्य को अभिव्यक्त करने में अधिकाधिक समर्थ हो

जाती है, उस शाश्वत सत्य को जो एक और चिरस्थायी है। चैत्य सत्ता प्रगतिशील सत्ता है अर्थात् चैत्य सत्ता और परम सत्य के बीच प्रगतिशील सम्बन्ध होता है। यह सम्भव नहीं है कि तुम्हें चैत्य सत्ता का तो भान हो पर साथ ही आन्तरिक सत्य का भान न हो। वे सब जिन्हें यह अनुभूति हो चुकी है—मानसिक अनुभूति नहीं बल्कि चैत्य सत्ता के साथ सम्पर्क की पूर्ण अनुभूति हुई है, चैत्य के बारे में अपनी बनायी हुई धारणा के साथ सम्पर्क नहीं बल्कि सचमुच ठोस सम्पर्क हुआ है—वे सब यही बात कहते हैं : जिस क्षण यह सम्पर्क होता है, व्यक्ति अपने अन्दर के शाश्वत सत्य के प्रति पूरी तरह से सचेतन हो जाता है और देखता है कि वही उसके जीवन का उद्देश्य और जगत् का पथ-प्रदर्शक है। व्यक्ति एक के बिना दूसरे को नहीं पा सकता; वास्तव में यही तुम्हें बोध कराता है कि तुम अपनी चैत्य सत्ता के सम्पर्क में हो। हो सकता है कि वह सचेतन सम्पर्क न हो, कोई ऐसी चीज हो जो तुम्हारे जीवन पर शासन करती है।

कुछ लोग कहते हैं कि उनकी इच्छा के बाहर की कोई ऐसी चीज होती है जो उनके सारे जीवन को व्यवस्थित करती है, उन्हें आवश्यक अवस्थाओं में रखती है, जो अनुकूल परिस्थितियों और व्यक्तियों को आकर्षित करती है यानी, जो उनकी बाहर की सभी चीजों को व्यवस्थित करती है। शायद वे अपनी बाहरी चेतना में कोई चीज चाहते थे और उन्होंने उसके लिए कार्य किया, लेकिन कोई और ही चीज आ गयी। फिर कुछ वर्षों के बाद उन्हें इसका पता चलता है कि वास्तव में यही होना चाहिये था। हो सकता था कि तुम अपने अन्दर चैत्य सत्ता के अस्तित्व के बारे में कुछ भी न जानते होओ फिर भी उसका पथ-प्रदर्शन पाते हो। क्योंकि किसी चीज से अभिज्ञ होने के लिए सबसे पहले तुम्हें यह स्वीकार करना होगा कि उस वस्तु का अस्तित्व है। कुछ लोग ऐसा नहीं करते हैं। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिनका अपनी चैत्य सत्ता के साथ सचमुच सम्पर्क था परन्तु वे यह नहीं जानते थे कि यह क्या है, क्योंकि उनके अन्दर ऐसा कुछ भी नहीं था जो इस चैत्य सम्पर्क के ज्ञान को समझता हो।

क्या अपनी चैत्य सत्ता के साथ किसी प्रकार के सम्पर्क के बिना, व्यक्ति शाश्वत परम सत्य के साथ सम्पर्क में हो सकता है?

हो सकता है कि विश्व की कुछ सत्ताओं का चैत्य सत्ता के सम्पर्क के बिना ही शाश्वत परम सत्य के साथ सीधा सम्पर्क हो—क्योंकि उनमें चैत्य सत्ता होती ही नहीं। लेकिन मनुष्य में हमेशा चैत्य सत्ता होती है और हमेशा इसी के द्वारा वह शाश्वत परम सत्य के साथ सम्पर्क में आता है। और चैत्य के साथ यह सम्पर्क साधारणतः उसके सामने उसी तरीके से प्रकट होता है, क्योंकि चैत्य सत्ता अपने साथ अपना लालित्य, अपनी भव्यता और आनन्द वहन करती है। चैत्य सत्ता मनुष्य की विशेषता है, और अगर हम बात की गहराई में उतरें तो शायद यही चीज है जो मनुष्य को श्रेष्ठता प्रदान करती है।

बहुत-से पुराने दर्शनों में सत्ता के वर्गीकरण का पूर्ण ज्ञान न था—वे चैत्य सत्ता और आन्तरिक परम सत्य के बारे में न जानते थे। इन मतों में बहुत सरल-सी धारणाएं थीं, जैसे, बाहरी और भीतरी चेतना, जाग्रत् और सुप्त चेतना। उनमें मानव मनोविज्ञान के बारे में ब्योरेवार ज्ञान न था, या था भी तो उन्होंने वह ज्ञान हर एक को देना ठीक न समझा। पहले ज्ञान यूं ही हर किसी को नहीं दिया जाता था। अमुक प्रकार का ज्ञान पाने से पहले मनुष्य को बहुत स्पष्ट रूप से अपनी सद्भावना दिखानी होती थी, पर्याप्त क्षमताएं, विकास का पर्याप्त स्तर दिखाना होता था। लेकिन आज, आधुनिक युग में यह ज्ञान छप जाता है और हर एक किताबें खरीद कर पढ़ सकता है और निश्चय ही तुम सैकड़ों ऐसे लोगों से मिलते हो जो यह जाने बिना कि उनका अर्थ क्या है "ढेरों शब्द" सीख चुके हैं। एक समय था जब हमारे यहां भी ऐसे लोग थे जो अपने अन्दर अतिमानस की सिद्धि पा लेने का दावा करते थे लेकिन यह भी न जानते थे कि वह है क्या।

प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में ज्ञान का यूं सामान्य होना अनिवार्य है। शायद चुनाव के दूसरे तरीके हैं, अधिक गुप्त, कम प्रत्यक्ष लेकिन अधिक प्रभावकारी।

२२ जनवरी, १९५१

(यह वार्ता माताजी के लेख "जीवन विज्ञान" पर आधारित है।)

> *"मन ज्ञान का यन्त्र नहीं है; वह ज्ञान पाने में असमर्थ है, लेकिन उसे ज्ञान द्वारा ही परिचालित होना चाहिये। ज्ञान मानव मन से कहीं ऊंचे क्षेत्र, शुद्ध विचारों के स्तर से कहीं ऊंचे स्तर की चीज है। मन को ऊपर से ज्ञान पाने और उसे अभिव्यक्त करने के लिए नीरव और सावधान होना चाहिये। क्योंकि यह रचना का, व्यवस्था और क्रिया का यन्त्र है इसीलिए इन चीजों में ही यह अपना पूरा-पूरा मूल्य और सच्ची उपयोगिता पाता है।"*

मन "रचना, व्यवस्था और क्रिया का यन्त्र है" क्यों? मन विचारों को रूप देता है। यह रचना-शक्ति मानसिक सत्ताओं की रचना करती है जिनका जीवन उस मन से अलग होता है जिसने इनकी रचना की थी—वे ऐसी सत्ताओं की तरह क्रिया करती हैं जो अर्ध-स्वतन्त्र होती हैं। तुम किसी विचार को रूप दे सकते हो, जो फिर यात्रा करता है, किसी दूसरे के अन्दर चला जाता है और अपने अन्दर के विचार को फैला देता है। ठीक भौतिक पदार्थ की तरह मानसिक पदार्थ भी होता है और इस स्तर पर मन असंख्य रूपों का सृजन कर सकता है। इन रूपों को वस्तुनिष्ठ करके देखा जा सकता है, यह सपनों की व्याख्याओं में से एक बहुत सामान्य व्याख्या है। जब तुम क्रियाशील होते हो और जब भौतिक आंखें भौतिक रूप में देख सकती हैं, उस समय कुछ लोग मानसिक रूप में भी देख सकते हैं। लेकिन जब तुम सोये होते हो, तुम्हारी आंखें बन्द होती हैं, भौतिक सोया होता है उस समय मन और प्राण क्रियाशील हो जाते हैं।

मानसिक स्तर पर मन द्वारा बनायी गयी सभी रचनाएं—मन विचारों को जो यथार्थ "रूप" देता है—लौटकर तुम्हारे सामने यूं प्रकट होती हैं मानों वे बाहर से आ रही हैं और वे तुम्हें सपने देती हैं। अधिकतर सपने इसी तरह के होते हैं। कुछ लोगों का मानसिक जीवन बहुत सचेतन होता है और वे मानसिक स्तर में प्रवेश करके उसी स्वतन्त्रता के साथ घूम-फिर

सकते हैं, जैसे भौतिक जीवन में घूमते हैं, ऐसे लोगों की रातें मानसिक रूप से वस्तुपरक होती हैं। लेकिन अधिकतर लोग यह करने में असमर्थ होते हैं: उनकी मानसिक गतिविधियां सोते समय चलती रहती हैं और आकार ग्रहण करती हैं, और ये आकार ही हैं जिन्हें वे स्वप्न कहते हैं।

बहुत ही सामान्य उदाहरण है—यह इसलिए मजेदार है क्योंकि बहुत जीवन्त है। अगर तुमने दिन में किसी के साथ झगड़ा किया है, हो सकता है तुम्हारी उस पर हाथ उठाने की इच्छा हुई हो, तुमने उसे बहुत अप्रिय बातें कहनी चाही हों, लेकिन तुम अपने पर काबू रख लेते हो, और वैसा नहीं करते, लेकिन तुम्हारा विचार, तुम्हारा मन क्रियाशील रहता है और नींद में तुम भयंकर सपना देखते हो। हाथ में लकड़ी लिये कोई तुम्हारी ओर बढ़ रहा है और तुम दोनों एक दूसरे को मारते हो और जोरदार लड़ाई होती है। और जब तुम जगते हो, अगर तुम नहीं जानते, अगर तुम यह नहीं समझ पाते कि क्या हुआ, तुम अपने-आपसे कहते हो, "कितना अप्रिय सपना देखा मैंने!" लेकिन सचमुच वह तुम्हारा अपना विचार था जो इस तरह तुम पर पलट कर आ गया था। इसलिए सावधान रहो। जब तुम ऐसा कोई सपना देखो कि कोई तुम्हारे प्रति निर्दय रहा है तो सबसे पहले अपने-आप से पूछो "उसके प्रति मेरे मन में कोई बुरा विचार तो नहीं आया था?"

सचमुच विचार ऐसी सत्ताएं हैं जो साधारणतः तब तक बनी रहती हैं जब तक चरितार्थ न कर ली जायें। कुछ लोग अपने ही विचारों में जकड़े रहते हैं। वे किसी चीज के बारे में सोचते हैं और विचार वापिस आकर उनके सिर में यूं चक्कर लगाता है मानों वह कोई ऐसी चीज हो जो बाहर से आयी हो। लेकिन वे उनकी अपनी ही रचनाएं होती हैं जो बार-बार आकर उसी मन पर प्रहार करती हैं जिसने उसकी रचना की थी। यह विषय का एक पहलू है।

क्या तुम्हें कभी ऐसे विचार का अनुभव हुआ है जो शब्दों का या एक वाक्य का रूप लेकर बार-बार तुम्हारे मन में वापिस आये। लेकिन अगर तुम इतने समझदार हो कि एक कागज पेंसिल लेकर उसे लिख डालो—तो बस उसका वहीं अन्त हो जायेगा, वह फिर तुम्हारे अन्दर नहीं आयेगा, तुमने उसे अपने अन्दर से निकाल बाहर कर दिया। उस चीज ने अपना थोड़ा-सा सन्तोष पा लिया, उसने पर्याप्त रूप में अपने-आपको अभिव्यक्त

कर दिया और अब वह वापिस नहीं आयेगी।

इससे भी ज्यादा रुचिकर और कुछ है : अगर तुम्हारे अन्दर कोई बुरा विचार हो जो तुम्हें सताता और परेशान करता हो तो उसे बहुत सतर्कता से, बहुत सावधानी के साथ, उसमें यथाशक्ति अपनी चेतना और संकल्प डालकर उसे एक कागज पर लिख लो, फिर उस कागज को एकाग्र होकर इस संकल्प के साथ फाड़ डालो कि विचार भी इसी तरह फट जाये। इस तरह तुम उससे छुटकारा पा लोगे।

मन व्यवस्था का एक यन्त्र है। बाहरी स्तर पर, कुछ लोगों के मन व्यवस्थित होते हैं। उन्होंने अपने विचारों को, अपने चिन्तन को व्यवस्थित किया है—ध्यान रहे, आमतौर पर इतना भी नहीं होता! लेकिन अगर तुम अपने अन्दर देखो, तो तुम पाओगे कि तुम्हारे अन्दर बहुत ज्यादा विरोधी विचार हैं और अगर तुमने उन्हें व्यवस्थित करने की सावधानी नहीं बरती है तो वे मानों तुम्हारे सिर में साथ-साथ रहेंगे, और बहुत अधिक अव्यवस्था पैदा करेंगे।

उदाहरण के लिए, मैं एक ऐसे आदमी को जानती थी जो अत्यधिक गुह्यवादी विचारों के साथ-ही-साथ प्रत्यक्षवादी यानी एकदम जड़-भौतिकतावादी विचारों को भी रखता था, जो उन सभी चीजों का निषेध थे जो शुद्ध रूप से जड़-भौतिक न हों। उसके अन्दर यह सब कुछ अस्त-व्यस्त था और वह व्यक्ति हमेशा सतत उलझन में कभी इधर तो कभी उधर लुढ़कता फिरता था। ध्यान रहे कि मैं इससे असहमत नहीं हूं कि तुम्हारे अन्दर ये सभी विचार हों। चीजों को एक साथ सभी पहलुओं से देखना अच्छा है, जैसा कि हम उस दिन कह रहे थे, एकदम से विरोधी भावों को भी सामञ्जस्य में लाने का तरीका होता है। लेकिन तुम्हें उसे करने का कष्ट उठाना होगा, तुम्हें उन्हें मन में व्यवस्थित करना होगा, वरना तुम अव्यवस्था में रहोगे। मैंने एक चीज और देखी है : वे लोग जिनका मन अस्त-व्यस्त होता है अपने कमरे और अपनी चीजें उसी तरह की अस्त-व्यस्तता की हालत में रखते हैं। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिनके मन में कुछ भी व्यवस्थित नहीं था और अगर तुम उनकी दराजें या अलमारियां खोलो तो तुम भयंकर अव्यवस्था पाओगे—सब कुछ गड्डमड्ड। ऐसे लोग भी हैं जो बुद्धिमान् हैं, उदाहरण के लिए लेखक—वे अपने पास कागज के पुर्जे रखते हैं जिन पर वे कुछ

लिखते हैं,—लेकिन संयोगवश अगर कभी उन्हें ऐसे पुरजों की आवश्यकता पड़े तो उन्हें ढूंढ़ने में एक घण्टा लगाना पड़ता है, सब कुछ उलट-पुलट करते हैं, या तो उन्हें कागज रद्दी की टोकरी में मिलता है या फिर उस दराज में जिसमें वे अपने रुमाल रखते हैं। तो ऐसा होता है, है न?

कुछ ऐसे लोग हैं जो बहुत बुद्धिमान् तो नहीं है, लेकिन उन्होंने अपने विचारों में कुछ व्यवस्था लाने का कष्ट उठाया है। अगर तुम उनकी आलमारी खोलो तो देखोगे कि उनके पास बहुत कम चीजें हैं, लेकिन चीजें सफाई के साथ अच्छी तरह व्यवस्थित हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि उन्होंने अपनी भौतिक चीजों को भी अपने विचारों की तरह व्यवस्थित किया है। इसलिये मन व्यवस्था का यन्त्र है।

जिन लोगों में व्यवस्था करने की कुछ क्षमता हो वे अपनी छोटी-मोटी निजी चीजों को व्यवस्थित करना शुरू कर सकते हैं, फिर अपने जीवन और जीवन की घटनाओं को व्यवस्थित कर सकते हैं। कुछ लोग उनके नीचे काम करने वाले हो सकते हैं—वे किसी व्यापार की, किसी विद्यालय की कुछ भी व्यवस्था कर सकते हैं। या फिर अगर उनमें शासन करने की शक्ति हो, तो वे किसी देश की शासन-व्यवस्था सम्भाल सकते हैं। कुछ में व्यवस्थापन की यह शक्ति होती है, कुछ में नहीं।

मैं तुम्हें एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण दूंगी जिसमें व्यवस्था करने की वह प्रतिभा थी। यह पुरानी कहानी है, लेकिन पुरानी कहानियां हमेशा सुनायी जा सकती हैं। मैं सर अकबर हैदरी को जानती थी जो हैदराबाद के वित्त मन्त्री थे, और बाद में प्रधान मन्त्री बने। उनके समय से पहले हैदराबाद की वित्तीय अवस्था एकदम अव्यवस्थित थी और सरकार को हमेशा पैसे की तंगी रहती थी। वह एक सम्पन्न इलाका था जिसे इस अवस्था में नहीं होना चाहिये था। फिर आये सर अकबर। वे वित्त मन्त्री बने और एकदम पहले ही साल से, वहां कुछ लाख की मालगुजारी प्राप्त हुई और सब कुछ इतनी अच्छी तरह व्यवस्थित हो गया कि दुनिया भर में शायद वही एक स्थान था जहां लोगों को कर नहीं देना पड़ता था, उन्हें कोई कर या शुल्क नहीं देना पड़ता था और राज्य में कभी पैसे की तंगी नहीं हुई और उनके मन्त्रित्व काल में ऐसा ही चलता रहा। लेकिन फिर वे बीमार पड़ गये और उन्हें छोड़ना पड़ा; और अन्त में उनका देहान्त हो

गया। उनके स्थान पर एक ऐसा व्यक्ति आया जिसमें व्यवस्थापन की यह प्रतिभा न थी और तुरन्त, पहले ही साल से, फिर से उन्हें करीब सतरह लाख[१] का घाटा हुआ! प्रदेश वही था, मालगुजारी वही थी, लोग वही थे, लेकिन अब सर अकबर की व्यवस्थापन की अद्‌भुत प्रतिभा न थी। यह सच्ची कहानी है। बहुत कम लोगों में यह प्रतिभा होती है।

यह ऐसा है मानों तुम्हारे सामने बहुत बड़ी संख्या में फुटकर चीजें रखी हों, उन चीजों के सभी सम्भव संयोजन बनाने में एक सदी लग जायेगी। कुछ लोगों को ऐसा करने की आवश्यकता नहीं होती—उन्हें अन्तर्दर्शन प्राप्त होता है और वे तुरन्त जान लेते हैं कि चीजों को कहां रखें और उनमें परस्पर एक ऐसा व्यवस्थित सम्बन्ध स्थापित करें जिससे किसी क्रमबद्ध और व्यवस्थित चीज की रचना हो सके। व्यवस्थापन की यह क्षमता जीवन में अनिवार्य है, और अगर तुम व्यवस्था करना सीखना चाहते हो तो अपनी दराज को व्यवस्थित करने से शुरू करो और इसका अन्त होगा तुम्हारे सिर की व्यवस्था में। कुछ लोगों को ये दोनों चीजें करनी चाहियें। विचारों को व्यवस्थित कर सकने से पहले तुम्हें उन्हें अपने मन में देखना चाहिये—कम-से-कम तुम अपने रुमालों और कपड़ों को तो देख ही सकते हो! तुम देखोगे कि बुद्धिमत्तापूर्ण व्यवस्था पाने के लिए एक हद तक सावधानी बरतनी पड़ती है—जिन चीजों का तुम रोज उपयोग करते हो उन्हें ऐसी चीजों के नीचे न रखो जिन्हें तुम महीने में एक बार उपयोग में लाते हो।

मन क्रिया का यन्त्र भी है। विचार योजनाएं बनाते हैं। मन किसी क्रिया की योजना बनाता है और उस स्वतन्त्र और क्रियाशील सत्ताओं की रचना करके, जिनके बारे में मैं पहले कह चुकी हूं, यह सत्ता के दूसरे भागों—प्राण और भौतिक—में हलचल पैदा कर देता है और उन्हें कार्य करने के लिए बाधित करता है। बहुधा ऐसा होता है कि तुम किसी-न-किसी क्रिया के बारे में सोचते हो—तुम उसे तुरन्त नहीं करते, लेकिन वह विचार जो इस क्रिया में अभिव्यक्त होना चाहता है बार-बार पलट कर

[१] यह राशि बहुत बड़ी लगती है। हो सकता है कि माताजी को ठीक-ठीक सूचना न दी गयी हो या ध्वन्यांकन से लिखते समय कुछ भूल हो गयी हो।—अनु०

आता है। शायद तुम अपने मन में ये शब्द तब तक सुनो—"मुझे यह करना चाहिये", "मुझे यह करना चाहिये" जब तक तुम सब कुछ छोड़कर वह न कर लो जिसके बारे में तुमने सोचा था। तो यह रही मन की क्रिया करने की शक्ति। इसे पाने से पहले, तुम्हें अपने मन को व्यवस्थित करना, उसमें सामञ्जस्य लाना और उसे अपने वश में करना सीखना चाहिये। जब तुम्हारे अन्दर यह शक्ति आ जाये तब तुम सोद्देश्य क्रिया कर सकते हो, जब कि अधिकतर लोग ऐसे विचारों द्वारा इधर-से-उधर लुढ़काये जाते हैं जिनकी रचना का उन्हें कोई भान तक नहीं होता।

ऐसे बहुत-से हैं जिनके विचार बाहर से आते हैं, उन्होंने अपने मन को व्यवस्थित करने की परवाह नहीं की। और उनका मन एक तरह का चौराहा होता है। अतः बाहर से आने वाले सभी विचार वहां मिलते हैं; कभी-कभी वहां टकराव भी होते हैं और तुम समझ नहीं पाते कि क्या करना चाहिये, तुम कुछ भी स्पष्ट नहीं देख पाते, इत्यादि। कुछ ऐसे हैं जो लगभग तटस्थ मनःस्थिति में रहते हैं। अचानक, वे अपने-आपको किसी ऐसे के संग पाते हैं जिसका मन सुव्यवस्थित है और वे भी स्पष्ट रूप से सोचना शुरू कर देते हैं—उन चीजों के बारे में जिनके विषय में उन्हें एक मिनट पहले कुछ भी पता न था। दूसरी ओर ऐसे भी होते हैं, जो सामान्यतया बहुत स्पष्ट रूप में सोचते हैं, और यथार्थ रूप से जानते हैं कि उनके मन में क्या चल रहा है। लेकिन वे अमुक लोगों के सम्पर्क में आते हैं और सब कुछ अस्त-व्यस्त, धुंधला और गड्डमड्ड हो जाता है। वे अपने विचारों का सूत्र खो बैठते हैं और जो कुछ कहना चाहते थे भूल जाते हैं। यह संसर्ग का प्रभाव है और यह मानसिक संसर्ग निरन्तर होता रहता है। ऐसे बहुत कम होते हैं जो बाहर से विचारों को प्राप्त नहीं करते। मैं ऐसे लोगों को जानती हूं—बहुत-से लोगों को—जिनके अन्दर, उदाहरण के लिए, बहुत दृढ़ श्रद्धा थी, जो अपने अन्दर बहुत स्पष्ट रूप से देख सकते थे, जो यह बहुत अच्छी तरह जानते थे कि उन्हें क्या करना है इत्यादि। लेकिन जब वे औरों के साथ होते और अभिव्यक्त करने के लिए उस सबको पकड़ने की कोशिश करते थे तो उसे वे न पकड़ पाते, इसके विपरीत कुछ ऐसा होता था जो अर्ध-अन्धकारमय अस्त-व्यस्तता में चला जाता था और वे अपने विचार को जो पहले एकदम स्पष्ट था, शब्दों का

रूप देने में अपने-आपको असमर्थ अनुभव करते थे।

और एक तथ्य है जिसे आध्यात्मिक माना जाता है, लेकिन जो केवल परोक्ष रूप से आध्यात्मिक है : वह है जब तुम अपने-आपको किसी ऐसे व्यक्ति के निकट पाते हो जिसने अपने विचार को वश में कर लिया हो और जिसने मानसिक नीरवता पा ली हो। अचानक तुम इस नीरवता को अपने अन्दर उतरता अनुभव करते हो और जो आधे घण्टे पहले तुम्हारे लिए असम्भव था वह अचानक यथार्थ बन जाता है। वैसे यह विरल ही होता है।

> *"यहां एक और अभ्यास है जो चेतना की प्रगति के लिए बहुत सहायक हो सकता है। जब कभी किसी विषय पर असहमति हो, जैसे किसी निर्णय के बारे में या कोई काम करने के बारे में तो तुम्हें कभी भी केवल अपनी धारणा या अपने दृष्टिकोण में बन्द नहीं रहना चाहिये। इसके विपरीत, तुम्हें झगड़ा या कलह करने के बजाय दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का, अपने-आपको उसके स्थान पर रखकर, समझने का प्रयास करना चाहिये और ऐसा हल निकालना चाहिये जो दोनों दलों को उचित रूप में सन्तुष्ट कर सके; सद्भावनापूर्ण मनुष्यों के लिए हमेशा एक-न-एक हल होता है।"*

यह मैंने विशेषकर कर्मठ लोगों के लिए कहा है जिनके विचार प्रत्यक्ष, रचनाशील, बहुत क्रियाशील और ऊर्जाशील होते हैं। वे चीजों को एक ही रेखा में देखते हैं और यह चीज काम करने के लिए अनिवार्य है; वे यह देख सकते हैं कि चीजों को अमुक-अमुक तरीके से करना चाहिये। हो सकता है दूसरे व्यक्ति का विचार भी उतना ही सक्रिय हो और वह कहे, "नहीं, इसे यूं करना चाहिये।" फिर वे झगड़ते हैं, और किसी समझौते पर नहीं आ पाते। लेकिन तुम एक मिनट के लिए शान्त रहकर चीज को शान्त मन के साथ देख सकते हो। जरूरी नहीं है कि दूसरा व्यक्ति अपनी दुर्भावना प्रकट कर रहा है, उसका दृष्टिकोण सच्चा या आंशिक रूप से सच्चा हो सकता है। प्रश्न है यह खोजने का कि वह इस तरह क्यों सोचता है। अतः तुम यह सोचने के लिए रुक जाओ और दूसरे व्यक्ति के दृष्टिकोण

के साथ अपने-आपको एक करने की कोशिश करो, अपने-आपको उसके स्थान पर रखकर स्वयं से कहो, "वह जिस तरह सोच रहा है उस तरह सोचने का कोई कारण हो सकता है, और वह कारण मेरे कारण से अधिक अच्छा भी हो सकता है।" और इस तरह, तुम्हें ऐसा कोई हल ढूंढ़ने का प्रयास करना ही चाहिये जो उचित रूप से दोनों पक्षों को सन्तुष्ट कर सके। भौतिक चीजों के साथ काम करते हुए ऐसा करना बहुत आवश्यक होता है। स्वभावतः मनुष्य केवल अपनी दृष्टि से देखता है और उसका अपना दृष्टिकोण हमेशा स्वार्थपूर्ण होता है। किसी दूसरे के दृष्टिकोण को स्वीकार करना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि यह दृष्टिकोण तुम्हारे लिए "हानिकर" हो सकता है। जहां राष्ट्रों की बात आती है वहां यह निर्विवाद सत्य है। काश! राष्ट्र सीधी-सादी चीजों के लिए हमेशा विवाद करने के, अपने ही स्वार्थों की रक्षा करने के और केवल अपना निजी दृष्टिकोण यानी अपना राष्ट्रीय व्यक्तित्व देखने के स्थान पर, यह समझने की कोशिश करते कि हर राष्ट्र को पृथ्वी पर जीने का अधिकार है और यह नहीं कि उन्हें इस अधिकार से वंचित किया जाये बल्कि ऐसा समझौता ढूंढ़ा जाये जो सबको सन्तुष्ट कर दे! समाधान हमेशा होता है लेकिन एक शर्त पर और शर्त हल ढूंढ़ने में नहीं बल्कि उसे कार्यान्वित करने के बारे में है: व्यक्तियों और राष्ट्रों में सद्‌भावना होनी चाहिये।

अगर उनमें सद्‌भावना न हो, अगर वे अच्छी तरह जानते हों कि वे गलती पर हैं लेकिन इसकी परवाह नहीं करते, अगर वे पूरी तरह से गलत हों और फिर भी अपने स्वार्थों से चिपके रहें, तो कुछ नहीं किया जा सकता—बस, तुम उन्हें उनके झगड़े और एक-दूसरे की बरबादी के लिए छोड़ सकते हो। लेकिन इसके विपरीत, अगर पारस्परिक सद्‌भावना हो तो हमेशा कोई-न-कोई अच्छा हल मिल जाता है।

क्या आप "समझौते" की परिभाषा बता सकती हैं?

यह एक मध्यवर्ती हल है। यह हमेशा सर्वोत्तम मार्ग नहीं होता। यह है एक तरह का सामञ्जस्य पाना।

मैं तुम्हें एक और कहानी सुनाती हूं, एक व्यापारी की कहानी जिसने

यात्रा पर जाते समय अपने पड़ोसी से कहा: "मैं यहां से जा रहा हूं, पता नहीं कब लौटूं। इस बड़े घड़े को तुम अपने पास रख लो, लौटकर मैं इसे ले लूंगा।" कुछ समय बाद, पड़ोसी को बर्तन खोलने का लोभ हुआ। उसने खोल लिया। धूल की मोटी तह के नीचे... उसने कुछ अशर्फियां देखीं! उसके लिए यह भारी प्रलोभन था और उसने सोचना शुरू किया, "शायद मेरा मित्र मर गया हो, शायद वह लौटकर न आये। इस धन को इसके अन्दर रखने का क्या फायदा? और मुझे पैसे की कितनी सख्त जरूरत है!" उसने कुछ सिक्के लिये, कुछ ज्यादा लिये, बहुत सारे लिये जब तक कि बर्तन के सारे सिक्के खतम न हो गये। जिन जैतून के फलों के नीचे वे सिक्के छिपे थे वे खराब हो गये थे इसलिए उसने उन्हें फेंक दिया।

एक दिन व्यापारी वापिस आ गया और उसने पड़ोसी से कहा, "मेरा बर्तन वापिस दे दो।" कुछ दिनों के बाद, पड़ोसी ने धूल से अटा हुआ बरतन लौटा दिया जैसा कि वह पहले था। व्यापारी ने बरतन खोला और उसे बस जैतून के कुछ ताजे फल मिले। सारा सोना जा चुका था। वह न्यायाधीश के पास गया और जो कुछ हुआ था उसे कह सुनाया। लेकिन न्यायाधीश ने कहा, "मैं इस बात पर कैसे विश्वास कर सकता हूं कि तुम सच बोल रहे हो? शायद तुम्हारा पड़ोसी सच बोल रहा हो।" उन्होंने बहस की लेकिन कोई हल न निकाल पाये। व्यापारी के सिर में दर्द हो रहा था, उसने सोचा, "आज रात मैं शहर में घूमने जाऊंगा।" और वह शहर में घूमने निकल पड़ा। अचानक उसने कुछ बच्चों को खेलते देखा। उनके पास एक घड़ा था, एक व्यापारी था, उसका एक पड़ोसी था और था एक न्यायाधीश! न्यायाधीश पड़ोसी से कह रहा था, "बर्तन का ढक्कन खोलो। लेकिन मैं तो ताजे जैतून देख रहा हूं! व्यापारी को गये कितना समय हुआ है?" "ढाई साल"। "सच! तो तुम इन जैतूनों को इतने लम्बे अरसे तक ताजा रख सके? क्या तुमने कभी संयोगवश बर्तन में क्या है यह देखने के लिए उसे खोला नहीं था और थोड़े-से ताजे जैतून उसमें नहीं रखे थे?" पड़ोसी भाग खड़ा हुआ। व्यापारी ने सोचा, "ये बच्चे मुझसे कहीं अधिक बुद्धिमान् हैं, इन्होंने हल तुरन्त ढूंढ़ निकाला। और वह अपने पड़ोसी के पास जा पहुंचा और उससे वही प्रश्न किया; और स्वभावत: पड़ोसी और कुछ न कह सका और उसे सच बात कबूल करनी पड़ी।

३० जनवरी, १९५१

यह वार्ता श्रीअरविन्द की पुस्तक "माता" के तीसरे अध्याय पर आधारित है।

> *"तुम्हारी श्रद्धा, निष्कपटता और समर्पण जितने अधिक पूर्ण होंगे उतनी ही अधिक कृपा और सुरक्षा तुम्हारे साथ होंगी। और जब दिव्य मां की कृपा और सुरक्षा तुम्हारे साथ हों तो कौन है जो तुम्हें छू सके या किससे डरने की जरूरत है तुम्हें? जरा-सी कृपा और सुरक्षा भी तुम्हें सभी कठिनाइयों, बाधाओं और संकटों से पार कर देगी। कृपा और सुरक्षा की पूरी उपस्थिति से घिरे हुए तुम सभी जोखिमों की परवाह किये बिना, किसी भी विरोध से प्रभावित हुए बिना, वह चाहे जितना सशक्त क्यों न हो, चाहे इस जगत् का हो या किसी अदृश्य जगत् का, सुरक्षित रूप से अपने पथ पर चलते चले जाओगे क्योंकि यह पथ उनका (दिव्य मां का) है। उनका स्पर्श कठिनाइयों को अवसरों में, असफलता को सफलता में और दुर्बलता को अस्खलित शक्ति में बदल सकता है। क्योंकि दिव्य मां की कृपा परम प्रभु की स्वीकृति है और आज हो या कल, उसका प्रभाव अवश्य होगा। यह ऐसी चीज है जो समादिष्ट, अवश्यम्भावी और अप्रतिरोध्य है।"*

> *"समादिष्ट" का क्या अर्थ है?*

यह "आदेश" शब्द से आया है। यह एक नियम है, एक ऐसी चीज है जो... उदाहरण के लिए, ऐसा आदेश है कि फलां-फलां चीज फलां-फलां तरीके से होगी। सरकारें आदेश देती हैं कि क्या करना और क्या नहीं करना है। ये सरकारी आज्ञाएं हैं। तो, यहां यह परम प्रभु की आज्ञा है, यह अनिवार्य आज्ञा है।

> *"कृपा और सुरक्षा की पूरी उपस्थिति से घिरे हुए तुम सुरक्षित रूप से अपने पथ पर चलते चले जाओगे क्योंकि यह पथ उनका (दिव्य मां का) है।"*

यह भी उसी तरह है। जिस क्षण से तुम भागवत कृपा के घेरे में होते हो और भागवत कृपा को ग्रहण करने के लिए उचित अवस्था में होते हो उसी क्षण से तुम्हारा और उनका पथ एक एवं समान हो जाता है।

"अदृश्य जगत्" कौन से हैं?

यह विकट प्रश्न है :

तुमने पढ़ा और सुना है कि हम सत्ता की विभिन्न अवस्थाओं से बने हैं : भौतिक, प्राणिक, मानसिक, चैत्य, आध्यात्मिक इत्यादि। हां तो, सत्ता की ये सभी आन्तरिक अवस्थाएं अदृश्य जगतों के समरूप होती हैं। एक भौतिक जगत्, एक प्राणिक जगत्, एक मानसिक जगत्, एक चैत्य जगत्, और बहुत-से आध्यात्मिक जगत् होते हैं, परम प्रभु के अधिकाधिक निकट पहुंचने वाली अधिकाधिक सूक्ष्म जगतों की पूरी ृंखला होती है। अतः चूंकि तुम्हारे अन्दर उसी के समरूप एक ृंखला होती है इसलिए अध्ययन करके और अपनी आन्तरिक सत्ता के प्रति अभिज्ञ होकर तुम क्रमशः इन अदृश्य जगतों की अभिज्ञता भी पा सकते हो। उदाहरण के लिए मन को लो : अगर मन सचेतन, समन्वित और सुनियन्त्रित हो, तो वह मानसिक जगत् में ठीक उसी तरह घूम-फिर सकता है जिस तरह शरीर भौतिक जगत् में घूमता है और यह देख सकता है कि यह मानसिक जगत् कैसा है, वहां क्या चल रहा है, और इसकी क्या विशेषताएं हैं इत्यादि। ये चीजें अपने-आपमें अदृश्य नहीं होतीं—वे भौतिक चेतना, भौतिक इन्द्रियों के लिए अदृश्य होती हैं लेकिन चेतना की समरूप आन्तरिक अवस्थाओं या समरूप आन्तरिक इन्द्रियों के लिए अदृश्य नहीं होतीं। क्योंकि रीतिबद्ध विकास द्वारा व्यक्ति इन जगतों की इन्द्रियों को प्राप्त कर सकता है और फिर भिन्न विशेषताओं के साथ समान जीवन जी सकता है। मेरे कहने का मतलब यह है कि अगर कोई अपने-आपको पर्याप्त रूप में विकसित कर ले तो वह इन जगतों में वस्तुपरक जीवन जी सकता है। नहीं तो हमारे लिए वे जगत् अस्तित्व नहीं रखते। अगर हमारे अन्दर विश्व में जो कुछ है उस सबके समरूप कुछ-न-कुछ न होता तो हमारे लिए इस विश्व का अस्तित्व ही न होता। यह केवल क्रमबद्ध और रीतिबद्ध विकास की बात

है। कुछ लोगों में यह चीज नाना प्रकार के कारणों से, साधारणतः पिछले जन्मों की लम्बी तैयारी के परिणामस्वरूप, सहज रूप में होती है, तो कभी विशेष अनुकूल परिस्थितियों के कारण। वे अमुक परिवेश में जन्म लेते हैं, उन्हें ऐसे मां-बाप मिलते हैं जिन्होंने ये क्षमताएं विकसित की हों, और उन्हें बचपन से ही इन क्षमताओं को विकसित करने में सहायता मिलती है। दूसरों को क्रमिक रूप में, आन्तरिक अनुशासन द्वारा इसे प्राप्त करना होता है; इसमें समय लगता है, काफी समय, लेकिन फिर भी बच्चे के मस्तिष्क को अमूर्त गणित पकड़ने में जितना समय लगता है उससे अधिक नहीं। उसमें वर्षों लग जाते हैं।

क्या ये अदृश्य जगत् विश्व में किसी निश्चित स्थान पर होते हैं?

निश्चय ही, ये विश्व का एक हिस्सा हैं। हां, तुम कह सकते हो कि वे निश्चित स्थान पर होते हैं। लेकिन इसे समझने के लिए, इन चीजों को समझने के लिए एक ऐसे मन की आवश्यकता है जो यह बात समझने में समर्थ हो कि एकदम-से जड़-भौतिक आयामों के अलावा और भी आयाम हैं। जब तुमसे कहा जाता है कि तुम्हारी चैत्य सत्ता तुम्हारे शरीर में है तो इसका यह अर्थ नहीं होता कि अगर तुम अपने शरीर को चीरो तो अन्दर तुम अपनी चैत्य सत्ता पा लोगे। तुम्हें अपना हृदय, अपना पेट बाकी सब मिलेगा, लेकिन चैत्य सत्ता नहीं। और फिर भी यह कहना ठीक है कि वह तुम्हारे अन्दर है। वह तुमसे भी परे जाती है लेकिन फिर वह दूसरे आयाम की बात है। और तुम कह सकते हो कि जितने भिन्न-भिन्न जगत् हैं उतने ही आयाम भी हैं। निश्चय ही, ये सभी अदृश्य जगत्—तथाकथित अदृश्य जगत्—जड़-भौतिक विश्व में समाये हुए हैं। लेकिन वे दूसरी वस्तुओं का स्थान नहीं घेरते। एक अपूर्ण तुलना के लिए—यह केवल तुलना के लिए ठीक है—तुम अपने मस्तिष्क में असंख्य विचार रख सकते हो और निश्चय ही तुम्हें यह अनुभव नहीं होता कि किसी और विचार को अन्दर आने देने के लिए एक विचार को निकाल बाहर करना होगा, होता है क्या? उस अर्थ में वे कोई स्थान नहीं घेरते।

"और उसकी रचना के लिए आवश्यक शर्तें।"[१]

ये असंख्य हैं और व्यक्ति और परिस्थितियों के साथ बदलती हैं। लेकिन अन्ततः, ये कम की जा सकती हैं। उन्होंने शुरू में या कुछ आगे चलकर कहा, मैं भूल रही हूं...हां यहां: "श्रद्धा, सचाई और समर्पण"। ये आवश्यक शर्तें हैं। बाद में वे बतलाते हैं कि किस तरह की श्रद्धा, किस तरह की सच्चाई, और कैसा समर्पण। विरोधी शक्तियों पर विजय पा सकने के लिए ये आवश्यक शर्तें हैं—तुम्हारी ओर से आवश्यक शर्तें। उनकी शर्तें हैं—मेरे ख्याल से वे इन्हें सहज रूप से निभाती हैं—अभीप्सा को उत्तर देना, शक्ति, स्पष्टदृष्टि, ज्ञान और इच्छा का होना। यह स्पष्ट है। अतः तुम्हें उन्हें कार्यक्षेत्र देना चाहिये, वे शर्तें निभानी चाहिये जिनमें वे कार्य कर सकें। और ये शर्तें हैं: श्रद्धा, सचाई और समर्पण—पवित्र, अमिश्रित श्रद्धा, पूर्ण, सर्वांगीण सचाई और अप्रतिबन्ध समर्पण। यही है जिसका उन्होंने तुम्हारे लिए वर्णन किया है।

क्या आयामों की संख्या सीमित है?

सीमित? या असीमित? तुम क्या पूछ रहे हो? कितने आयाम हैं? ओह, क्या हमें गणितज्ञों या गुह्यविद्याधरों से पूछना चाहिये? गुह्यविद्याधरों से!

हां, एक तरह से संख्या सीमित है, लेकिन चूंकि हर एक आयाम में सीमित संख्या के उपविभाग हैं और चूंकि इन उपविभागों के फिर बहुत बड़ी संख्या में उपविभाग हैं, इसलिए हम कह सकते हैं कि यह असीमित है—और फिर भी सीमित है। तो, अगर तुम कुछ समझ पाये तो भाग्यशाली हो!

अगर संख्या सीमित है तो कितने आयाम हैं?

बारह।

[१] "भगवान्, आध्यात्मिक और अतिमानसिक सत्य, धरती पर, अपने अन्दर एवं उन सभी के अन्दर जिनकी पुकार हुई है और जो चुने गये हैं, इस सत्य की चरितार्थता और इसकी रचना के लिए आवश्यक शर्तों और सभी विरोधी शक्तियों पर इसकी विजय के अलावा और किसी वस्तु की मांग न करो।"

"मानसिक सत्ता में अहंकारमयी श्रद्धा" कैसे हो सकती है?[१]

उन्होंने इसका वर्णन बहुत अच्छी तरह किया है : "महत्त्वाकांक्षा आदि से रंगी हुई"। मुझे लगता है अगर तुम इसे दूसरी तरह से रखो तो यह और भी ज्यादा सच है। क्या कोई ऐसी श्रद्धा है जिसमें ये चीजें जरा भी न हों। क्योंकि कहा गया है, बार-बार कहा गया है कि श्रद्धा, अगर वह पवित्र हो, तो कुछ भी उसका विरोध नहीं कर सकता, वह समर्थ है...। तो इसका मतलब यह हुआ कि अगर किसी के अन्दर एकदम से पवित्र श्रद्धा, इन सभी चीजों से अछूती, सच्ची श्रद्धा हो, *एकदम सच्ची,* तो कुछ भी असम्भव न होगा। व्यक्ति रातों-रात रूपान्तरित हो सकता है, वह अतिमानस को पल भर में उतार ला सकता है, श्रद्धा हो तो व्यक्ति कुछ भी, कुछ भी कर सकता है। लेकिन वह श्रद्धा शुद्ध श्रद्धा होनी चाहिये, उसमें किसी भी तरह की व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं या व्यक्तिगत इच्छा का मिश्रण नहीं होना चाहिये।

शुद्ध श्रद्धा एक सर्व-शक्तिमान् और दुर्निवार चीज है। तुम ऐसी श्रद्धा को बहुधा न पाओगे जो सर्व-शक्तिमान् और दुर्निवार हो, और यह चीज दिखाती है कि श्रद्धा पूरी तरह से शुद्ध नहीं है। प्रश्न को इस तरह रखना चाहिये : हममें से हर एक में श्रद्धा होती है, उदाहरण के लिए, किसी चीज में श्रद्धा, मान लो अपने अन्दर स्थित भागवत 'उपस्थिति' में श्रद्धा। अगर हमारी श्रद्धा शुद्ध हो तो हम अपने अन्दर स्थित भागवत उपस्थिति से तुरन्त अभिज्ञ हो जायेंगे। यह समझने के लिए बहुत सरल उदाहरण है। तुम्हारे अन्दर श्रद्धा है, वह है तो, लेकिन तुम्हें अनुभव नहीं होता। क्यों? क्योंकि श्रद्धा शुद्ध नहीं है। अगर श्रद्धा पूरी तरह से शुद्ध होती तो चीज तुरन्त हो जाती। यह एकदम सच है। तो अगर तुम इस बात से अभिज्ञ हो जाते हो कि चीज तुरत चरितार्थ नहीं हो रही है तो तुम यूं देखना शुरू कर सकते हो : लेकिन यह चरितार्थ क्यों नहीं हुई? मेरी श्रद्धा में क्या है आखिर? और अगर तुम उसी सच्ची निष्कपटता के साथ देखते चलो तो

[१] "मानसिक और प्राणिक सत्ता में, महत्त्वाकांक्षा, अहंकार, दम्भ, मानसिक दर्प, प्राणिक हठ, व्यक्तिगत मांग, निम्न प्रकृति के तुच्छ सन्तोष की कामना से रंगी हुई अहंकारपूर्ण श्रद्धा मद्धिम और धुएं से धुंधली लौ होती है जो ऊपर स्वर्ग की तरफ नहीं उठ सकती।"

तुम देखोगे कि उसमें बहुत-सी छोटी चीजें हैं, कितनी ही छोटी-छोटी चीजें—बड़ी नहीं, इतनी बड़ी—जो घृणास्पद हैं। छोटी-छोटी चीजें। कितनी ही बार जरा-सा गर्व आ जाता है और फिर कामना, बहुत उग्र नहीं—ऐसी जो अपने आपको बहुत नहीं दिखाती। वह जो तुम्हें महानता देती है, जो तुम्हें शक्ति देगी और जो सन्तोष देगी...।

अदृश्य जगतों में चीजें भौतिक जगत् की चीजों की तरह दिखायी देती हैं या जैसी स्वप्नों में दीखती हैं वैसी?

स्वप्न क्या है इस पर हमें सहमत होना चाहिये! कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं जिनमें तुम चीजों को इतनी यथार्थता के साथ, इतने ठोस रूप में देखते हो कि तुलना में जड़-भौतिक जीवन अवास्तविक-सा लगता है। ऐसे स्वप्न होते हैं जिनमें चीजें इतनी तीव्र, इतनी यथार्थ, इतनी ठोस, इतनी वस्तुपरक होती हैं और तुम पर इतनी जीवन्त छाप छोड़ जाती हैं कि तुम्हें जड़-भौतिक जगत् कुछ धुंधला-सा, बहुत साफ और बहुत स्पष्ट नहीं लगता। हां, तो अगर यह ऐसा स्वप्न हो तो उत्तर होगा, हां। लेकिन अगर ऐसा स्वप्न हो जहां चीजें असंगत और बेमेल रूप से एक-दूसरे के साथ भिड़ें, तो नहीं।

पहला कदम: तुम्हें सत्ता की विभिन्न अवस्थाओं में भेद करना और उन्हें निश्चित रूप से जानना आना चाहिये: यह प्राण का है, यह मन का है, यह चैत्य का है, यह जड़-भौतिक का है। और जैसा कि मैंने पहले कहा, इन सबमें उपविभाग होते हैं। एक जड़-भौतिक प्राण, एक प्राणिक प्राण, एक मानसिक प्राण, एक चैत्य से प्रभावित प्राण होता है। तुम्हें चीजों का स्पष्ट रूप से वर्गीकरण करना आना चाहिये और अपने अन्दर किसी भी तरह के मिश्रण, धुंधली भ्रान्ति को नहीं आने देना चाहिये: "ओह, यह क्रिया कहां से आयी? यह क्या है?"—ऐसे अस्पष्ट भाव। यह पहला कदम है।

दूसरा कदम: तुम इनमें से किसी एक आन्तरिक अवस्था पर एकाग्र होना सीखो। उसे चुनो जो तुम्हें सबसे अधिक जीवन्त, अपने अन्दर सबसे अधिक विकसित लगे और वहीं पर एकाग्र होना सीखो। और फिर तुम

वही कसरतें करो... मुझे पता नहीं, कि तुम्हें वे कसरतें याद हैं या नहीं जिन्हें तुम बहुत छोटी उम्र में चलने, पीने, बोलने, सुनने, अनुभव करने के लिए करते थे। तुम बहुत सारी कसरतें करते थे। सभी बच्चे बिना जाने कसरतें करते हैं, लेकिन वे करते जरूर हैं। तो तुम्हें कुछ-कुछ उसी दिशा में करना होगा। तुम्हें इन्द्रियों को जगाना होगा, उन्हें विकसित करना होगा, उन्हें सचेतन बनाना होगा, उन्हें अपने अवबोधों में स्वतन्त्र और यथार्थ बनाना होगा। यह दूसरी अवस्था है। इसमें समय लग सकता है, यह जल्दी भी हो सकती है, यह तुम्हारी आन्तरिक सत्ता के विकास के परिमाण पर निर्भर है।

उसके बाद—यह तो बस आरम्भ है—उसके बाद, तुम्हें सत्ता के अन्य सभी भागों से अपने-आपको पृथक् करके केवल उसी भाग पर एकाग्र होना सीखना होगा जिसमें तुम अनुभूति चाहते हो। तुम्हें इस तरह एकाग्र होना होगा कि तुम उसके समरूप बाहरी जगत् के सम्पर्क में आ जाओ। मेरा मतलब यह नहीं है कि यह बाह्यीकरण है जो तुम्हारे शरीर को अचेतनता की अवस्था में छोड़ जाता है। नहीं, बहुत तीव्र एकाग्रता पर्याप्त है, ऐसी शक्ति जो तुम्हें, तुम जिस स्थान पर एकाग्र हो रहे हो उसके अलावा और सभी चीजों से पृथक् कर दे। और फिर तुम तदनुरूप जगत् के साथ सम्पर्क में आते हो। तुम्हें यह चाहना होगा और धीरे-धीरे तुम इसे करना सीख जाओगे। और फिर जिन इन्द्रियों को तुमने क्रमशः विकसित किया है उन्हें अधिक अच्छा बनाने और उन्हें कार्यक्षेत्र देने के लिए आवश्यक कसरत करनी होगी। हो सकता है कि पहले पहल, तुम इस बाहरी जगत् में खो-से जाओ, हो सकता है, तुम चैन का अनुभव न करो। लेकिन धीरे-धीरे तुम इसके अभ्यस्त हो जाओगे और वहां उसी तरीके से घूमने फिरने लगोगे जो उनमें से हर एक जगत् के लिए उपयुक्त है।

लेकिन अगर तुम पहले से यह जान लो कि वे कैसे हैं तो—मन रचनाएं गढ़ने का इतना विलक्षण यन्त्र है कि वह तुम्हारे लिए एक पूरी अनुभूति का निर्माण कर देगा, और दुर्भाग्यवश, वह अनुभूति कभी असली न होगी—वह केवल एक मानसिक रचना होगी। अतः, साधारणतः, जब तुम इन गुह्य मामलों में किसी को निर्देश देना चाहते हो तो तुम शुरू में यह कभी नहीं बताते कि क्या होने वाला है। केवल जब व्यक्ति के अन्दर

कुछ हुआ हो, अगर वह कहे, "मेरे साथ यह हुआ", तो तुम कहते हो, "हां, यह ठीक है", या "नहीं, यह ठीक नहीं है।" तुम उसकी सहायता कर सकते हो। लेकिन तुम पहले से नहीं बताते, "तुम अमुक-अमुक स्थान पर जाओगे। वह ऐसा होगा। तुम्हें फलां-फलां अनुभूतियां होंगी" इत्यादि। क्योंकि तब ये सारी चीजें केवल बहुत ही अच्छी तरह निर्मित किसी मानसिक रचना के फलस्वरूप हो सकती हैं जिसमें तुम आसानी से आ-जा सकते हो। उस अवस्था में वह सचमुच स्वप्न होगा।

अगर कोई भागवत उपस्थिति से अभिज्ञ न हो, तो क्या वह भागवत सुरक्षा का सुख पा सकता है?

यह भी व्यक्ति पर निर्भर है। ऐसा हो सकता है; हमेशा ऐसा नहीं होता, पर यह हो सकता है। यह भी हो सकता है कि किसी व्यक्ति को कृपा के बारे में कुछ भी पता नहीं और भागवत कृपा उसे दी गयी। तुम जितना सोचते हो उससे कहीं अधिक बार ऐसा होता है।

क्या भाव हमेशा प्राणिक हलचल होता है?

यह भाव पर निर्भर है और उस पर भी निर्भर है कि तुम किस भाव की बात कर रहे हो। उदाहरण के लिए, एक ऐसी अवस्था है जहां, अगर तुम अपने-आपको बहुत ही यथार्थ, बहुत ही स्पष्ट, एकदम से विशेष चैत्य गति के सामने पाओ—ऐसा बहुत बार होता है—यह भाव इतना प्रबल होता है कि तुम्हारी आंखों में आंसू भर आते हैं। तुम दुःखी नहीं होते, तुम खुश नहीं होते। इनमें से किसी भी अवस्था में नहीं होते। वह किसी विशेष अनुभव से सम्बन्ध नहीं रखती, लेकिन वह भाव की एक तीव्रता होती है जो किसी ऐसी चीज से आती है जो स्पष्ट रूप में, यथार्थतः चैत्य होती है। यह तुम्हारे अपने अन्दर हो सकती है, लेकिन उससे भी बढ़कर, बहुधा यह किसी दूसरे में होती है। जब तुम्हारा किसी ऐसे कर्म के साथ, किसी ऐसी गति के साथ, किसी ऐसी अभिव्यक्ति के साथ सम्पर्क हो जाये जो चैत्य से सम्बन्धित हो तो एकदम आंखें भर आती हैं। अगर तुम उसे भाव कहो...

निश्चय ही यह भाव है। लेकिन साधारणतः यह एक चीज से आता है : भौतिक सत्ता की चैत्य जीवन के साथ सम्पर्क में आने की बहुत सचेतन न सही लेकिन तीव्र ललक से। जब वह चैत्य सत्ता के सम्पर्क में नहीं होती तो अपने-आपको दरिद्र, निराश्रित, अलग-थलग और परित्यक्त अनुभव करती है। लाखों में से एक भौतिक सत्ता भी इस तथ्य से अभिज्ञ नहीं है। इस तरह खो जाने का भाव, बिना किसी सुरक्षा, बिना किसी सहारे के यूं ही हवा में लटकने का भाव, किसी चीज का अभाव, लेकिन तुम यह नहीं जानते कि वह क्या है, कोई ऐसी चीज जिसे तुम समझ नहीं पाते लेकिन जिससे वंचित रहते हो, कहीं पर एक तरह का खालीपन; हां ये सारी चीजें, व्यक्ति जितना सोचता है उससे कहीं अधिक बार आती हैं—लोगों को इसका कोई आभास ही नहीं है कि यह क्या है। लेकिन, जब कभी किसी-न-किसी कारण से यह चेतना एकदम से स्पष्ट चैत्य तथ्य, चैत्य शक्तियों, चैत्य स्पन्दनों के सम्पर्क में आ जाती है तो वह अनुभव इतना शक्तिशाली, इतना शक्तिशाली होता है कि बहुधा, निश्चित रूप से, शरीर उसे सम्भाल नहीं पाता। यह एक तरह का आह्लाद होता है जो बहुत महान् है, जो हर तरफ से बह निकलता है, जिसे तुम अपने अन्दर नहीं रख सकते, नहीं बांध सकते। तो ऐसा होता है। अचानक एक तरह का उद्घाटन होता है जो बहुत सचेतन, बहुत स्पष्ट रूप में व्यक्त नहीं होता, ऐसा उद्घाटन...यही चीज है, मुझे यही पाना चाहिये। और वह इतना शक्तिशाली, इतना शक्तिशाली होता है कि तुम्हें एक भाव से भर देता है, जो इतनी चीजों से बना होता है कि तुम कह नहीं सकते कि वह क्या है। ये ऐसे भाव हैं जो प्राणिक नहीं हैं।

प्राणिक भाव एकदम से भिन्न प्रकृति के होते हैं—वे बहुत स्पष्ट, बहुत यथार्थ होते हैं, तुम उन्हें स्पष्ट रूप में व्यक्त कर सकते हो; वे उग्र होते हैं, साधारणतः वे तुम्हें एक तीव्रता, चञ्चलता और कभी-कभी एक महान् सन्तोष से भर देते हैं। और फिर इसके विपरीत चीज भी समान शक्ति के साथ आती है। इसलिए, बहुत-से लोग सोचते हैं—हम यह पहले ही कई बार कह चुके हैं—वे सोचते हैं कि वे प्रेम का अनुभव तभी करते हैं जब वह इस तरह का हो, जब वह प्राण में हो, जब वह प्राण की सभी क्रियाओं, इस समस्त तीव्रता, इस उग्रता, इस यथार्थता, इस चमक-दमक के साथ,

इस तड़क-भड़क के साथ आये। और जब यह न हो तो वे कहते हैं : "ओह, यह प्रेम नहीं है।"

और वस्तुतः, इसी तरह प्रेम विकृत होता है : फिर वह प्रेम नहीं रह जाता, उसमें आवेश का आरम्भ हो जाता है। और मनुष्यों में यह भूल प्रायः सार्वभौम होती है।

कुछ लोग बहुत पवित्र, बहुत उच्च, बहुत निःस्वार्थ चैत्य प्रेम से भरे होते हैं लेकिन वे उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते और समझते हैं कि वे ठण्डे, शुष्क और प्रेमहीन हैं क्योंकि उसमें प्राणिक स्पन्दन का यह मिश्रण नहीं होता। उनके लिए प्रेम का आरम्भ और अन्त इसी स्पन्दन में होता है।

और चूंकि यह स्पन्दन बहुत ही अस्थिर होता है जिसमें अवसाद और सन्तोष दोनों में ही सभी तरह की गतियां, प्रतिक्रियाएं और उग्रताएं होती हैं, इसलिए ऐसे लोगों के लिए प्रेम क्षणभंगुर होता है; उनके जीवन में प्रेम के कुछ क्षण होते हैं। वह कुछ घण्टे रह सकता है और फिर नीरस और सपाट बन जाता है और वे सोचते हैं कि प्रेम ने उन्हें छोड़ दिया है।

जैसा कि मैंने कहा, कुछ लोग इससे एकदम परे होते हैं, वे उसे इस तरीके से नियन्त्रित कर सकते हैं कि वह और किसी चीज के साथ न मिले; उनके अन्दर ऐसा चैत्य प्रेम होता है जो आत्म-विस्मृति, आत्मदान, अनुकम्पा, उदारता, जीवन की उदात्तता से भरपूर होता है। यह तादात्म्य की महान् शक्ति है। तो, इनमें से अधिकतर यही सोचते हैं कि वे ठंडे या निरपेक्ष हैं—वे बहुत अच्छे लोग होते हैं, लेकिन वे प्रेम नहीं करते—और कभी-कभी वे स्वयं भी नहीं जानते। मैं ऐसे लोगों को जानती हूं जो यह सोचते थे कि उनके अन्दर प्रेम नहीं है क्योंकि उनमें यह प्राणिक स्पन्दन नहीं था। साधारणतः लोग जब भावों के बारे में कहते हैं तो वे प्राणिक भावों की बात करते हैं। लेकिन एक दूसरी तरह का भाव भी है जो इससे अनन्तगुना उच्च कोटि का है और अपने-आपको उस तरीके से अभिव्यक्त नहीं करता। उसमें उतनी ही तीव्रता तो होती है लेकिन ऐसी तीव्रता जो नियन्त्रण में होती है, अन्तर्निहित, घनीभूत, एकाग्र होती है, और यह विलक्षण रूप से गतिशील शक्ति होती है।

सच्चा प्रेम असाधारण चीजें प्राप्त कर सकता है, लेकिन वह बहुत

विरल होता है। प्रेम के द्वारा प्रेमपात्र के लिए सभी तरह के चमत्कार किये जा सकते हैं—सबके लिए नहीं, बल्कि उन लोगों या उस व्यक्ति के लिए जिससे तुम प्रेम करते हो। लेकिन वह प्रेम सभी प्राणिक घपले से मुक्त, एकदम से पवित्र और निःस्वार्थ प्रेम होना चाहिये जो बदले में कुछ नहीं मांगता, बदले में किसी वस्तु की आशा नहीं करता।

१ फरवरी, १९५१

(यह वार्ता माताजी के लेख "स्वप्नों के बारे में" पर आधारित है।)

किसी चीज को याद रखने के लिए तुम्हें सबसे पहले उसके बारे में सचेतन होना होगा।

मैंने सपने में ऐसा समुद्र देखा जो नीरवता के साथ बहता ही रहा। इससे मुझे बहुत सुख मिला। मैं उसे भौतिक वस्तु की तरह अनुभव कर सकता था।

यह लगभग अनुभूति है—स्वप्न से अधिक।

कुछ ऐसे स्थान हैं जहां तुम सपने में समय-समय पर जाया करते हो। कभी-कभी कुछ महीनों के अन्तराल के बाद भी पुराना सपना जारी रह सकता है। कुछ सपने चेतावनी भी देते हैं जो बहुधा एक ही चीज को दोहराते हैं ताकि तुम उस पर ध्यान देने के लिए बाधित होओ।

मैंने हाल ही में "क" को देखा। क्या वह सचमुच वही व्यक्ति था?

व्यक्ति क्या है? जब तुम शरीर में होते हो तो तुम हमेशा शरीर को देखते हो और सोचते हो कि वह व्यक्ति है। लेकिन इस शरीर में अभी संपूर्ण सत्ता है, अभी सत्ता का एक भाग और इसका शेष भाग कहीं और। कभी सत्ता की एक क्रिया सामने आती है तो कभी दूसरी। चूंकि तुम्हारे सामने एक शरीर होता है जिसे तुम देखते रहते हो, इसलिए तुम सोचते हो कि जिस सत्ता को तुम देख रहे हो वह हमेशा एक होती है, लेकिन यह सच नहीं है। सत्ता का केन्द्र, चैत्य सत्ता बहुत कम ही अभिव्यक्त सत्ता का रूप धारण करती है; चैत्य सत्ता तो असंख्य शरीरों से गुजर चुकी होती है और अगर वह उन सभी शरीरों की छाप रखे भी तो परिणाम पहचाना न जा सकेगा, है न? जो व्यक्ति चला गया है उसका ख्याल ही प्रायः तुम्हारे वातावरण में या तुम्हारे अपने विचार में आकार बना लेता है। फिर एक स्वरूप-सा प्रकट होता है। वह मौजूद होता है, और यह तुम्हारी अपनी अवस्था पर

निर्भर है कि तुम उसे कितना स्पष्ट देखते हो। लेकिन तुम जो आकार देते हो वह तुम्हारी अपनी रचना होती है; तुम उस व्यक्ति के जिस भौतिक आकार को जानते हो वह उससे समानता रखता है। मैं यह नहीं कहती कि यह निरपेक्ष नियम है, लेकिन दस में से नौ बार ऐसा ही होता है।

और इसका मैं तुम्हें बहुत ही स्पष्ट उदाहरण दे सकती हूं। जब तुम किसी ऐसे व्यक्ति को देखते हो जिसे तुमने उसकी मृत्यु के समय नहीं देखा था, तो उस समय उसका जो आकार था तुम उसे नहीं देखते बल्कि उस आकार को देखते हो जो अन्तिम बार देखा था। अतः तुम आकार अपने-आप दे लेते हो। मैं यह नहीं कहती कि यह बिल्कुल ऐसा ही होता है। यह और तरह से भी हो सकता है, लेकिन यह इतना विरल है कि उसके बारे में न कहना ज्यादा अच्छा है। लाखों में से एक व्यक्ति ही इतना तटस्थ हो सकता है कि अपने अन्तर्दर्शन में कुछ भी न जोड़े। इसलिए, इसके बारे में न बोलना ही ज्यादा अच्छा है। यह एक आदर्श हो सकता है जिसके लिए अभीप्सा की जाये।

तुम जो कुछ देखते हो, सपने में हो या जागते हुए अन्तर्दर्शन देखने में, उसमें हमेशा काफी संख्या में आत्मपरक ब्योरे होते हैं। अगर तुम व्यक्ति को उस तरह न देखो जैसा कि तुमने उसे पिछली बार देखा था, तो भेद हमेशा तुम्हारे अपने विचार से आता है। अगर तुम सोचते हो कि व्यक्ति अधिक वृद्ध होना चाहिये, तो तुम उसे अधिक वृद्ध देखोगे; अगर सोचते हो कि उसे बीमार दीखना चाहिये, तो तुम उसे बीमार देखोगे, इत्यादि और इसी तरह चलता है। एकदम से तटस्थ दृष्टि जो पूरी तरह से सत्य के अनुरूप हो, बहुत विरल है। तुमने जिस स्वप्न की बात कही, उसका बस यही अर्थ है कि तुम्हारा उसके साथ स्निग्ध, प्यारभरा सम्बन्ध था इसलिए उसकी सत्ता का एक भाग तुम्हारे निकट ही रहा और किसी कारण से स्वप्न में तुम्हें उसका भान हुआ।

जब से मैं अपने परिवार को छोड़कर आया हूं, मैं नियमित रूप से हफ्ते में कम-से-कम एक बार उन्हें सपने में देखता हूं।

यह अवचेतना से आता है।

जैसा कि मैंने तुमसे कहा, मैंने स्वप्न के विषय का गहराई से अध्ययन किया है। जब तक कि तुम विशेष तरीके से एकाग्र न होओ तुम हमेशा ऐसी चीजों को सपने में देखते हो जिनका तुमने अनुभव किया, जिन्हें तुमने महसूस किया या जिनसे तुम कुछ समय पहले परिचित थे; लेकिन तुम अपने वर्तमान जीवन की चीजों को सपने में नहीं देखते। तुम उनके बारे में सोच सकते हो, तुम उन्हें याद कर सकते हो, लेकिन तुम उन्हें सपने में नहीं देखते। बहुत ही विरल उदाहरणों को छोड़कर स्वप्न अवचेतना में अंकित किसी चीज का उद्‌घाटन होता है। यह ध्वन्यांकन धीरे-धीरे होता है; चीज अपने-आपको अभिव्यक्त कर सके इससे पहले एक तरह के आत्मसात्करण की आवश्यकता होती है, और आत्मसात् करने में समय लग सकता है। तुम उन चीजों को, उन व्यक्तियों को सपने में देखते हो जिन्हें तुम बहुत पहले जानते थे; जब बीच में बहुत समय बीत गया हो तो साधारणतः यह स्वप्न किसी विशेष कारण से आता है। कुछ चीजें नियमित अन्तराल में आती हैं और तुम्हारे सपने में क्रियाओं का एक तरह का चक्र चलता है। अगर तुम किसी ऐसे बिन्दु को पा लो जहां उपस्थित चीजों ने पहले कभी तुम्हारे जीवन पर छाप डाली हो तो तुम दोनों को एक साथ देख सकते हो।

बहुत ही कम सपनों का अर्थ और निर्देशात्मक मूल्य होता है, लेकिन सभी सपने तुम्हारी चेतना की वर्तमान अवस्था बता सकते हैं और साथ-ही-साथ यह भी दिखा सकते हैं कि अवचेतना में चीजें कैसे मिलती हैं, कौन-से पार्थिव प्रभाव होते हैं, वे कैसी छाप छोड़ जाते हैं और किस तरह समन्वित होते हैं। यह अध्ययन करने का बहुत ही रुचिकर विषय है।

स्वप्नों में हम अधिकतर निष्क्रिय होते हैं और साधारण जीवन में जिस प्रकार प्रतिक्रिया करते हैं उस तरह नहीं करते। क्यों?

हमेशा नहीं। मैं ऐसे कई लोगों को जानती हूं जो सपने में अपने जाग्रत् जीवन से कहीं अधिक क्रियाशील थे और जो सपने में ऐसी चीजें करते थे जिन्हें करने में जाग्रत् अवस्था में वे कभी समर्थ न होते। उदाहरण के लिए मैं ऐसे लोगों को जानती हूं जो अपने जाग्रत् जीवन में डर के मारे जड़ हो

जाते थे लेकिन सपने में अदम्य साहस प्रकट करते थे और सचमुच वीरतापूर्ण कार्य करते थे। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अगर तुम किसी अप्रिय चीज का सपना देखो, तो कोई प्रतिक्रिया करने की जगह तुम कहते हो, "यह सब कुछ सपना है, यह सच नहीं है, यह असम्भव है," इत्यादि, और इस तरह सपना दूसरा रूप ले लेता है। निश्चय ही ऐसा होने के लिए जरूरी है कि तुम्हें यह भान हो कि तुम स्वप्न देख रहे हो। यह अवलोकन के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र है—सपने में तुम जो खोज कर सकते हो उसका कोई अन्त नहीं। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण बात है; जब तुम बहुत थके हो तो तुम्हें सोना नहीं चाहिये, क्योंकि अगर तुम सो जाओ, तो तुम एक तरह की अचेतना में गिर जाते हो जिसमें सपने तुम्हारे साथ मनमानी करते हैं, और तुम्हारी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। जैसा कि मैंने कहा कि भोजन से पहले विश्राम करना चाहिये उसी तरह मैं हर एक को सलाह दूंगी कि सोने से पहले आराम करो और उसके लिए, तुम्हें आराम करना आना चाहिये।

अब मैं तुम्हें अपना अभी हाल का सपना सुनाती हूं जिसे मैंने कुछ ही दिन पहले देखा था। सचमुच स्वप्न नहीं था, वह बहुत सचेतन था (मैं ऐसे लोगों में नहीं हूं जो उन चीजों को स्वप्न में देखते हैं जो बहुत पहले हुई हों; उनसे बचने के लिए क्या करना चाहिये, यह मैं जानती हूं।) मैं प्राण लोक में एक ऐसे स्थान पर गयी जहां मैं जानती हूं कि हमारे बहुत से लड़के आराम के लिए जाते हैं—अपनी भौतिक नींद में तो कम-से-कम ऐसा ही दीखता है मानों वे आराम कर रहे हैं। लेकिन चूंकि वे सचमुच आराम करना नहीं जानते, इसलिए ऊर्जा संचित करने की जगह वे उसे खो देते हैं। उनमें से कुछ बहुत बड़ी मात्रा में ऊर्जा खो बैठते हैं : अपनी ऊर्जा को पुनः प्राप्त करने के स्थान पर वे उसे नष्ट कर देते हैं। तो मैं वहां गयी और बहुत-सी पंक्तियां देखीं जिनमें खाट जैसी चीजें थीं लेकिन सचमुच खाटें नहीं थीं। मैं कमरे में इधर-से-उधर गयी और मैंने उन्हें आराम करते देखा, वे आराम करने की कोशिश कर रहे थे लेकिन चूंकि, वे आराम करना नहीं जानते थे इसलिए कर नहीं पा रहे थे। वे सभी लगभग पसरे हुए-से थे, उनकी आंखें खुली थीं—वे सो नहीं रहे थे, वह नींद नहीं थी, आराम की अवस्था थी, प्राण क्रियाशील नहीं बल्कि अर्ध-जाग्रत् अवस्था में था। मैंने उन्हें समझाया कि मैं उन्हें आराम करने का

ऐसा तरीका बता सकती हूं जिसमें वे अपनी ऊर्जा को नष्ट करने के स्थान पर उसे पुनः पा सकते हैं। और क्या तुम विश्वास करोगे, उनमें से केवल एक ही इसे सीखने का इच्छुक था! औरों ने कहा, "नहीं, हम जैसे हैं ठीक हैं, हम और कुछ सीखना नहीं चाहते!"

जब हम आपको सपने में देखते हैं तो आपको कहां देखते हैं? क्या वह हमेशा एक ही स्थान होता है?

बहुत-से भिन्न-भिन्न स्थान हैं, बहुत-से। वह सूक्ष्म-भौतिक में हो सकता है, क्योंकि तुम सब मेरे भौतिक वातावरण में रहते हो इसलिए बहुधा तुम मुझे सूक्ष्म-भौतिक में देखते हो। और वहां तुम अनुभव करते हो कि जो कुछ तुम देख रहे हो प्रायः जड़-भौतिक है जिसमें हल्का-सा विकार आ गया है। चूंकि वह सूक्ष्म-भौतिक होता है इसलिए तुम जो देखते हो उसे बहुत आसानी से याद रख सकते हो। बहुधा, आधी रात को मैं तुम्हारा ख्याल करती हूं (मैं इसके बारे में डींग नहीं मारना चाहती) और मैं बहुत-सी ऐसी बातों को याद रखती हूं जिनका कुछ महत्त्व होता है—मैं सब कुछ याद नहीं रखती क्योंकि स्मरणशक्ति को निरर्थक चीजों के बोझ से लादने का कोई मूल्य नहीं। और मैंने देखा है कि तुममें से कई याद रख सकने में समर्थ होते हैं, लेकिन तुम्हारी चेतना में चीज जरा-से विकार के साथ होती है—वह ठीक वही चीज नहीं होती।

कुछ लोग मुझे प्राणिक रूप से देख सकते हैं, कुछ और चैत्य रूप से देख सकते हैं (यह बहुत विरल होता है), कुछ मानसिक रूप से देख सकते हैं और कुछ अवचेतना में और कुछ परिस्थितियों में अचेतना में देखते हैं लेकिन यह विरल है।

कुछ लोगों के सामने मेरा रहस्य खुल जाता है और वे मुझे वैसा ही देखते हैं जैसी मैं हूं।

सोने से पहले आराम करने का क्या तरीका है?

बहुत-से तरीके हैं, लेकिन मैं तुम्हें एक बताऊंगी। सबसे पहले, तुम्हारा

शरीर बिस्तर या आरामकुर्सी पर आरामदेह अवस्था में होना चाहिये— कहीं भी हो लेकिन आरामदेह अवस्था में होना चाहिये। फिर तुम अपनी स्नायुओं को एक-के-बाद-एक ढीला छोड़ना सीखो जब तक कि तुम पूरी तरह से शिथिल न हो जाओ। तुम्हें अपनी सभी स्नायुओं को ढीला छोड़ना होगा—तुम सबको एक साथ भी ढीला छोड़ सकते हो, लेकिन शायद उन्हें एक-के-बाद-एक शिथिल करना ज्यादा आसान होता है और यह बहुत रुचिकर बन जाता है। इसके हो जाने पर, तुम अपने दिमाग को निश्चल और नीरव करो और साथ-ही-साथ अपने शरीर को लत्ते की तरह बिस्तर पर रख दो। तुम्हें अपने दिमाग को पूरी तरह से स्थिर और इतना अचञ्चल बनाना चाहिये कि उसे अपना भान तक न हो। और फिर, सोने की कोशिश मत करो, बल्कि इस अवस्था से नींद की अवस्था में उससे अभिज्ञ हुए बिना, बहुत ही धीरे-धीरे चले जाओ। अगली सुबह उठकर अपने-आपको तुम ऊर्जा से भरा हुआ अनुभव करोगे। लेकिन अगर तुम बहुत थककर, शान्त हुए बिना, अपने-आपको शिथिल करने की कोशिश भी किये बिना सोने जाओ तो तुम भारी, जड़ और अचेतन नींद में जा गिरोगे और प्राण अपनी सारी ऊर्जा खो बैठेगा। शायद उस पहली चीज का तुरन्त कोई असर न दीखे लेकिन ऐसी नींद में डूबने की जगह जहां तुम बहुत थक जाते हो, इसकी कोशिश करना ज्यादा अच्छा है।

सोने से पहले अगर तुम अपने-आपको बहुत-ही धीरे से शिथिल छोड़ दो तो सोने में तुम्हें बड़ा आनन्द मिलेगा, अगर तुम स्नायुओं को ढीला छोड़ सको, भले ही वह केवल एक हाथ या एक पैर की क्यों न हो, तुम देखोगे कि वह कितना सुखकर है। अगर तुम तनावभरी स्नायुओं से सोओगे तो तुम्हारी नींद बहुत अशान्त होगी और रात में तुम कई बार करवटें बदलोगे। इस तरह का आराम किसी काम का नहीं होता।

मैंने देखा है कि अगर मैं एक करवट सोऊं तो दूसरी करवट उठता हूं। क्या हमेशा ऐसा ही होता है?

नहीं, जरूरी नहीं है। कोई नियम नहीं है। अगर तुम सोचो कि ऐसा है तो ऐसा ही होगा!

मैंने देखा है कि अगर कोई मजेदार सपना मुझे जगा दे तो मैं फिर से सोकर उस सपने को देखना जारी रख सकता हूं।

हां, यह किया जा सकता है और इसका अर्थ है कि तुम अपने रात के क्रिया-कलाप के बारे में आंशिक रूप से सचेतन हो।

मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानता था जिसे एक ही स्वप्न तब तक आता रहा जब तक कि उसके लिए स्वप्न और प्रत्यक्ष में भेद करना असम्भव नहीं हो गया।

कभी-कभी ऐसा होता है कि जब तुम अपने शरीर से बाहर निकलते हो, सोते समय जब तुम अपना बाह्यीकरण करते हो और प्राणिक जगत् में सचेतन होते हो, तो तुम एक ऐसा प्राणिक जीवन जी सकते हो जो भौतिक जीवन के जितना सचेतन होता है। मैंने ऐसे लोग देखे हैं—शरीर से बाहर निकलने की यह क्षमता बहुतों में नहीं होती—लेकिन मैं ऐसे लोगों को जानती हूं जिनके अन्दर प्राण-जगत् के अनुभवों के लिए इतना प्रबल खिंचाव था कि अन्त में उन्होंने अपने शरीर में लौट आना अस्वीकार कर दिया, वे लगभग अनिश्चित काल तक सोते रहे।

अगर तुम प्राण-जगत् में सचेतन और आत्मनियन्त्रित रहो और अगर वहां तुम्हारे अन्दर अमुक शक्ति हो, तो परिस्थितियां अद्‌भुत होती हैं, भौतिक जगत् से अनन्त गुना अधिक विविध और भव्य। यह सच है कि प्राण-जगत् के कुछ क्षेत्र अद्‌भुत हैं।

अब मैं तुम्हें बताऊंगी कि यह कैसे होता है? जब तुम बहुत थके हुए होते हो और तुम्हें आराम की आवश्यकता है और अगर तुम अपना बाह्यीकरण करना जानते हो, अगर तुम अपने शरीर से बाहर निकलकर सचेतन रूप से प्राण-जगत् में प्रवेश करो, तो वहां प्राण-जगत् में ऐसे क्षेत्र हैं जो आश्चर्यकर अछूते जंगल की तरह हैं, जिनमें समृद्ध और समस्वर वनस्पति जगत् की भव्यता है और जहां दर्पण की तरह स्वच्छ और सुन्दर तड़ाग हैं। और सारा वातावरण पेड़-पौधों की जीवंत प्राण-शक्ति से भरा है, जहां सब तरह के हरे रंगों की छाया पानी में प्रतिबिम्बित होती है...

और वहां तुम इतनी जीवन-शक्ति इतने सौन्दर्य, इतनी समृद्धि और प्राचुर्य का अनुभव करते हो कि तुम ऊर्जा से भरपूर होकर उठते हो। और यह सब कितना वस्तुपरक होता है! मैं लोगों को, इसके बारे में यह बताये बिना कि वहां क्या होगा वहां ले जाने में सफल हुई और वे उस स्थान का ठीक वैसा ही वर्णन कर सके जैसा कि मैं कर सकती हूं, उन्हें बिल्कुल वैसी ही अनुभूति हुई। सोने से पहले वे एकदम से थक कर चूर थे और सुबह परिपूर्णता, शक्ति, ऊर्जा के अद्‌भुत अनुभव के साथ उठे। वे वहां कुछ मिनट ही रहे थे।

ऐसे क्षेत्र हैं—बहुत नहीं, लेकिन उनका अस्तित्व है। और दूसरी ओर, प्राण-जगत् में बहुत-से अप्रिय स्थान भी हैं और वहां न जाना ज्यादा अच्छा है। उनकी बात छोड़ो जो अपने शरीर से इतने बंधे, इतने चिपके हुए हैं कि वे अपने शरीर को छोड़ना तक नहीं चाहते, जो आसानी से अपने शरीर से बाहर निकलना सीख सकते हैं उन्हें भी यह बहुत सावधानी के साथ करना चाहिये। मैं यह चीज बहुत लोगों को नहीं सिखा पायी, क्योंकि इसका मतलब यह होगा कि अगर वे अकेले में, मेरी उपस्थिति के बिना इसे करते हैं तो कभी-कभी मेरी सुरक्षा के बिना वे अपने-आपको ऐसी अनुभूतियों में फंसा हुआ पायेंगे जो उनके लिए बहुत हानिकर हो सकती हैं।

प्राण-जगत् अति का जगत् है। उदाहरण के लिए अगर तुम प्राण जगत् में अंगूर का एक गुच्छा खा लो तो ३६ घण्टे तक तुम बिना भूख लगे आराम से पूरी तरह से पोषित रह सकते हो। लेकिन तुम्हारा ऐसी चीजों से भी सामना हो सकता है, ऐसी जगहों पर जा सकते हो जो क्षण-भर में तुम्हारी सारी ऊर्जा को खींच लें, और कभी-कभी तुम्हें बीमार छोड़ जायें या बीमारी के ऐसे उत्तर-प्रभाव छोड़ जायें जो प्राण-जगत् के होते हैं।

मैं एक ऐसी महिला को जानती थी जो गुह्यविद्या की दृष्टि से एकदम अद्‌भुत थी। वह अपने बारे में, अपनी सत्ता के सभी क्षेत्रों के बारे में पूरी तरह से सचेतन थी; एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जा-आ सकती थी—संक्षेप में, वह अद्‌भुत थी। हां, तो प्राण-जगत् में उसके साथ एक दुर्घटना हुई। वह अपने किसी बहुत ही प्रिय व्यक्ति को बचाने के लिए प्राण जगत् की कुछ सत्ताओं के साथ युद्ध कर रही थी और उसकी आंख में एक घूंसा

लगा। जब मैं उससे मिली तो वह एक आंख खो चुकी थी। प्राण-जगत् में बहुत से लोगों के साथ इस तरह की दुर्घटनाएं होती हैं और जग जाने पर घण्टों उन पर दुर्घटनाओं का असर रहता है। इसलिए तुम जिस किसी से यूं ही नहीं कह सकते, "अपने शरीर से बाहर निकलना सीखो," क्योंकि सुरक्षा के साथ यह कर सकने से पहले बहुत कुछ करना आवश्यक होता है। अगर मिथ्यात्व और हिंसा की शक्तियों के साथ तुम्हारा जरा भी सादृश्य हो, तो अपने भौतिक शरीर में रहना ही ज्यादा अच्छा है।

१२ नवम्बर, १९५२

अन्तरात्मा के सोपान

व्यक्ति एक बहुत ही जटिल सत्ता है; वह असंख्य तत्त्वों से बनी है, और हर तत्त्व एक स्वतन्त्र सत्ता है जिसका प्राय: अपना व्यक्तित्व होता है। इतना ही नहीं, एकदम से विरोधी तत्त्व भी एक ही साथ रहते हैं। अगर कोई विशेष गुण या सामर्थ्य होती है तो मानों उसका अस्तित्व मिटाने वाला एकदम उल्टा तत्त्व भी उसके साथ उससे लगा हुआ मिलेगा। मैंने एक ऐसा आदमी देखा है जो साहस, निर्भीकता, शौर्य में चरम सीमा तक पहुंचा हुआ था, वह किसी भी खतरे से विचलित न होता था, बड़ी-से-बड़ी मुसीबत का बिना क्षुब्ध हुए सामना करता था, सचमुच वीरों में सबसे बड़ा वीर था; और फिर भी मैंने उसी व्यक्ति को कुछ परिस्थितियों में एकदम-से तुच्छ आतंक के सामने सबसे बड़े कायर की तरह संत्रस्त होते देखा है। मैंने एक बहुत ही बड़े दानी को, खर्चे के, दान के किसी तरह के हिसाब-किताब के बिना, त्याग की भावना के बिना, बचाये रखने की जरा भी परवाह किये बिना, खुले हाथों बड़े-बड़े दान करते देखा है; और मैंने उसी आदमी को कुछ दूसरी अवस्थाओं में सबसे निकृष्ट कंजूस की भांति पाया है। और मैंने स्पष्ट मन, प्रकाश और बोध से भरे हुए, किसी भी विषय के तर्क को आसानी से समझ लेने वाले बहुत ही बुद्धिमान् व्यक्ति को देखा है और मैंने उसी व्यक्ति को बरबस अधिक-से-अधिक मूर्खता प्रदर्शित करते देखा है जिसे बिना किसी शिक्षा या बुद्धिवाला, एकदम-से सामान्य मनुष्य भी करने में असमर्थ होता। ये कोई काल्पनिक उदाहरण नहीं हैं: मैं जीवन में सचमुच ऐसे लोगों से मिली हूं।

जटिलता केवल विस्तार में ही नहीं गहराई में भी पायी जाती है। मनुष्य किसी एक स्तर पर नहीं बल्कि, एक साथ कई स्तरों पर जीता है। मानव चेतना में क्रमविन्यास का एक पैमाना होता है: क्रम में मनुष्य जितना अधिक ऊंचा उठता है उतनी ही अधिक संख्या में उसमें तत्त्व और व्यक्तित्व होते हैं। चाहे वह अधिकतर या मुख्य रूप से भौतिक, प्राणिक या मानसिक स्तर पर रहे या इन स्तरों के किसी विशेष भाग में रहे या

इनसे ऊपर के स्तर पर या इनसे परे रहे, उसी के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व की गठन, या मनोदैहिक गठन में भेद होंगे। व्यक्ति जितना ज्यादा ऊपर उठा हुआ होगा उतना समृद्ध उसका व्यक्तित्व होगा क्योंकि वह केवल अपने सामान्य स्तर पर नहीं रहता बल्कि उन सभी स्तरों पर रहता है जो उससे नीचे हैं और जिनको उसने पार कर लिया है। कुछ गुह्यवादियों का कहना है कि पूर्ण या सर्वांगीण मनुष्य के तीन सौ पैंसठ व्यक्तित्व होते हैं; असल में तो इससे भी कहीं अधिक हो सकते हैं। वेद तीन, तैंतीस, तैंतीस सौ और तैंतीस हजार देवों के बारे में कहते हैं जो मनुष्य में निवास कर सकते हैं—स्पष्ट है कि आधारभूत त्रयी निश्चय ही शरीर, जीवन या प्राण और मन की तीन अवस्थाएं या तीन जगत् हैं।

मनुष्य के इस आत्म-विरोध और विभाजन का क्या अर्थ है? इसे समझने के लिए हमें यह जानना और याद रखना चाहिये कि हर एक व्यक्ति अमुक गुण, या सामर्थ्य, किसी उपलब्धि विशेष का प्रतिनिधित्व करता है जिसे मूर्त रूप देना है। उसे अच्छे-से-अच्छी तरह कैसे किया जा सकता है? ऐसा कौन-सा उपाय है जिसके द्वारा मनुष्य किसी गुण को उसके शुद्धतम, उच्चतम, और पूर्णतम रूप में पा सकता है? उसका विरोध स्थापित करके यह किया जा सकता है। इसी तरह किसी शक्ति को बढ़ाया और अधिक बलवान् बनाया जा सकता है—उसे जो चीज कमजोर बनाये और उसका विरोध करे उसके विरुद्ध लड़कर और उस पर विजय पाकर। किसी गुण विशेष के सम्बन्ध में कमियां तुम्हें दिखाती हैं कि तुम्हें कहां सुधारना और मजबूत बनाना होगा और उसे पूर्णतया पूर्ण बनाने के लिए किस तरह बेहतर बनाना होगा। यह वह हथौड़ा है जो नरम और कमजोर लोहे को पीटकर कठोर इस्पात में बदल देता है। प्रारम्भिक असंगति उपयोगी होती है और तुम्हें अधिक ऊंचे सामञ्जस्य को लाने के लिए उसका उपयोग करना चाहिये। मनुष्य में आत्म-विरोध होने का यही रहस्य है। तुम ठीक उसी भाग में सबसे अधिक दुर्बल होते हो जो तुम्हारी महानतम सम्पदा बनने के लिए पूर्वनिर्धारित है।

तो हर व्यक्ति को एक उद्देश्य पूरा करना है, विश्व में उसे एक भूमिका निभानी है, उसे एक ऐसी भूमिका दी गयी है जिसे उसे वैश्व 'उद्देश्य' के लिए सीखना और निभाना है। उसके सिवाय उसे और कोई नहीं कर

सकता। यह उसे जीवन के अनुभवों द्वारा, यानी, एक जीवन में नहीं बल्कि जीवन-दर-जीवन सीखना और प्राप्त करना है। वस्तुतः जीवन की जीवन-श्रृंखला का यही अर्थ है जिसमें से व्यक्ति को गुजरना पड़ता है, यानी अनुभूतियां प्राप्त कर गुणों, विशेषताओं, शक्तियों और सामर्थ्यों की लच्छी में से सूत्र निकालकर वह अपने जीवन को, उसे जिस तरह बुनना हो बुन ले। विकसनशील व्यक्ति की केन्द्रीय चेतना, उसकी अन्तरतम सत्ता, उसका सच्चा व्यक्तित्व उसकी चैत्य सत्ता होती है। वह ऐसी होती है मानों प्रकाश का बहुत ही छोटा-सा स्फुलिंग हो जो सामान्य मनुष्यों में जीवन के अनुभवों के बहुत ही पीछे रहता है। विकसित आत्माओं में इस चैत्य चेतना में अधिक प्रकाश होता है—तीव्रता, घनता के साथ-साथ अधिक समृद्ध प्रकाश। इस तरह प्रौढ़ अन्तरात्माएं और नयी अन्तरात्माएं होती हैं। प्रौढ़ या पुरानी अन्तरात्माएं वे हैं जिन्होंने पूर्णता की समग्रता को पा लिया है या उसे पाने वाली हैं; वे असंख्य जीवनों से गुजर चुकी हैं और उन्होंने सबसे अधिक जटिल, लेकिन साथ-ही-साथ सबसे अधिक सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकसित कर लिया है। नयी अन्तरात्माएं वे हैं जो अभी-अभी केवल भौतिक-प्राणिक अस्तित्व से निकली हैं या निकल रही हैं, जो मुख्य रूप से शारीरिक जीवन से संबद्ध कम अवयवों से बनी सरल रचना की भांति होती हैं जिनमें जरा-सा मानसिक तत्त्व होता है। जो हो, अन्तरात्मा ही अनुभूतियों के साथ विकसित होती है और अन्तरात्मा ही व्यक्तित्व को रचती और उसे समृद्ध बनाती है। बाहरी जीवन का जो कोई भी अंश, मन, प्राण, शरीर का जो कोई तत्त्व चैत्य चेतना के साथ सम्पर्क में आने में सफल होता है, यानी, उसके प्रभाव में आ सकने में समर्थ होता है उसे लेकर वहां स्थापित कर दिया जाता है : वह चैत्य सत्ता में उसके जीवंत स्मरण और स्थायी सम्पत्ति के रूप में रहता है। ये ही तत्त्व हैं जो आधार बनाते हैं, उस नींव को खड़ा करते हैं जिस पर सर्वांगीण और सच्चे व्यक्तित्व की इमारत को उठना है।

अतः सबसे पहली चीज यह ढूंढ़ना है कि वह कौन-सी चीज है जिसे चरितार्थ करने के लिए तुम आये हो, तुम्हें कौन-सी भूमिका निभानी है, तुम्हारा विशेष उद्देश्य क्या है और वे क्षमताएं या गुण कौन-से हैं जिन्हें तुम्हें अभिव्यक्त करना है। तुम्हें इसके साथ-साथ इसकी खोज भी करनी है

कि वह कौन-सी चीज या चीजें हैं जो उसका विरोध करती हैं और उसे खिलने या पूर्णतया अभिव्यक्त नहीं होने देतीं। दूसरे शब्दों में, तुम्हें अपने-आपको जानना होगा, अपनी आत्मा या अपनी चैत्य सत्ता को पहचानना होगा।

उसके लिए तुम्हें पूरी तरह से सच्चा और पक्षपातहीन होना होगा। तुम्हें अपने-आपका इस तरह निरीक्षण करना होगा मानों तुम किसी और ही व्यक्ति का निरीक्षण और उसकी समालोचना कर रहे हो। तुम्हें इस विचार से शुरू न करना चाहिये कि यही मेरे जीवन का उद्देश्य है, यही मेरी विशेष सामर्थ्य है, मुझे यह या वह ही करना है, इसी में मेरी योग्यता या प्रतिभा छिपी है, इत्यादि। यह चीज तुम्हें उचित रास्ते से दूर हटा ले जायेगी। तुम्हारी सत्ता के बाहरी भाग की पसन्द या नापसन्द, तुम्हारा मानसिक, प्राणिक या भौतिक चुनाव तुम्हारे विकास की सच्ची दिशा का निश्चय नहीं करता। न ही तुम्हें यह कहकर इसके विपरीत वृत्ति अपनानी चाहिये "मैं इस विषय में किसी काम का नहीं हूं, उस विषय में बेकार हूं, यह मेरे लिए नहीं है।" न गर्व, न घमण्ड और न ही आत्म-उपेक्षा और झूठी नम्रता तुम्हें विचलित कर सके। जैसा कि मैंने कहा, तुम्हें एकदम-से पक्षपातहीन और बेलाग होना चाहिये। तुम्हें एक ऐसे दर्पण की तरह होना चाहिये जो सत्य को प्रतिबिम्बित तो करे परन्तु निर्णय न करे।

अगर तुम इस तरह की वृत्ति को बनाये रख सको, अगर तुम्हारी सत्ता में यह सुस्थिरता और शान्त भरोसा हो और जो अन्तर्दर्शन प्राप्त हो सकता है, तुम उसकी प्रतीक्षा करो तो कुछ ऐसा होता है : मानों तुम किसी अंधेरे, रवहीन जंगल में हो, तुम्हें सामने बस पानी की एक परत दिखायी देती है अन्धकारमयी और ठहरी हुई, जो मुश्किल से दीखती है— मानों अन्धकार में एक छोटा-सा तड़ाग जटित है; और धीरे-धीरे उस पर चन्द्रमा की एक किरण पड़ती है और शीतल, धुंधले प्रकाश में निश्चल तरल सतह उभर आती है। पहले सम्पर्क में तुम्हारी सत्ता का गुप्त सत्य इसी तरह तुम्हारे सामने प्रकट होगा : वहां तुम अपनी सत्ता के सच्चे गुणों को, अपने भागवत व्यक्तित्व की विशेषताओं को, तुम जो हो और तुम्हें जो बनना है उसे क्रमशः प्रतिबिम्बित होते देखोगे।

जिस किसी ने अपने-आपको यूं जान लिया है, अपने ऊपर अधिकार

पा लिया है, अपने अन्दर के सभी विरोधों पर विजय पा ली है, इस तथ्य के द्वारा उसने अपने-आपको और अपनी विजय को विस्तृत कर लिया है, और उन लोगों के लिए काम आसान कर दिया है जो ऐसी या इसी तरह की विजय पाना चाहते हैं। ये ही हैं वे अग्रगामी और श्रेष्ठ मनुष्य जो अपने अन्दर विजयी अभियान द्वारा दूसरों को विजय पाने में सहायता पहुंचाते हैं।

५ फरवरी, १९५६

दुःख-दर्द पर विजय कैसे पायी जा सकती है?

समस्या इतनी आसान नहीं है। दुःख-दर्द के कारण असंख्य होते हैं और उनके स्तरों में भी बहुत भेद होता है, यद्यपि दुःख-दर्द की उत्पत्ति वही एक ही है और वह किसी भागवत-विरोधी इच्छा की प्रारम्भिक क्रिया से आता है। इसे आसानी से समझने के लिए तुम दुःख-दर्द को दो स्पष्ट श्रेणियों में बांट सकते हो, यद्यपि व्यवहार में वे बहुधा मिले-जुले होते हैं।

पहला शुद्ध रूप से अहंकारभरा होता है और इस अनुभव से आता है कि तुम्हारे अधिकारों पर आघात पहुंचाया गया है, तुम्हारी जरूरतों से तुम्हें वंचित रखा गया है, तुम्हें क्षुब्ध किया गया है, तुम्हें लूटा गया है, तुमसे विश्वासघात किया गया है और तुम्हें दुःख पहुंचाया गया है इत्यादि। कष्ट की यह सारी श्रेणी स्पष्ट रूप से विरोधी क्रिया का परिणाम है और यह न केवल चेतना के अन्दर विरोधी प्रभाव के लिए दरवाजा खोल देता है बल्कि संसार में उसके कार्य करने के सबसे अधिक शक्तिशाली तरीकों में से एक है, और वह सबसे अधिक शक्तिशाली बन जाता है अगर उसके साथ-साथ उसका स्वाभाविक और सहज परिणाम भी आ जाये; यानी, शक्तिशाली में घृणा और प्रतिशोध लेने की इच्छा, और निर्बल में निराशा और मरने की इच्छा।

दूसरी तरह के दुःख-दर्द का, जिसका प्रारम्भिक *कारण* विरोधी शक्ति के द्वारा रचा गया वियोग का दर्द है, स्वभाव एकदम उल्टा होता है : यह वह दुःख-दर्द है जो भागवत अनुकम्पा से आता है, उस प्रेम का दुःख-दर्द जिसे जगत् के कष्टों के प्रति सहानुभूति का अनुभव होता है, उसका मूल कारण या प्रभाव चाहे कुछ भी क्यों न हो। लेकिन इस दुःख-दर्द में, जो शुद्ध रूप से चैत्य प्रकार का है, किसी तरह का अहं, किसी तरह की आत्म-दया नहीं होती; वह शान्ति, शक्ति और कार्य-शक्ति, भविष्य के प्रति श्रद्धा और विजय के संकल्प से भरा होता है; वह दया नहीं दिखाता बल्कि ढाढ़स बंधाता है, वह दूसरों की अज्ञानमयी गतिविधि के साथ अपने-आपको एक नहीं कर लेता बल्कि उसे सुधारता और प्रकाशित करता है।

यह स्पष्ट है कि जो मूलतः पवित्र है, केवल वही जो *पूर्ण* रूप में *दिव्य* है, उस दुःख-दर्द का अनुभव कर सकता है; लेकिन आंशिक रूप में कुछ क्षणों के लिए, अहंकार के घने बादलों के पीछे बिजली की कौंध की तरह यह उन सभी के अन्दर प्रकट होता है जिनका हृदय विशाल और उदार है। लेकिन, बहुधा, व्यक्तिगत चेतना में यह उस तुच्छ और नगण्य आत्मदया से मिला-जुला होता है जो अवसाद और दुर्बलता का कारण है। फिर भी, जब तुम इतने पर्याप्त रूप में जागरूक होते हो कि इस मिश्रण को अस्वीकार कर दो, या उसे कम-से-कम कर दो, तो तुम जल्दी ही समझ लेते हो कि यह भागवत अनुकम्पा, भव्य और शाश्वत हर्ष पर आधारित है, केवल उसी में जगत् को अज्ञान और दुर्दशा से उबारने की शक्ति और बल है।

और यह दुःख-दर्द भी केवल तभी विलीन होगा जब जगत् से विरोधी शक्ति के और उसकी क्रिया के सभी प्रभाव पूरी तरह से विलीन हो जायेंगे।

१९५८ (१)

पिछले जन्मों की यादें

अगर तुम्हें चीजें सच्चे रूप में कहनी हों, तो तुम्हें सब कुछ विस्तार में कहना होगा। अपने अस्सी वर्ष के जीवनकाल में मुझे जो असंख्य अनुभूतियां हुई हैं उनमें से कई इतनी विविध और ऊपर से देखने में इतनी विरोधी थीं कि तुम कह सकते हो : आखिर सब कुछ सम्भव है। तो अगर मैं तुम्हें एक सूत्र में पिरोये बिना, पिछले जीवनों की कुछ बातें बतलाऊं तो वह रूढ़िवाद के लिए दरवाजा खोलना होगा। एक दिन तुम कहोगे, "माताजी ने ऐसा कहा था, माताजी ने वैसा कहा था।" और इसी तरह, दुर्भाग्यवश, रूढ़ियां बनती हैं।

अतः अनुभूतियों की बहुलता और इस बात की असम्भावना देखकर कि मुझे अपना जीवन बातें करते और लिखते हुए बिताना चाहिये, तुम्हें अपने-आपसे कहना चाहिये कि सब कुछ सम्भव है और तुम्हें रूढ़िवादी नहीं होना चाहिये। फिर भी मैं तुम्हें कुछ सामान्य संकेत दे दूं।

जब तुम अपने दिव्य मूल के साथ सचेतन रूप से तादात्म्य स्थापित कर लो केवल तभी, तुम सचमुच पिछले जन्मों की यादों के बारे में कह सकते हो। श्रीअरविन्द, आत्मा जिन रूपों में निवास करती है उनमें उसकी उत्तरोत्तर अभिव्यक्ति की बात करते हैं। जब तुम इस अभिव्यक्ति के शिखर पर जा पहुंचते हो तो तुम्हें एक अन्तर्दर्शन प्राप्त होता है जो पार किये हुए मार्ग में डुबकी लगाता है और तुम्हें बातें याद आ जाती हैं।

लेकिन यह स्मृति मानसिक प्रकार की नहीं होती। जो लोग यह दावा करते हैं कि वे मध्ययुग के फलाने जागीरदार या अमुक व्यक्ति थे जो अमुक समय में अमुक स्थान पर रहता था, तो वे स्वैरी होते हैं, वे अपनी ही मानसिक कल्पना के शिकार होते हैं। वस्तुतः पिछले जीवनों की जो चीजें रहती हैं वे ऐसे सुन्दर चित्र नहीं होते जिनमें तुम किसी दुर्ग के महान् स्वामी या किसी सेना के विजयी सेनापति दीखते हो—यह सब कोरी कल्पना है। स्मृति में रहते हैं वे क्षण जब चैत्य सत्ता तुम्हारी सत्ता की गहराइयों से उठकर अपने-आपको तुम्हारे सामने प्रकट करती है, यानी,

उन क्षणों की स्मृति, जब तुम पूरी तरह से सचेतन थे। क्रमविकास के मार्ग में चेतना का यह विकास क्रमशः सम्पन्न होता है और पिछले जन्मों की स्मृतियां साधारणतः क्रम-विकास के क्रान्तिक क्षणों में, जिन निश्चित मोड़ों ने तुम्हारी चेतना के विकास को अंकित किया था, उन तक सीमित रहती हैं।

उस समय जब तुम अपने जीवन की ऐसी घड़ियों में जीते हो तो तुम इस बात को याद रखने की कोई परवाह नहीं करते कि तुम महाशय 'क' थे, फलां थे, फलां स्थान पर फलां युग में रहते थे; तुम्हें अपनी सामाजिक पद-प्रतिष्ठा की स्मृति नहीं रहती। इसके विपरीत, तुम इन नगण्य बाहरी चीजों, साधनों और नश्वर चीजों की सारी चेतना खो देते हो, ताकि तुम पूरी तरह आत्मा के अन्तर्दर्शन के प्रकाश या दिव्य सम्पर्क में रह सको। जब तुम्हें पिछले जन्मों के ऐसे क्षणों की स्मृति रहती है तो वह स्मृति इतनी तीव्र होती है कि वह बहुत ही निकट, उस समय भी जीवन्त प्रतीत होती है, और हमारे वर्तमान जीवन की अधिकांश सामान्य स्मृतियों से कहीं अधिक जीवन्त होती है। कभी-कभी, स्वप्न में जब तुम चेतना के अमुक स्तरों के सम्पर्क में आते हो तो तुम्हारे अन्दर, ऐसी तीव्रताभरी स्पन्दनशील रंगों की स्मृति रह जाती है जो भौतिक जगत् के रंगों और चीजों से अधिक तीव्र होते हैं। ये ही सच्ची चेतना के क्षण होते हैं, और सभी चीजों पर एक अद्‌भुत चमक छा जाती है, सब कुछ मुखर हो उठता है, एक ऐसी गुणवत्ता से अनुप्राणित हो उठता है जो साधारण दृष्टि से चूक जाता है।

अन्तरात्मा के साथ सम्पर्क के ये क्षण बहुधा वे क्षण होते हैं जो हमारे जीवन के किसी निर्णायक मोड़, एक आगे बढ़े कदम, चेतना में विकास को अंकित करते हैं, और बहुधा यह किसी संकटकाल, किसी बहुत ही तीव्र अवस्था के समय आता है, जब पूरी सत्ता में कोई पुकार उठती है, ऐसी प्रबल पुकार कि आन्तरिक चेतना उस ढकनेवाली निश्चेतना की परतों को भेद कर सतह पर पूरी तरह से प्रभासित होती हुई प्रकट होती है। सत्ता की यह पुकार, जब बहुत प्रबल होती है तो भगवान् के किसी निर्गत अंश को, किसी दिव्य व्यक्तित्व, किसी दिव्य पहलू को नीचे उतार सकती है जो तुम्हारे व्यक्तित्व के साथ निश्चित मुहूर्त में एक हो जाती है ताकि तुम

निश्चित कार्य कर सको, किसी युद्ध को जीत सको, किसी-न-किसी वस्तु को अभिव्यक्त कर सको। काम खतम हो जाने पर, बहुधा वह निर्गत अंश पीछे हट जाता है। तब तुम उन परिस्थितियों की स्मृति को बनाये रख सकते हो जो अन्तर्दर्शन या प्रेरणा के उन क्षणों में थी; तुम उस दृश्य को दुबारा देखते हो, उस समय पहनी अपनी पोशाक का रंग, अपनी त्वचा का रंग देखते हो और उस समय की आसपास की चीजों को देखते हो—सब कुछ असामान्य तीव्रता के साथ अमिट रूप से अंकित हो जाता है, क्योंकि उस समय साधारण जीवन की वस्तुएं अपने-आपको सच्ची तीव्रता और अपने सच्चे रंग में प्रकट करती हैं। वह चेतना जो स्वयं को तुम्हारे अन्दर प्रकट करती है, वह साथ-साथ उस चेतना को भी प्रकट करती है जो वस्तुओं में है। कभी-कभी इन ब्योरों की सहायता से तुम उस युग को फिर से रूप दे सकते हो जिसमें तुम रहे थे या जो कर्म तुमने किया था, उस देश को ढूंढ़ सकते हो जिसमें तुम रहे थे; लेकिन लम्बी-चौड़ी हांकना और कल्पना को सच्चाई समझ लेना भी बहुत आसान होता है।

तुम्हें यह भी नहीं सोच लेना चाहिये कि बीते जीवनों की सभी स्मृतियां महान् संकट या महत्त्वपूर्ण उद्देश्य या अन्तर्दर्शन की घड़ियां थीं। कभी-कभी वे बहुत ही सरल, पारदर्शक क्षण होते हैं जब सत्ता का सर्वांगीण, पूर्ण सामञ्जस्य प्रकट होता है। हो सकता है कि वह एकदम से नगण्य बाहरी अवस्थाओं से सम्बन्धित हो।

उस क्षण तुम्हारे बिल्कुल आसपास की चीजों के अलावा, चैत्य सत्ता के तुम्हारे सम्पर्क के अलावा और कुछ नहीं रहता। विशेष कृपा के क्षण बीत जाने पर चैत्य सत्ता एक आन्तरिक तन्द्रा में डूब जाती है और सम्पूर्ण बाहरी जीवन एक ऐसी धूसर और उदासीन एकरसता में बदल जाता है जो कोई चिह्न तक नहीं छोड़ता। इसके अतिरिक्त, तुम्हारे वर्तमान जीवनकाल में भी यही कुछ होता है : उन विशेष क्षणों को छोड़कर जब तुम अपनी सत्ता के शिखर पर होते हो, चाहे वह मानसिक हो, प्राणिक हो या यहां तक कि भौतिक ही क्यों न हो, तुम्हारा शेष जीवन एक अस्पष्ट रंग में पिघलता हुआ प्रतीत होता है जिसमें विशेष कोई मजा नहीं होता, जब इस बात का अधिक मूल्य नहीं होता कि तुम अमुक स्थान की जगह अमुक स्थान में थे, कि तुमने यह काम किया या वह किया। अगर तुम अपने

सारे जीवन को, वह जैसा था उसके निचोड़ को पाने के लिए एक साथ देखने की कोशिश करो, बीस, तीस या चालीस वर्ष पीछे जाओ, तो तुम दो-तीन चित्रों को सहज रूप से उभरता देखोगे जो तुम्हारे जीवन के सच्चे क्षण थे; बाकी सब मिट जाता है। एक तरह का सहज चुनाव तुम्हारी चेतना में कार्य करता है और बहुत-सी चीजों का सफाया हो जाता है। यह चीज, पिछले जन्मों में क्या होता है इसका तुम्हें कुछ भान देगी: कुछ खास-खास क्षणों का चुनाव और प्रचुर निष्कासन।

यह बहुत सच है कि सबसे प्रारम्भिक जीवन बहुत ही अविकसित होते हैं: उनमें से बहुत कम चीजें रहती हैं, इधर-उधर बिखरी हुई कुछ थोड़ी-सी स्मृतियां बच रहती हैं। लेकिन तुम चेतना में जितनी अधिक प्रगति करते हो, चैत्य सत्ता उतने ही अधिक सचेतन रूप से बाहरी क्रियाओं से सम्बद्ध रहती है; स्मृतियों की संख्या बढ़ जाती है और वे अधिक सामञ्जस्यपूर्ण और यथार्थ बन जाती हैं। लेकिन फिर भी, वहां भी, जो स्मृति रहती है वह अन्तरात्मा के साथ सम्पर्क की स्मृति होती है और कभी-कभी उन चीजों की स्मृति होती है जो चैत्य अन्तर्दर्शन से सम्बद्ध थीं—वह सामाजिक पद-प्रतिष्ठा या आस-पास बदलते दृश्यों की स्मृति नहीं होती। और यह चीज इसकी व्याख्या करेगी कि तथाकथित पूर्व पशु-जीवन की स्मृतियां सबसे अधिक विलक्षण क्यों होती हैं: उनके अन्दर भागवत स्फुलिंग इतना अधिक नीचे दबा रहता है कि वह सचेतन रूप से सतह पर नहीं आ सकता, बाहरी जीवन के साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ सकता। सचमुच यह कह सकने के लिए कि तुम्हें अपने पिछले जन्मों की याद है, तुम्हें पूरी तरह से सचेतन सत्ता बनना होगा, ऐसी सत्ता जो अपने सभी भागों में सचेतन हो, अपने भागवत मूल के साथ पूरी तरह से एक हो।

१९५८ (२)

आन्तरिक सिद्धि बाहरी सिद्धि की कुञ्जी

जब विरोधी शक्तियां उन व्यक्तियों पर प्रहार करना चाहती हैं जो मेरे आसपास हैं और जब वे उन्हें श्रीअरविन्द के कार्य के विरोध में या व्यक्तिगत रूप से मेरे विरुद्ध मोड़ने में सफल नहीं होतीं तो वे हमेशा इसी तरीके से, इसी तर्क को लेकर आगे बढ़ती हैं, वे कहती हैं : "तुम्हारे अन्दर मनचाही आन्तरिक सिद्धियां हो सकती हैं, आश्रम की चहारदीवारी में यथासम्भव सबसे अधिक सुन्दर अनुभूतियां हो सकती हैं, लेकिन बाहरी स्तर पर तुम्हारा जीवन बरबाद हो गया, व्यर्थ हो गया है। आन्तरिक अनुभूति और जगत् में ठोस सिद्धि के बीच में एक ऐसी खाई है जिसे तुम कभी नहीं पाट सकोगे।"

विरोधी शक्तियों का यह सबसे पहला तर्क होता है। मैं इसे जानती हूं। लाखों वर्षों से मैं इसी बात को बार-बार सुनती चली आयी हूं और हर बार मैंने उनका मुखौटा उतारा है। यह मिथ्यात्व है—यही प्रधान मिथ्यात्व है। वह सब जो जगत् और आत्मा में अलगाव स्थापित करना चाहता है, वह सब जो जगत् में भागवत उपलब्धि से आन्तरिक अनुभूति को अलग करता है, वह उनके लिए अच्छा होता है। लेकिन सच है इससे विपरीत बात : आन्तरिक सिद्धि ही बाहरी सिद्धि की कुञ्जी है। जब तक कि तुम अपनी सत्ता के सत्य को नहीं पा लेते तब तक तुम उस सच्ची चीज को जानने की आशा कैसे कर सकते हो जिसे तुम्हें जगत् में चरितार्थ करना है?

३० मई, १९५८

भगवद्-विरोधी

मैंने गौर किया है कि निन्यानबे प्रतिशत लोग अपने लिए इसका (विरोधी शक्तियों के आक्रमण का) बहाना बना लेते हैं। मैंने देखा है कि करीब-करीब सभी जो मुझे लिखते हैं : "विरोधी शक्तियों ने मुझ पर बुरी तरह से आक्रमण किया है," वे इसे बहाने के रूप में लिखते हैं। चूंकि उनकी प्रकृति में ऐसी बहुत-सी चीजें होती हैं जो समर्पित नहीं होना चाहतीं, इसलिए वे सारा दोष विरोधी शक्तियों पर मढ़ देते हैं।

वास्तव में, मैं अधिकाधिक ऐसी चीज की ओर मुड़ रही हूं जहां विरोधी शक्तियों की भूमिका घट कर परीक्षक की रह जायेगी; यानी, वे तुम्हारी आध्यात्मिक खोज की निष्कपटता की परख करने के लिए होंगी। इन चीजों का अस्तित्व काम करने और काम के लिए होता है—और इसका बहुत महत्त्व है—लेकिन जब तुम अमुक क्षेत्र के परे चले जाते हो तो ये सब एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच जाती हैं जहां वे इतनी भिन्न और सुस्पष्ट नहीं होतीं। गुह्य जगत् में, या यूं कहें कि अगर तुम जगत् को गुह्यविद्या के दृष्टिकोण से देखो, तो ये विरोधी शक्तियां बहुत सच्ची होती हैं, उनकी क्रियाएं बहुत सच्ची, पूरी तरह से ठोस होती हैं, और भागवत उपलब्धि के प्रति उनकी मनोवृत्ति निश्चित रूप से विरोधी होती है। लेकिन जैसे ही तुम इस प्रदेश से निकलकर आध्यत्मिक जगत् में प्रवेश करते हो जहां भगवान् के सिवा कुछ नहीं है, वे ही सब कुछ हैं, और जहां ऐसा कुछ नहीं है जो भगवान् न हो, तब ये "विरोधी शक्तियां" पूरी लीला का एक अंश बन जाती हैं और फिर उन्हें विरोधी शक्तियां नहीं कहा जा सकता। वह केवल एक भंगिमा है जो उन्होंने अपनायी है; अधिक यथार्थ रूप से कहें तो, यह बस एक भंगिमा विशेष है जिसे भगवान् ने अपनी लीला में अपनाया है।

श्रीअरविन्द "योग-समन्वय" में जिन द्वैतों की बात करते हैं उनमें ये भी हैं, वे द्वैत जो पुनः आत्मसात् कर लिये जाते हैं। मुझे मालूम नहीं कि इन्होंने इस द्वैत विशेष के बारे में कहा है या नहीं—मुझे नहीं लगता लेकिन

यह वही चीज है; यह देखने का एक तरीका है। उन्होंने वैयक्तिक, निर्वैयक्तिक, ईश्वर-शक्ति, पुरुष-प्रकृति इन द्वैतों की बात कही है। एक और है : भगवत् और भगवद्-विरोधी।

१९ जुलाई, १९५८

फल खाना

आड़ू को पेड़ पर पकने देना चाहिये; यह ऐसा फल है जिसे उस समय तोड़ना चाहिये जब उस पर धूप पड़ रही हो। जब उस पर सूरज का प्रकाश पड़ता है उस समय तुम आकर उसे तोड़ो और खाओ। तब वह एकदम स्वर्गिक होता है!

इस तरह के दो फल हैं: आड़ू और सुनहरा अलूचा। दोनों के लिए यही बात है: तुम्हें इन्हें पेड़ से तब तोड़ना चाहिये जब ये ऊष्मा से भरे हों, फिर उसे खाओ, और तुम दिव्य रस से भर जाओगे।

प्रत्येक फल विशेष तरीके से खाना चाहिये।

मूलतः यह पार्थिव स्वर्ग और ज्ञान-वृक्ष का प्रतीक है: ज्ञान के फल को खाते हुए, तुम क्रियाओं की अपनी सहजता खो बैठते हो, वस्तुपरक दृष्टि से देखना, सीखना और विचार-विमर्श करना आरम्भ कर देते हो, अतः जब उन्होंने (आदम और हौवा ने) यह फल खा लिया तो वे पाप से भर गये।

मैंने कहा, हर फल को उसके अपने तरीके से खाना चाहिये। अपनी प्रकृति, अपने सत्य के अनुसार जीने वाली हर सत्ता को चीजों का उपयोग करने का अपना तरीका सहज रूप से खोज लेना चाहिये। जब तुम अपनी सत्ता के सत्य के अनुसार जीते हो, तो तुम्हें चीजें सीखने की कोई आवश्यकता नहीं होती, तुम उन्हें सहज रूप में, आन्तरिक नियम के अनुसार करते हो। जब तुम अपनी प्रकृति का अनुसरण सहज रूप से निष्कपटता के साथ करते हो तब तुम दिव्य होते हो। जैसे ही तुम सोचते हो, अपने-आपको काम करते देखते हो या विचार-विमर्श शुरू कर देते हो, तुम पाप से भर जाते हो।

वह मनुष्य की मानसिक चेतना है जिसने सारी 'प्रकृति' को पाप से और उससे आने वाले दुःख के विचार से भर दिया है! जानवर उस तरह दुःखी नहीं होते जैसे हम होते हैं, एकदम नहीं, बिलकुल भी नहीं, केवल, जैसा कि श्रीअरविन्द कहते हैं, वे दुःखी होते हैं जो भ्रष्ट हो गये हैं। भ्रष्ट

वे हैं जो मनुष्यों के साथ रहते हैं। कुत्तों में पाप और अपराध-भावना होती है। यह इसलिए होता है क्योंकि उनकी सारी अभीप्सा मनुष्य बनने की होती है—मनुष्य देव हैं—और फिर, स्वांग या कपट, मिथ्यात्व। कुत्ते झूठ बोलते हैं। मनुष्य इसकी सराहना करता है, वह कहता है, "ओह! कितने बुद्धिमान् हैं ये!"

वे अपना देवत्व खो बैठे हैं।

सर्पिल आरोहण में मानव जाति सचमुच एक ऐसे बिन्दु पर है जो सुन्दर नहीं है।

लेकिन, क्या कुत्ता बाघ से अधिक सचेतन, अधिक विकसित और सर्पिल आरोहण में अधिक ऊंचा नहीं होता, यानी, भगवान् के अधिक निकट?

बात सचेतन होने की नहीं है। मनुष्य बाघ से अधिक विकसित है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं, लेकिन बाघ मनुष्य से अधिक दिव्य है। तुम्हें चीजों में घपला नहीं करना चाहिये : ये दो चीजें एकदम भिन्न हैं।

देखो, भगवान् हर जगह, हर चीज में हैं। तुम्हें यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिये, क्षण-भर के लिए भी तुम्हें यह न भूलना चाहिये। वे हर जगह हैं, हर चीज में हैं; और अचेतन रूप में, लेकिन सहजतया और इसीलिए निष्कपट रूप में वह सब जो मानसिक अभिव्यक्ति के नीचे है, बिना मिश्रण के भगवान् है, यानी सहज रूप से, महज़ अपनी प्रकृति द्वारा दिव्य है। मनुष्य ही अपने मन द्वारा अपराध-भावना के विचार को लाया है। स्वाभाविक है कि वह कहीं अधिक सचेतन है! यह विवादास्पद नहीं, यह भली-भांति अवगत है, क्योंकि जिसे हम चेतना कहते हैं (जिसे "हम" यानी, मनुष्य चेतना कहते हैं) वह ऐसी शक्ति है जिसमें विषयाश्रित होने और वस्तुओं को मानसिक रूप देने की शक्ति होती है। यह सच्ची चेतना नहीं है, लेकिन वह है जिसे मनुष्य चेतना कहते हैं। अतः इस मानवीय तरीके से यह जानी हुई बात है कि मनुष्य पशु से कहीं अधिक सचेतन है। लेकिन मनुष्य के साथ-साथ पाप और विकार आ जाते हैं, जो उस अवस्था से बाहर नहीं हैं जिसे हम "सचेतन" कहते हैं, लेकिन वह सचमुच सचेतन

नहीं है, वह केवल चीजों को मानसिक रूप देती है, उन्हें विषयाश्रित करने की सामर्थ्य देती है।

यह आरोहण का एक घुमाव है, लेकिन वह घुमाव भगवान् से दूर हटा ले जाता है, और तुम्हें फिर से, स्वाभाविक है, अधिक उच्च भगवान् को पाने के लिए अधिक ऊंचा उठना होगा, क्योंकि ये सचेतन भगवान् हैं जब कि दूसरे ऐसे भगवान् हैं जो सचेतन हुए बिना, सहज और नैसर्गिक रूप से भगवान् होते हैं। और स्वयं हमने, अपने अच्छे और बुरे की सारी नैतिक धारणा को सृष्टि में अपनी विकृत और भ्रष्ट चेतना द्वारा प्रक्षिप्त किया है। हमने ही इनका आविष्कार किया है।

पशु की शुद्धता और देवों की दिव्य शुद्धता के बीच में हम ही विकार लाने वाले मध्यस्थ हैं।

२१ जुलाई, १९५८

शक्ति का अपव्यय मत करो

मनुष्य शक्ति को बचा कर रखना नहीं जानते। जब कभी कुछ हो जाता है, कोई दुर्घटना या कोई बीमारी, तो मनुष्य सहायता की मांग करते हैं और दुगुनी, तिगुनी मात्रा में शक्ति उन्हें दी जाती है। वे अनुभव करते हैं कि वे ग्रहणशील हैं और ग्रहण कर लेते हैं। यह शक्ति दो कारणों के लिए दी जाती है : दुर्घटना या बीमारी के कारण आयी अव्यवस्था को ठीक करना, और सुधार करने के लिए उस चीज को बदलने की शक्ति देना जो बीमारी या दुर्घटना का सच्चा कारण थी।

शक्ति का इस तरीके से उपयोग करने की बजाय, वे उसे तुरन्त, तुरन्त बाहर फेंक देते हैं। वे घूमना शुरू कर देते हैं, सक्रिय होना, काम करना, बोलना शुरू कर देते हैं... वे अपने-आपको शक्ति से भरपूर अनुभव करते हैं और सब कुछ बाहर फेंक देते हैं! वे कुछ भी नहीं रख सकते। तब स्वभावतः, चूंकि शक्ति इस तरह नष्ट करने के लिए नहीं, बल्कि आन्तरिक उपयोग के लिए थी, वे एकदम छूंछे पड़ जाते हैं। यह सर्वसामान्य है। वे नहीं जानते, वे यह क्रिया करना नहीं जानते : अपने अन्दर जाना, उस शक्ति का उपयोग करना—उसे रखना नहीं, उसे रखा नहीं जा सकता—उसका उपयोग करना, शरीर में हुई हानि को ठीक करना और गहरे उतरकर दुर्घटना या बीमारी के कारण को जानना, और वहां, उसे अभीप्सा, आन्तरिक रूपान्तरण में बदल देना, यह वे नहीं जानते। इसके स्थान पर, लोग तुरन्त बातें करना, घूमना-फिरना, क्रिया करना इस या उस काम को करना शुरू कर देते हैं।

वस्तुतः, अधिकतर मानव अपने-आपको जीवित तभी अनुभव करते हैं जब वे अपनी शक्ति का अपव्यय कर रहे हों अन्यथा उन्हें वह जीवन ही नहीं लगता।

शक्ति का अपव्यय न करने का अर्थ है उसका उसी उद्देश्य के लिए उपयोग करना जिसके लिए वह दी गयी है। अगर शक्ति रूपान्तर के लिए, सत्ता के उन्नयन के लिए दी गयी हो तो उसका उसी के लिए उपयोग करना

चाहिये; अगर शक्ति शरीर में हुई किसी अव्यवस्था को ठीक करने के लिए दी गयी है, तो उसका उपयोग उसी के लिए करना चाहिये।

स्वभावत: अगर किसी को कोई कार्य-विशेष दिया गया है और अगर उसे उस कार्य को करने के लिए शक्ति भी दी गयी है, तो ठीक है, वह उसके निजी उद्देश्यों के लिए उपयोग में आयेगी, वह उसी के लिए तो दी गयी थी।

जैसे ही मनुष्य शक्ति से भरपूर अनुभव करता है, वह तुरन्त क्रियाशील हो उठता है। या, जिनके अन्दर कोई उपयोगी वस्तु करने की अक्ल नहीं होती वे गप्पें मारना शुरू कर देते हैं। इससे भी खराब वे होते हैं जिनका अपने ऊपर कोई नियन्त्रण नहीं होता, वे असहिष्णु हो उठते हैं और कलह करने लगते हैं! अगर उनकी इच्छा का विरोध हो तो वे अपने-आपको शक्ति से भरपूर अनुभव करते हैं और उसे पवित्र क्रोध के रूप में ले लेते हैं!

(जुलाई ?) १९५८

क्यों, और किस तरह मानसिक सूत्रीकरण किसी अनुभूति को छितरा देता है, चेतना पर क्रिया करने के लिए अनुभूति की शक्ति के अधिकांश भाग के खोने का कारण बनता है?

उदाहरण के लिए, अगर तुम किसी गलत गतिविधि से छुटकारा पाना चाहते हो और भागवत कृपा के परिणामस्वरूप इस उद्देश्य के लिए तुम्हारे पास शक्ति भेजी जाती है, यह शक्ति तुम्हारी चेतना पर कार्य करना शुरू कर देती है। तब, अगर तुम उसे अपनी ओर खींचो, अर्थात् सूत्रबद्ध करने के लिए अपनी ओर खींचो तो स्वभावतः तुम उसे विकेन्द्रित, तितर-बितर कर देते हो और खो बैठते हो।

लेकिन बस इतना ही नहीं होता : केवल किसी दूसरे से बात करने भर से स्वतः ही तुम उस सबके प्रति खुल जाते हो जो उस व्यक्ति से आ सकता है; हमेशा पारस्परिक आदान-प्रदान होता है। इस तरह उसकी उत्सुकता, उसका अन्धकार, उसकी सद्भावना और कभी-कभी उसकी दुर्भावना भी हस्तक्षेप करती है, बदलाव लाती है या विकृत करती है।

दूसरी तरफ, अगर तुम अपनी अनुभूति अपने गुरु से कहना चाहते हो और अगर वे उसे सुनना स्वीकार करें तो इसका अर्थ है कि शक्ति की क्रिया में वे अपना बल, अपना ज्ञान और अपनी अनुभूति जोड़ देते हैं और परिणाम लाने में मदद करते हैं।

लेकिन फिर भी सूत्रीकरण द्वारा हुई हानि नहीं बनी रहती क्या?

बनी रहती है, लेकिन वे उसका परिमार्जन कर देते हैं।

(जुलाई ?) १९५८

सौन्दर्य-बोध

इस योग को करने के लिए तुम्हारे अन्दर, कम-से-कम थोड़ा-सा सौन्दर्य बोध तो होना चाहिये। अगर तुम्हारे अन्दर वह न हो तो तुम भौतिक जगत् के सबसे महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से एक से वंचित रहते हो।

यह सौन्दर्य, अन्तरात्मा का यह आभिजात्य—एक ऐसी वस्तु है जिसके बारे में मैं बहुत संवेदनशील हूं। यह एक ऐसी वस्तु है जो मुझे छू जाती है और हमेशा मेरे अन्दर बड़े आदर-भाव को जगाती है।

हां, अन्तरात्मा का यह सौन्दर्य, इस प्रकार का आभिजात्य, सर्वांगीण सिद्धि का यह सामञ्जस्य मुख पर दिखायी देता है। जब अन्तरात्मा भौतिक में दिखायी देती है तो वह उसे यह गौरव, यह सौन्दर्य, यह भव्यता प्रदान करती है, ऐसी भव्यता जो तुम्हारे शरीर के यज्ञ की वेदी बनने से आती है। तब उन चीजों पर भी जिनमें कोई विशेष सौन्दर्य नहीं होता, शाश्वत सौन्दर्य का, *एकमात्र दिव्य* शाश्वत सौन्दर्य का भाव आ जाता है।

मैंने इस तरह के चेहरे देखे हैं जो अचानक एक कौंध की तरह एक छोर से दूसरे छोर पर जा पहुंचते हैं। किसी के शरीर में इस प्रकार का सौन्दर्य और सामञ्जस्य, दिव्य गौरव का यह भाव होता है और अचानक किसी बाधा, किसी कठिनाई और त्रुटि का, क्षुद्रता का बोध आ जाता है—और फिर, रूप में एक विकार, नाक-नक्श में एक तरह का विघटन आ जाता है! चेहरा वह-का-वही रहता है। वह चीज बिजली की कौंध की तरह थी, भयंकर। यन्त्रणा और अधोगति की इस तरह की विकरालता—जिसे धर्मों में "पाप की यन्त्रणा" के रूप में अनूदित किया गया है—एक चेहरा जरूर देती है! अपने-आपमें सुन्दर नाक-नक्श भी भयंकर हो जाते हैं जब कि चेहरा-मोहरा वही होता है, व्यक्ति वही होता है।

तब मैंने देखा कि पाप का भाव कितना भयंकर है, वह कितना मिथ्यात्व के जगत् का है।

१० अक्तूबर, १९५८

जड़-भौतिक में परम-प्रभु की पूजा

सभी धर्मों में, विशेषकर गुह्यविद्या की दीक्षा में विभिन्न अनुष्ठानों की विधियां ब्योरेवार विहित हैं। प्रत्येक उच्चारित शब्द का, प्रत्येक मुद्रा का अपना महत्त्व होता है और नियम का जरा-सा उल्लंघन, जरा-सी भूल भयंकर परिणाम ला सकती है। जड़-भौतिक जीवन की भी यही बात है, और अगर तुम जीने की सच्ची कला में दीक्षित किये जाओ तो तुम भौतिक अस्तित्व का रूपान्तर करने में समर्थ होगे।

अगर शरीर को प्रभु का मन्दिर मान लिया जाये, तो, उदाहरण के लिए चिकित्सा-विज्ञान मन्दिर की सेवा के लिए आरम्भिक पूजा बन जाता है और सभी तरह के चिकित्सक वे पुजारी बन जाते हैं जो पूजा की विभिन्न विधियों के पुरोहित होते हैं। इस तरह चिकित्सा सचमुच पुरोहिताई है और उसे उसी तरह मानना चाहिये।

यही बात शारीरिक प्रशिक्षण और उन सभी विज्ञानों के लिए कही जा सकती है जो शरीर और उसके कार्यों के साथ सम्बन्ध रखते हैं। और जड़-भौतिक विश्व को अगर परम प्रभु की अभिव्यक्ति और बाहरी लबादे के रूप में देखो तो कहा जा सकता है कि साधारणतः, सभी भौतिक विज्ञान पूजा के कर्मकाण्ड हैं।

अतः हम हमेशा उसी चीज पर लौट आते हैं : पूर्ण निष्कपटता, पूर्ण ईमानदारी और तुम जो कुछ करो उसमें गरिमा के भाव की नितान्त आवश्यकता, ताकि तुम चीज को उसी तरह करो जैसे करना चाहिये।

अगर तुम सभी ब्योरों को सचमुच पूरी तरह जान सको, जीवन के अनुष्ठान के, भौतिक जीवन में परम प्रभु की पूजा के सभी ब्योरे जान सको, जानकर फिर और भूलें न करो, कभी गलती न करो तो बहुत ही अद्‌भुत बात होगी। तब तुम एक दीक्षा की पूर्णता की न्याईं अनुष्ठान सम्पन्न करते हो।

४ नवम्बर, १९५८

क्या पुराणों के देवताओं, यूनान और मिश्र की गाथाओं के देवताओं का सचमुच अस्तित्व है?

पुराणों के देवताओं और यूनान और मिश्र की गाथाओं के देवताओं में बहुत तरह की समानता पायी जाती है; यह अध्ययन के लिए एक मजेदार विषय हो सकता है। आधुनिक पाश्चात्य जगत् में, ये सभी देवता—यूनानी और दूसरे "मूर्तिपूजक" देवता, जैसा कि वे उन्हें कहते हैं—और कुछ नहीं, केवल मानव कल्पना की उपज हैं और विश्व में किसी भी सच्ची चीज से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन यह बहुत बड़ी भूल है।

वैश्व जीवन, यहां तक कि पार्थिव जीवन की रचना को भी समझने के लिए तुम्हें वस्तुतः यह जानना होगा कि ये सभी अपने-अपने क्षेत्र में सच्ची और जीवन्त सत्ताएं हैं, और सबकी पृथक् वास्तविकता है। मनुष्यों का अस्तित्व न भी रहे तो भी इनका अस्तित्व बना रहेगा। इनमें से अधिकतर देवता मनुष्यों के पहले से चले आ रहे हैं।

बहुत पुरानी परम्परा में, शायद कैल्डियन और वैदिक परम्परा से भी पहले, ये दोनों इसी की शाखाएं हैं, सृष्टि का इतिहास तात्त्विक या मनोवैज्ञानिक नहीं, बल्कि वस्तुपरक दृष्टिकोण से सुनाया गया है, और यह इतिहास हमारे ऐतिहासिक युगों के इतिहास के जितना सच है। निश्चय ही, वस्तु को देखने का यह एकमात्र तरीका नहीं है, लेकिन यह किसी भी दूसरे तरीके के जितना ही न्यायसंगत है; और, बहरहाल, यह इन भागवत सत्ताओं के ठोस अस्तित्व को मानता है।

ये ऐसी सत्ताएं हैं जो विश्व के प्रगतिशील सृजन की सत्ताए हैं। स्वयं उन्होंने अधिक-से-अधिक वायवीय या सूक्ष्म से लेकर अधिकतम जड़-भौतिक क्षेत्रों तक की रचना का संचालन किया है। यह भागवत सृजनशील 'आत्मा' का अवरोहण है। और वे धीरे-धीरे अधिकाधिक वास्तविकता के साथ नीचे उतरीं—हम घन नहीं कह सकते, क्योंकि यह घन नहीं है, हम जड़-भौतिक नहीं कह सकते क्योंकि हम जैसे जड़तत्त्व को जानते हैं वैसे जड़तत्त्व का उन स्तरों पर अस्तित्व नहीं है—वे अधिकाधिक ठोस

वास्तविकताओं द्वारा नीचे उतरीं।

परम्पराओं और गुह्यविद्या के सम्प्रदायों के अनुसार वास्तविकताओं के इन सभी क्षेत्रों, वास्तविकताओं के इन सभी स्तरों के अलग-अलग नाम हैं; इनका अलग तरीके से वर्गीकरण किया गया है, लेकिन इनके मूल में एक सादृश्य है, और अगर तुम परम्पराओं में काफी पीछे जाकर देखो तो तुम देश और भाषा के अनुसार केवल शब्दों में बदलाव पाओगे। अब भी, पाश्चात्य गुह्यविद्याधरों और पूर्वीय गुह्यविद्याधरों के अनुभव में बहुत समानताएं पायी जाती हैं। जो लोग इन अदृश्य जगतों की खोज के लिए निकले उन सबने उनके बारे में जो विवरण दिये थे वे बहुत अधिक एक-से वर्णन हैं, चाहे वे पूर्व के हों या पश्चिम के। वे भिन्न शब्दों का उपयोग करते हैं, लेकिन अनुभूति में बहुत समानता होती है और शक्तियों के संचालन में समानता होती है।

गुह्य जगतों का यह ज्ञान सूक्ष्म शरीरों और उन शरीरों के अनुरूप सूक्ष्म जगतों पर आधारित है। ये वे हैं जिन्हें मनोवैज्ञानिक पद्धति "चेतना की अवस्थाएं" कहती है, लेकिन ये चेतना की अवस्थाएं सचमुच जगतों के अनुरूप होती हैं। और तब गुह्यविद्या की प्रक्रिया में इन विभिन्न आन्तरिक अवस्थाओं या सूक्ष्म शरीरों के प्रति सचेतन होना होता है और उन पर इतना प्रभुत्व पाना होता है कि तुम उत्तरोत्तर एक-एक करके उनमें से बाहर निकल सको। सचमुच सूक्ष्मताओं की एक पूरी श्रेणी है जो, तुम जिस दिशा में जाते हो उसके अनुरूप घटती या बढ़ती है, और गुह्यविद्या में तुम अधिक सघन शरीर से निकलकर अधिक सूक्ष्म शरीर में जाते हो और इस तरह तुम सबसे अधिक वायवीय क्षेत्रों में जा सकते हो। तुम क्रमिक बाह्यीकरणों द्वारा अधिकाधिक सूक्ष्म शरीरों और जगतों में जाते हो। यह कुछ ऐसा होता है मानों हर बार तुम किसी दूसरे आयाम में पहुंच जाते हो। भौतिक शास्त्रियों का चौथा आयाम और कुछ नहीं गुह्यविद्या की वैज्ञानिक अनुकृति है। एक और चित्र रखती हूं : हम कह सकते हैं कि भौतिक शरीर केन्द्र में है—यह सबसे अधिक जड़-भौतिक, सबसे अधिक घन और सबसे छोटा है—और अधिक सूक्ष्म आन्तरिक शरीर केन्द्रीय भौतिक शरीर के ऊपर अधिकाधिक उमड़ते हैं; वे उसमें से गुजरते हैं और अपने-आपको अधिकाधिक दूर तक फैलाते हैं जैसे पानी किसी सरंध्र

पात्र से उड़ जाता है और चारों तरफ एक तरह की भाप बना देता है। जितनी अधिक सूक्ष्मता होगी उतना अधिक वह विस्तार विश्व के विस्तार से एक होने की कोशिश करेगा : और अन्त में व्यक्ति अपने-आपको वैश्व बना लेता है। और यह एकदम ठोस प्रक्रिया है जो अदृश्य जगतों को वस्तुपरक अनुभूति प्रदान करती है और यहां तक कि तुम्हें इन जगतों में क्रिया करने में समर्थ भी बनाती है।

हां तो, पश्चिम में ऐसे लोगों की संख्या बहुत ही कम है जो यह जानते हैं कि ये देवता केवल आत्मनिष्ठ और काल्पनिक नहीं हैं—न्यूनाधिक अनियन्त्रित रूप से काल्पनिक—बल्कि वे किसी वैश्व सत्य के अनुरूप हैं।

ये सभी प्रदेश, ये सभी क्षेत्र सत्ताओं से भरे हैं और हर एक अपने स्तर पर अस्तित्व रखती है, और अगर तुम किसी स्तर विशेष के बारे में जाग्रत् और सचेतन हो—उदाहरण के लिए, किसी अधिक जड़-भौतिक शरीर से बाहर निकलते समय अगर तुम किसी उच्चतर स्तर पर खुल जाओ, तो तुम्हारा उस स्तर की चीजों और लोगों के साथ ठीक वही सम्बन्ध हो जाता है जैसा सम्बन्ध जड़-भौतिक जगत् की चीजों और लोगों के साथ होता है। यानी, एकदम वस्तुपरक सम्बन्ध जिसका, तुम्हारे उन चीजों के बारे में जो विचार हो सकते हैं, उनसे कोई सम्बन्ध न हो। स्वभावतः जैसे-जैसे तुम भौतिक, जड़-भौतिक जगत् की ओर बढ़ते हो वैसे-वैसे सादृश्य बढ़ता जाता है, और एक ऐसा समय भी आता है जब एक क्षेत्र की दूसरे क्षेत्र पर सीधी क्रिया होती है। बहरहाल, जिन्हें श्रीअरविन्द अधिमानसिक जगत् कहते हैं, उनमें तुम एक ऐसी ठोस वास्तविकता को पाओगे जो तुम्हारे निजी अनुभव से एकदम स्वतन्त्र होगी; तुम वहां दुबारा जाओ तो तुम्हें वहां, तुम्हारी अनुपस्थिति में जो हेर-फेर हुए उनके साथ वही-की-वही चीजें मिलेंगी। और तुम्हारा उन सत्ताओं के साथ ऐसा सम्बन्ध होगा जो, भौतिक सत्ताओं के साथ तुम्हारे सम्बन्ध के अनुरूप होगा, भेद केवल यही होगा कि वह सम्बन्ध अधिक लोचदार, अधिक नमनीय और सीधा होगा—उदाहरण के लिए, वहां तुम जिस आन्तरिक अवस्था में हो उसके अनुसार तुम्हारे अन्दर बाहरी, प्रकट रूप को बदलने की सामर्थ्य होगी। तुम किसी के साथ मिलने का समय निश्चित कर सकते हो और उस स्थान पर पहुंचकर उसी सत्ता से दोबारा मिल सकते हो, बस उसमें

थोड़े-से वे भेद होंगे जो तुम्हारी अनुपस्थिति में उसमें हुए थे; यह पूरी तरह से ठोस चीज है, और इसके परिणाम भी पूरी तरह से ठोस होते हैं।

इन चीजों को समझने के लिए तुम्हें इसकी कम-से-कम थोड़ी अनुभूति तो होनी ही चाहिये। वरना, जिन लोगों को यह विश्वास है कि यह सब केवल मानव कल्पना और मानसिक रचना है, जो यह मानते हैं कि इन देवताओं के अमुक रूप इसलिए हैं क्योंकि मनुष्यों ने उनके बारे में इसी तरह सोचा है, और उनके अन्दर अमुक विकार या अमुक गुण इसलिए हैं क्योंकि मनुष्यों ने उनकी वैसी ही कल्पना की है—वे सब जो कहते हैं कि भगवान् मनुष्य की कल्पना में हैं और वे केवल मानव विचार में ही अस्तित्व रखते हैं, ऐसे लोग नहीं समझ पायेंगे; उन्हें यह एकदम से हास्यास्पद, पागलपन लगेगा। चीज कितनी अधिक ठोस है यह जानने के लिए तुम्हें उसे थोड़ा-सा तो जीना चाहिये, विषय में कुछ तो चंचुपात होना चाहिये।

स्वभावतः, बच्चे बहुत अधिक जानते हैं, बशर्ते कि उन्हें बिगाड़ा न गया हो। ऐसे कितने ही बच्चे हैं जो रोज रात को एक ही स्थान पर जाते हैं और उस जीवन को जारी रखते हैं जिसे उन्होंने वहां शुरू किया था। अगर उम्र के साथ ये क्षमताएं बिगड़ न जायें तो ये तुम्हारे पास रहतीं। एक समय जब मैं स्वप्नों में विशेष रूप से रुचि रखती थी, तो मैं ठीक उसी स्थान पर लौट सकती थी और उस कार्य को जारी रख सकती थी जिसे मैंने शुरू किया था : किसी चीज का निरीक्षण करना, उदाहरण के लिए, किसी चीज को व्यवस्थित करना, व्यवस्था, खोज या अन्वेषण का कोई काम करना। तुम तब तक जाते हो जब तक कि किसी बिन्दु-विशेष पर न पहुंच जाओ, जिस तरह तुम जीवन में आगे बढ़ते हो, फिर तुम थोड़ा आराम करते हो, उसके बाद लौटकर दोबारा शुरू करते हो—तुम कार्य को उसी स्थान से शुरू करते हो जहां उसे छोड़ा था और आगे जारी रखते हो। तुम देखोगे कि कुछ चीजें तुमसे एकदम स्वतन्त्र हैं, इस अर्थ में कि तुम्हारी अनुपस्थिति में ऐसे परिवर्तन अपने-आप हो गये हैं जिनके कर्ता तुम नहीं हो।

लेकिन इसके लिए तुम्हें इन अनुभूतियों को अपने-आप *जीना* होगा, तुम्हें उन्हें अपने-आप देखना होगा और यह देखने के लिए कि वे हर मानसिक रचना से स्वतन्त्र हैं तुम्हें उन्हें पर्याप्त निष्कपटता और सहज

भाव से जीना होगा। तुम इसके विपरीत भी कर सकते हो और घटनाओं पर मानसिक रचना की क्रिया के अध्ययन को ज्यादा गहरा कर सकते हो। यह बहुत मजेदार है लेकिन यह एक अलग क्षेत्र है। यह अध्ययन तुम्हें बहुत जागरूक, बहुत समझदार बना देता है क्योंकि तुम्हें इस बात का आभास हो जाता है कि तुम किस हद तक अपने-आपको छल सकते हो। अतः यह देखने के लिए कि इन दोनों में क्या मौलिक भेद है तुम्हें स्वप्न और गुह्य यथार्थता, दोनों का अध्ययन करना चाहिये। एक तुम्हारे अपने ऊपर निर्भर है; दूसरे का अपना निजी अस्तित्व है; हम उसके बारे में कुछ भी क्यों न सोचें, वह उससे बिलकुल स्वतन्त्र होता है।

जब तुम उस क्षेत्र में कार्य कर चुको, तो वस्तुतः तुम यह जान लेते हो कि एक बार किसी विषय का अध्ययन कर लेने पर या किसी चीज को मानसिक रूप से सीख लेने पर, जानना या सीखना अनुभूति को विशेष रंग दे देता है; अनुभूति एकदम सहज और सच्ची हो सकती है, लेकिन केवल यही तथ्य कि विषय का पहले से पता था और उसका अध्ययन किया गया था, उसे विशेष गुण प्रदान करता है। जब कि अगर तुमने प्रश्न के बारे में कुछ नहीं सीखा हो, अगर तुम्हें उसके बारे में एकदम कुछ भी पता न हो, तो अनुभूति होने पर वह पूरी तरह सहज और सच्ची होगी, वह न्यूनाधिक रूप में पर्याप्त होगी लेकिन वह पहले से बनायी गयी मानसिक रचना का परिणाम न होगी।

स्वाभाविक है कि जगत् में यह गुह्यविद्या या यह अनुभूति बहुधा नहीं होती, क्योंकि उन लोगों में जिनका आन्तरिक जीवन विकसित नहीं होता, बाह्य चेतना और अन्तरतम चेतना में सचमुच बहुत व्यवधान होते हैं, सत्ता की अवस्थाओं को जोड़ने की कड़ियां नहीं होती हैं और उनका निर्माण करना होता है। इसलिए जब लोग उसमें पहली बार जाते हैं तो भौचक्के रह जाते हैं, उन्हें ऐसा लगता है मानों वे रात्रि में जा गिरे हैं, शून्यता, अस्तित्वहीनता में जा गिरे हैं!

मेरा एक डेन्मार्कवासी मित्र चित्रकार था, वह इसी तरह का था। वह चाहता था कि मैं उसे शरीर से बाहर निकलना सिखाऊं; उसे मजेदार सपने आते थे और उसने सोचा कि वहां सचेतन रूप से जाना सार्थक होगा। अतः मैंने उसे "बाहर निकाला"—लेकिन यह भयावह चीज थी!

जब वह सपना देखता था तो उसके मन का एक भाग उस समय भी सचेतन सक्रिय होता था, और इस सक्रिय भाग और उसकी बाहरी सत्ता में एक तरह का सम्बन्ध रहता था; फिर उसे अपने कुछ सपने याद रहे, लेकिन वे बहुत ही आंशिक विवरण थे। अगर तुम इस चीज को विधिपूर्वक करो तो अपने शरीर से बाहर जाने का अर्थ होता है सत्ता की सभी अवस्थाओं से एक-एक करके गुजरना। सूक्ष्म-भौतिक में ही तुम करीब-करीब निर्वैयक्तिक हो जाते हो, और जब तुम अधिक आगे जाते हो तो कुछ भी नहीं रहता, क्योंकि कोई चीज रूपायित नहीं होती, किसी चीज का व्यक्तित्व नहीं रहता।

अतः, जब लोगों को ध्यान करने या अपने अन्दर प्रवेश करने के लिए कहा जाता है, तो वे संतप्त हो उठते हैं—स्वाभाविक है! उन्हें ऐसा भान होता है कि वे गायब हो रहे हैं। और कारण भी है : वहां कुछ भी नहीं है, कोई चेतना नहीं है।

ये चीजें जो हमें काफी स्वाभाविक और स्पष्ट लगती हैं, उन लोगों के लिए जो कुछ नहीं जानते, बेलगाम कल्पना होती है। उदाहरण के लिए, अगर तुम इन अनुभूतियों को या इस ज्ञान को पश्चिम में ले जाओ, और अगर तुम गुह्यविदों की गोष्ठियों में नहीं हो तो वे तुम्हारी तरफ भौचक्के होकर, आंखें फाड़कर देखेंगे और तुम्हारे पीठ फेरते ही चट कह देंगे, "ये लोग सनकी हैं।"

अब चलो फिर देवताओं की बात पर आयें और खतम करें। यह कहना आवश्यक है कि उन सभी सत्ताओं में जिनका कभी पार्थिव अस्तित्व नहीं रहा—देवता या दानव, अदृश्य सत्ताएं या शक्तियां—उनमें वह चीज नहीं होती जिसे परम प्रभु ने मनुष्य में रखा है। वह है : चैत्य सत्ता। और यह चैत्य सत्ता मनुष्य को सच्चा प्रेम, दयालुता, अनुकम्पा, गभीर कृपालुता प्रदान करती है जो उसकी सभी बाहरी त्रुटियों की क्षतिपूर्ति कर देती है।

देवताओं में कोई त्रुटि नहीं है क्योंकि वे अपनी प्रकृति के अनुसार सहज और बिना किसी विवशता के जीते हैं : देवताओं के रूप में, यही उनके रहने का तरीका है। लेकिन अगर तुम ऊंचे दृष्टिकोण को लो, अगर तुम्हारे अन्दर ऊंचा अन्तर्दर्शन हो, समग्रता का अन्तर्दर्शन हो तो तुम देखोगे कि वे कुछ ऐसे गुणों से वंचित रहते हैं जो एकदम-से मानवीय

हैं। जब मनुष्य अहंकारी नहीं होता, जब उसने अहं पर विजय पा ली हो तो वह अपने प्रेम और आत्मदान की सामर्थ्य द्वारा देवताओं के जितनी, उनसे भी अधिक शक्ति पा सकता है।

अगर वह आवश्यक शर्त को पूरा करे तो मनुष्य देवताओं की अपेक्षा परम प्रभु के अधिक निकट होता है। वह निकटतर हो सकता है। वह सहज रूप से अपने-आपमें ऐसा नहीं है लेकिन उसके अन्दर ऐसा बनने की शक्ति और सम्भाव्यता है।

अगर मानव प्रेम अपने-आपको बिना किसी मिश्रण के अभिव्यक्त करे तो वह सर्वशक्तिमान् होगा। दुर्भाग्यवश, मानव-प्रेम में अपने-आपके लिए भी उतना ही प्रेम होता है जितना प्रेमपात्र के लिए; यह ऐसा प्रेम नहीं है जिसमें तुम अपने-आपको भूल जाओ।

८ नवम्बर, १९५८

५ नवम्बर, १९५८ की अनुभूति

१९५९ के नये साल का सन्देश

"निश्चेतना के एकदम तल में जो सबसे अधिक कठोर, सबसे अधिक अनम्य, संकीर्ण और दम घोंटनेवाला है, मैं एक सर्वशक्तिमान् कमानी (स्प्रिंग) से टकरायी जिसने मुझे तुरन्त आकारहीन असीम बृहत् में ऊपर उछाल दिया जो नये जगत् के बीजों से स्पन्दित हो रहा था।"

इस सन्देश का मूल यह है :

कल शाम कक्षा में[१] मैंने देखा कि उन बच्चों को, जिनके पास, जो पाठ हम पढ़ रहे हैं उसके बारे में प्रश्न तैयार करने के लिए पूरा एक सप्ताह था, एक भी प्रश्न नहीं मिला। भयंकर तन्द्रिलता! रुचि का पूरी तरह से अभाव! जब मैंने पढ़ना खत्म किया तो मैंने अपने-आपसे पूछा, "भला इन मस्तिष्कों में क्या भरा है जो अपने छोटे-छोटे व्यक्तिगत मामलों के सिवाय और किसी चीज में रस नहीं लेता? आखिर, इन आकारों के पीछे, वहां, अन्दर क्या हो रहा है?"

फिर ध्यान के समय मैंने, अपने चारों तरफ बैठे लोगों के मानसिक वातावरण के अन्दर जाना शुरू किया ताकि वहां उस छोटे-से प्रकाश को, प्रत्युत्तर देने वाली चीज को पा सकूं। और मैं सचमुच तली में, मानों किसी छिद्र में नीचे तक खींच ली गयी।

उस छिद्र में मैंने वह चीज देखी जिसे मैं अब भी देख रही हूं। मैं नीचे एक दरार के अन्दर चली गयी, वह दो ऐसी नुकीली चट्टानों के बीच थी जो बसाल्ट से भी अधिक कठोर और साथ-ही-साथ काली धातु की बनी थीं जिनके किनारे इतने तेज थे कि ऐसा लगता था कि उन्हें छू भर देने से तुम्हारी चमड़ी उतर जायेगी। वह कोई ऐसी चीज थी जिसका कोई तल, कोई अन्त न मालूम होता था, और वह कुप्पी की तरह संकरी, अधिक

[१] माताजी की साप्ताहिक "बुधवार कक्षा" जो आश्रम क्रीड़ांगण में होती थी।

संकरी होती गयी, यहां तक संकरी हो गयी कि चेतना के गुजरने के लिए भी स्थान न रहा। तल अदृश्य था, एक काला छिद्र था जो नीचे-नीचे उतरता चला गया था, जिसमें न हवा थी, न प्रकाश था, केवल एक तरह की टिमटिमाहट थी, ऐसा प्रतिबिम्ब, जो चट्टानों के शिखर पर होता है, ऐसी टिमटिमाहट, जो कहीं दूर से आती थी, ऐसी किसी चीज से जो स्वर्ग भी हो सकती थी लेकिन वह अदृश्य चीज थी। मैं उस दरार में नीचे फिसलती गयी और मैंने उन किनारों को, उन काली चट्टानों को देखा, जो मानों कैंची से अभी-अभी काटी गयी थीं, किनारे इतने तेज थे मानों चाकू की धार हों। इधर एक था, उधर एक था, यहां था, वहां था, चारों तरफ थे। और मैं नीचे खिंचती चली गयी, खिंचती चली गयी, खिंचती चली गयी—मैं नीचे, नीचे, नीचे चली गयी लेकिन उसका कोई अन्त न था। वह अधिकाधिक उमसदार, श्वासरोधक, दम घोंटनेवाला बन गया।

भौतिक रूप से शरीर ने अनुसरण किया, उसने अनुभूति में हिस्सा लिया। वह हाथ जो कुर्सी के हत्थे पर था वह नीचे फिसल गया, फिर दूसरा हाथ और सिर अप्रतिरोध्य गति से नीचे झुक गये। तब मैंने अपने-आप से कहा, "लेकिन यह बन्द होना चाहिये क्योंकि अगर यह जारी रहा, तो मेरा सिर जमीन पर आ रहेगा। (चेतना कहीं और थी, लेकिन मैं अपने शरीर को बाहर से देख रही थी।) और मैंने अपने-आप से पूछा, 'इस छिद्र के तल में आखिर है क्या?' "

इस प्रश्न के उठते-न-उठते मुझे ऐसा लगा कि मैंने किसी स्प्रिंग को छू दिया जो छिद्र के एकदम तल में था, जिस पर अभी तक मेरा ध्यान न गया था, और तुरन्त उसने महान् शक्ति के साथ कार्य किया और एक ही छलांग में मुझे सीधा ऊपर एकदम हवा में उछाल दिया, मैं उस दरार से एक ऐसे अनन्त, आकारहीन बृहत् में जा पहुंची, जो अनन्त गुना सुखदायक था—ठीक ऊष्मापूर्ण नहीं, लेकिन उससे आन्तरिक ऊष्मा के सुखद भाव का अनुभव हुआ। उस पर्याप्त रूप से कष्टप्रद अवतरण के बाद, यह एक तरह का अति-सुख था, एक आराम था, ऐसा आराम जो अपनी पराकाष्ठा पर था। और मेरे शरीर ने तुरन्त उस गति का अनुसरण किया, सिर फिर से तुरन्त सीधा हो गया। और मैंने यह सब एकदम विषयाश्रित हुए बगैर जिया; मैं इसका लेखा-जोखा नहीं कर रही थी कि वह क्या था। वह जो

था वही था, मैंने उसे जिया बस इतना ही। अनुभूति एकदम-से सहज थी।

यह सर्वशक्तिमान् था, अनन्त रूप से समृद्ध; उसका एकदम कोई रूप या आकार न था, कोई सीमा न थी—स्वभावतः मैंने उसके साथ तादात्म्य कर लिया था और इसीलिए मैं यह जान सकी कि उसकी कोई सीमा या आकार न था। वह ऐसा था मानों—मैं "मानों" इसलिए कह रही हूं क्योंकि वह दिखायी नहीं दे रहा था—मानों वह विशालता असंख्य अगोचर बिन्दुओं से बनी थी, ऐसे बिन्दुओं से जो अन्तरिक्ष में कोई स्थान नहीं घेर रहे थे (वहां कोई अन्तरिक्ष न था), ऐसे बिन्दु जो गहरे ऊष्मापूर्ण, स्वर्ण-सम थे; लेकिन यह केवल एक आभास था, एक प्रतिकृति। और वह सब पूरी तरह से जीवन्त था, ऐसी शक्ति से जीवन्त था जो असीम प्रतीत हो रही थी। और फिर भी वह निश्चल था, और वह निश्चलता इतनी पूर्ण थी कि शाश्वतता का अनुभव दे रही थी, लेकिन जिसके अन्दर क्रिया और जीवन की अकल्पनीय आन्तरिक तीव्रता थी—वह आन्तरिक थी, अपने-आपमें समाहित थी—और निश्चल थी, बाह्य की तुलना में निश्चल, अगर कोई बाह्य था तो। और उसमें असीम जीवन था—केवल रूपक में हम उसे अनन्त कह सकते हैं—और उसमें तीव्रता, शक्ति, बल, शान्ति, शाश्वत की शान्ति, नीरवता, अचञ्चलता और ऐसी शक्ति थी जो सब कुछ करने में समर्थ होती है।

और मैंने उसके बारे में सोचा नहीं, मैंने उसे वस्तुनिष्ठ नहीं किया, मैंने उसे सुख से, बहुत ही सुख से जिया। यह अनुभूति बहुत देर तक चली—ध्यान के बाकी समय तक।

वह ऐसी थी मानों उसमें सम्भावनाओं की सारी सम्पत्ति निहित थी। और उसमें, हालांकि उसका कोई आकार न था लेकिन आकार लेने की शक्ति थी।

कुछ क्षण बाद मैंने अपने-आप से पूछा, "यह क्या है, किसके अनुरूप है?" स्वभावतः मैंने बाद में जान लिया, और अन्त में आज सुबह मैंने अपने-आपसे कहा, "हां, तो यह मुझे आने वाले वर्ष का मेरा सन्देश देने के लिए है।" फिर मैंने उसका लिप्यन्तरण किया—स्वाभाविक है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता, वह अवर्णनीय है। वह मनोवैज्ञानिक प्रतिभास था और वे आकार और कुछ नहीं केवल अपने लिए मनोवैज्ञानिक अवस्था

का वर्णन करने के तरीके थे। और यही वह है जो मैंने लिखा, स्पष्ट है कि मानसिक तरीके से लिखा। मैंने किसी चीज का वर्णन नहीं किया है, मैंने केवल एक तथ्य सामने रखा है :

> *"निश्चेतना के एकदम तल में जो सबसे अधिक कठोर, सबसे अधिक अनम्य, संकीर्ण और दम घोंटनेवाला है, मैं एक सर्वशक्तिमान् कमानी (स्प्रिंग) से टकरायी जिसने मुझे तुरन्त आकारहीन असीम बृहत् में ऊपर उछाल दिया जो नये जगत् के बीजों से स्पन्दित हो रहा था।"*

साधारणतः निश्चेतना से किसी ऐसी चीज का भान होता है जो रूपहीन, जड़, आकारहीन, तटस्थ और धूम्रवर्ण हो—पहले, जब मैंने निश्चेतना के क्षेत्रों में प्रवेश किया था तो मैंने सबसे पहले इसी चीज को देखा था; लेकिन कल की अनुभूति में, वह एक कठोर, अनम्य और जमी हुई निश्चेतना थी, मानों किसी विरोध के लिये जम गयी हो। वह मानसिक निश्चेतना थी; और सारे प्रयास उस पर कोई छाप नहीं डालते थे, कोई चीज उसे भेद नहीं पाती थी। यह निश्चेतना शुद्ध जड़-भौतिक निश्चेतना से कहीं अधिक खराब है। यह मूल निश्चेतना न थी, यह, हम यूं कह सकते हैं, एक मानसिक भावापन्न निश्चेतना थी। यह सभी अनम्यता, कठोरता, संकीर्णता, जड़ता, विरोध सृष्टि में मानसिक उपस्थिति से आते हैं : मन ही इसे निश्चेतना में लाया है। जब मन का आविर्भाव नहीं हुआ था, तो निश्चेतना ऐसी न थी : वह आकारहीन थी और उसमें आकारहीन चीजों की नमनीयता थी। वह नमनीयता गायब हो गयी है।

अनुभूति का आरम्भ निश्चेतना में मन की क्रिया का बहुत अभिव्यंजक चित्र है : उसने निश्चेतना को आक्रामक बना दिया—वह पहले ऐसी न थी-—आक्रामक, प्रतिरोधी और दुराग्रही। असल में यही मेरी अनुभूति का आरम्भ बिन्दु था। वस्तुतः मैं लोगों कि मानसिक निश्चेतना में देखने की कोशिश कर रही थी, और यह मानसिक निश्चेतना बदलने से *इन्कार करती* है जब कि दूसरी विरोध नहीं करती; शुद्ध जड़-भौतिक निश्चेतना के अस्तित्व की कोई प्रणाली नहीं है, वह अस्तित्व नहीं रखती, वह किसी भी प्रकार से व्यवस्थित नहीं है। जब कि यह एक व्यवस्थित निश्चेतना है,

जिसकी व्यवस्था मानसिक प्रभाव के आरम्भ से हुई थी—और यह सौ गुना अधिक खराब है! अब यह पहले से कहीं अधिक बड़ी बाधा बन गयी है। पहले इसमें प्रतिरोध करने की शक्ति तक न थी, इसमें कुछ न था, यह सचमुच निश्चेतना थी। अब यह ऐसी निश्चेतना बन गयी है जो अपने परिवर्तन के निषेध में संगठित है। इसलिए मैंने लिखा, "सबसे अधिक कठोर, अनम्य और संकीर्ण"—यह ऐसी किसी चीज का भाव है जो तुम पर दबाव डालती है, अधिकाधिक दबाव डालती है—"सबसे अधिक दम घोंटने वाली।"

फिर मैंने लिखा, "मैं एक सर्वशक्तिमान् कमानी से टकरायी" इसका ठीक-ठीक यह अर्थ है: निश्चेतना की गहनतम गहराई में, एक सर्वश्रेष्ठ कमानी है जो हमें परम प्रभु का स्पर्श करा सकती है। क्योंकि निश्चेतना के एकदम तल में परम प्रभु हैं। परम प्रभु ही हमें परम प्रभु का स्पर्श करा सकते हैं। यही "सर्वशक्तिमान् कमानी" है।

यह हमेशा वही विचार है कि उच्चतम ऊंचाई गहनतम गहराई को छूती है। विश्व वृत्त की तरह है, उसे एक ऐसे सर्प की तरह माना जाता है जो अपनी ही पूंछ काटता है। इसका यह अर्थ है कि उच्चतम ऊंचाई अधिकतम जड़-भौतिक तत्त्व को बिना किसी मध्यस्थ के छूती है। मैं यह बहुत बार कह चुकी हूं, लेकिन यहां उस चीज की अनुभूति थी जो मुझे प्राप्त हुई थी।

और अन्त में मैंने कहा: "आकारहीन असीम बृहत् जो नये जगत् के बीजों से स्पन्दित हो रहा था।" यह आदिकालीन सृष्टि की ओर नहीं बल्कि अतिमानसिक सृष्टि की ओर संकेत है; तो यह अनुभूति सभी चीजों के परम उद्‌गम की ओर लौट जाने से सम्बद्ध नहीं है। मुझे एकदम ऐसी अनुभूति हुई कि मैं अतिमानसिक सृष्टि के उद्‌गम में प्रक्षिप्त की गयी: यह परम प्रभु की कोई ऐसी चीज है जिसे शायद पहले से ही अतिमानसिक सृष्टि के लिए प्रकट किया गया है।

वस्तुतः शक्ति, ऊष्मा और स्वर्ण का पूरा भाव था। वह तरल न था, बल्कि चूरन जैसे कोहरे की तरह था। और इन चीजों में से हर एक चीज (उन्हें कण या अंश यहां तक कि बिन्दु भी नहीं कहा जा सकता, जब तक कि उन्हें गणित के अर्थ में न लिया जाये, बिन्दु जो देश में कोई स्थान नहीं

घेरता) जीवन्त स्वर्ण की तरह थी, ऊष्मा भरे स्वर्ण का चूरन जैसा कोहरा, तुम उसे चमकदार नहीं कह सकते, न ही तुम उसे अन्धकारमय कह सकते हो; न ही वह प्रकाश था: स्वर्ण के असंख्य बिन्दु थे, बस इसके सिवा और कुछ नहीं। कह सकते हैं कि उन्होंने मेरी आंखों को, मेरे मुंह को स्पर्श किया... जबरदस्त शक्ति के साथ! और साथ ही साथ वहां एक परिपूर्णता का भान भी था, सर्वशक्तिमती शान्ति का भाव था—वह भरा हुआ, समृद्ध था। वह अपनी पराकाष्ठा तक पहुंची हुई गति था जो हर उस वस्तु से असंख्य गुना तेज था जिसकी तुम कल्पना कर सकते हो। और साथ ही साथ वह पूर्ण शान्ति और निश्चलता से भरपूर था।

और यह सर्वश्रेष्ठ कमानी, *सबके लिए* जो होता है, होकर रहेगा और होगा उसका पूरा-पूरा चित्र थी: तुम तुरन्त बृहत् में जा उछलते हो।

जिस अनुभूति का मैंने अभी-अभी वर्णन किया उसके बाद ही दूसरी अनुभूति हुई, उसे भी मैंने उसी समय लिख लिया था।[१]

[१] १५ नवम्बर, १९५८ की अगली वार्ता देखिये।

१५ नवम्बर, १९५८

१३ नवम्बर, १९५८ की अनुभूति

सच पूछो तो, तुम विरोधी शक्तियों के चंगुल से तब तक नहीं छूटते जब तक कि तुम हमेशा के लिए निम्न गोलार्द्ध के ऊपर, *प्रकाश में* न निकल आओ। और वहां "विरोधी शक्तियां" यह कथन अपना अर्थ खो बैठता है; वहां केवल प्रगति करने की शक्तियां होती हैं ताकि वे तुम्हें प्रगति करने को विवश करें। लेकिन तुम्हें चीजों को इस तरीके से देखने के लिए निम्न गोलार्द्ध से बाहर निकलना होगा; क्योंकि नीचे वे भागवत योजना का विरोध करने के लिए बहुत वास्तविक हैं।

पुरानी परम्पराओं में कहा जाता था कि तुम अपने शरीर को छोड़े बिना, परम उद्‌गम में वापिस लौटे बिना, बीस दिनों से अधिक उस उच्चतर अवस्था में नहीं जी सकते। अब यह बात सच्ची नहीं रही।

पूर्ण सामञ्जस्य की ठीक यही अवस्था जो सभी प्रहारों के परे है, अतिमानसिक उपलब्धि के साथ सम्भव होगी। यही वह अवस्था है जो उन सभी के लिए चरितार्थ होगी जो अतिमानसिक रूपान्तर के लिए निर्दिष्ट हैं। विरोधी शक्तियां यह अच्छी तरह से जानती हैं कि अतिमानसिक जगत् में वे स्वतः विलीन हो जायेंगी : कोई उपयोग न रहने के कारण कुछ भी किये बिना, केवल अतिमानसिक शक्ति की उपस्थिति से, वे विघटित हो जायेंगी। इसीलिए वे सब चीजों को, सभी चीजों को नकारती हुई क्रोध में इधर-से-उधर दौड़ती फिर रही हैं।

लेकिन दोनों जगतों के बीच की कड़ी अभी तक नहीं बनी है—वह बन रही है। तीन फरवरी की अनुभूति का यही अर्थ था[1], मुख्य रूप से इन दोनों जगतों के बीच सम्बन्ध जोड़ना था। क्योंकि वस्तुतः ये दोनों जगत् मौजूद हैं—एक के ऊपर एक नहीं बल्कि एक के अन्दर दूसरा—दो भिन्न आयामों में—लेकिन दोनों में कोई सम्पर्क नहीं। वे बिना एक साथ

[1]माताजी ने इस अनुभूति के बारे में, १९ फरवरी, १९५८ (प्रश्नोत्तर १९५७-५८, 'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९) की अपनी वार्ता में कहा है।

मिले एक-दूसरे को ढक लेते हैं। ३ फरवरी की अनुभूति में मैंने कुछ यहां के और कुछ बाहर के लोगों को देखा जो अपनी सत्ता के एक भाग में अभी से अतिमानसिक जगत् के सदस्य हो चुके हैं; लेकिन बीच में कोई सम्पर्क नहीं, कोई सम्मिलन नहीं। विश्व के इतिहास में वह समय अभी-अभी आया है जब इन दोनों के बीच नाता जोड़ना होगा।

पांच नवम्बर की अनुभूति दोनों जगतों के बीच कड़ी के निर्माण में एक नया चरण थी। वस्तुतः मैं अतिमानसिक सृष्टि के एकदम मूल में प्रक्षिप्त की गयी थी: वह सारा ऊष्माभरा स्वर्ण, वह जीवन्त विस्मयकारी शक्ति, वह परमोच्च शान्ति। मैंने एक बार फिर से देखा कि वे मूल्य जो इस अतिमानसिक जगत् में प्रचलित हैं, उनका हमारे नीचे के मूल्यों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, यहां तक कि सबसे अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण मूल्यों का भी, यहां तक कि वे मूल्य भी जिन्हें हम निरन्तर भागवत उपस्थिति में रहते हुए एकदम दिव्य समझते हैं, उनका भी कोई सम्बन्ध नहीं होता। सब कुछ एकदम अलग है।

न केवल पूजा और परम प्रभु के प्रति समर्पण की अवस्था में बल्कि यहां तक कि हमारे तादात्म्य की अवस्था में भी तादात्म्य की कोटि भिन्न होती है, यह इस पर निर्भर करता है कि हम इस ओर हैं, निम्न गोलार्द्ध में प्रगति कर रहे हैं या इसे पार करके दूसरे जगत् में, दूसरे गोलार्द्ध, उच्चतर गोलार्द्ध में निकल आये हैं।

उस क्षण परम प्रभु के साथ मेरा जिस तरह का सम्बन्ध था या वह जिस कोटि का था वह उस सम्बन्ध से एकदम भिन्न था जैसा हमारा उनके साथ यहां होता है, और यहां तक कि तादात्म्य की कोटि भी भिन्न थी। निम्न गतिविधियों को तो तुम बहुत अच्छी तरह समझ सकते हो कि वे भिन्न हैं, लेकिन वह हमारी यहां की अनुभूति की पराकाष्ठा थी, वह तादात्म्य जिसमें परम प्रभु ही रहते हैं और शासन करते हैं। हां तो, जब हम इस निम्न गोलार्द्ध में होते हैं और जब हम अतिमानसिक जीवन में होते हैं तो दोनों में वे एकदम भिन्न तरीके से रहते, शासन करते और जीते हैं। और उस क्षण[१] अनुभूति को जिस चीज ने तीव्रता दी वह यह थी कि मैंने

[१] १३ नवम्बर की अनुभूति।

अस्पष्ट रूप में चेतना की इन दोनों अवस्थाओं को एक साथ देखा। यह प्रायः ऐसा है मानों अपने-आपमें परम प्रभु ही भिन्न हैं, यानी, उनकी जो अनुभूति हमें होती है वह भिन्न है। और फिर भी दोनों अवस्थाओं में परम प्रभु के साथ सम्पर्क था। हां शायद, हम उन्हें कैसे देखते हैं, देखी हुई वस्तु को कैसे अनूदित करते हैं इसमें भेद है; लेकिन अनुभूति की कोटि अलग होती है।

दूसरे गोलार्द्ध में एक ऐसी तीव्रता, एक ऐसी बहुलता है जो अपने-आपको एक ऐसी शक्ति के द्वारा अभिव्यक्त करती है जो यहां की शक्ति से भिन्न है। इसे कैसे समझाया जाये? नहीं समझाया जा सकता। स्वयं चेतना का गुण बदला हुआ प्रतीत होता है। हम यहां जिस शिखर तक चढ़ सकते हैं यह कोई उससे भी ऊपर की चीज नहीं है, वह एक कदम आगे नहीं है : यहां हम अन्त में, शिखर पर हैं। यह कोटि ही भिन्न है, इस अर्थ में कि वहां एक बहुलता, एक समृद्धि, एक शक्ति है। हमारे तरीके से यह एक अनुवाद है, लेकिन कोई ऐसी चीज है जो हमारी पकड़ में नहीं आती—यह सचमुच चेतना का नया उल्टाव है।

जब हम आध्यात्मिक जीवन जीना शुरू करते हैं, तो चेतना में एक उल्टाव आ जाता है, जो हमारे लिए इस बात का प्रमाण है कि हमने आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश कर लिया है; हां, तो जब हम अतिमानसिक जगत् में प्रवेश करते हैं तो चेतना का एक और उल्टाव होता है।

इसके अतिरिक्त, शायद हर बार जब नया जगत् खुलेगा, तो फिर से इसी तरह का नया उल्टाव होगा। अतः यहां तक कि हमारा आध्यात्मिक जीवन भी—जो साधारण जीवन की तुलना में एकदम पूरी तरह से उल्टा है—अतिमानसिक चेतना, अतिमानसिक सिद्धि की तुलना में एकदम से इतना अलग है और अलग दीखता भी है कि दोनों के गुण लगभग विपरीत-से हैं।

हम इसे यूं कह सकते हैं (लेकिन यह बहुत अयथार्थ, घटिया बल्कि उससे भी बढ़कर विकृत है) : यह ऐसा है मानों हमारा सारा आध्यात्मिक जीवन चांदी से बना था जब कि अतिमानसिक सोने से बना है, मानों सम्पूर्ण आध्यात्मिक जीवन यहां नीचे, चांदी का स्पन्दन था, आभाहीन नहीं, लेकिन बस एक प्रकाश ही था, एक ऐसा प्रकाश जो शिखर तक

जाता है, एकदम शुद्ध प्रकाश, शुद्ध और तीव्र; लेकिन दूसरे जीवन में, अतिमानसिक जीवन में, एक समृद्धि और एक शक्ति है और सारा भेद इसी में है। हमारी चैत्य सत्ता का यह सारा आध्यात्मिक जीवन और हमारी वर्तमान चेतना जो इतनी ऊष्माभरी, इतनी भरपूर, इतनी विलक्षण, साधारण चेतना के सामने, इतनी चमकदार दीखती है, हां, तो यह सारी चमक नये जगत् की भव्यता के सामने निस्तेज दीखती है।

इस तथ्य को इस तरीके से बहुत अच्छी तरह से समझाया जा सकता है : उल्टावों की एक क्रमिक शृंखला, एक-के-बाद-एक, सृष्टि की नित नयी समृद्धि लाती है और इस तरह जो कुछ पहले था वह वर्तमान की तुलना में निस्तेज प्रतीत होता है। हमारे साधारण जीवन की तुलना में जो हमारे लिए बड़ी महान् समृद्धि होती है, वह चेतना के इस नये उल्टाव की तुलना में बहुत फीकी लगती है। मेरी अनुभूति यही थी।

पिछली रात जब मैंने यह जानने की कोशिश की कि कमी किस चीज की है ताकि मैं तुम लोगों को पूरी तरह से, सचमुच तुम्हारी कठिनाइयों से उबार सकूं, तो इस प्रयास ने मुझे उस बात की याद दिला दी जो मैंने तुम्हें परम शक्ति के बारे में बतायी थी, रूपान्तर की शक्ति, उपलब्धि की सच्ची शक्ति, अतिमानसिक शक्ति। एक बार तुम वहां प्रवेश कर लो, उस अवस्था तक उठ जाओ, तो तुम देखोगे कि यहां हम जो हैं उसकी तुलना में वह सचमुच सर्वशक्तिमान् है। तो मैंने फिर से एक बार देखा, और एक साथ दोनों अवस्थाओं को अनुभव किया।

लेकिन जब तक यह उपलब्धि पूर्ण तथ्य के रूप में चरितार्थ न हो जाये तब तक वह प्रगति की क्रिया ही रहेगी—प्रगति की क्रिया, एक चढ़ाई : तुम प्राप्त करते हो, तुम्हारा क्षेत्र बढ़ता जाता है, तुम अधिकाधिक ऊपर चढ़ते हो; यह तब तक होता है जब तक कि नया उल्टाव न आये, यह ऐसा है मानों वहां सब कुछ फिर से करने की आवश्यकता होती है। यहां नीचे की अनुभूति की वह पुनरावृत्ति होती है—उसे वहां दोहराया जाता है।

और हर बार तुम्हें यह आभास होता है कि तुम चीजों की सतह पर रहे हो। यह एक ऐसा आभास है जो बार-बार होता है। हर एक नयी विजय पर तुम्हें यह अनुभव होता है : "अभी तक मैं चीजों की केवल

सतह पर ही रहा हूं—चीजों की सतह पर—उपलब्धि की सतह पर, समर्पण की सतह पर, शक्ति की सतह पर—वह केवल चीजों की सतह थी, अनुभूति की सतह थी।" उस सतह के पीछे एक गहराई है और जब तुम गहराइयों में उतरते हो केवल तभी सच्ची चीज को छू सकते हो। और हर बार वही अनुभूति होती है: जो गहराई प्रतीत होती थी वह सतह बन जाती है, सतह, अपने सभी अर्थों में, यानी जो अयथार्थ, कृत्रिम, एक कृत्रिम अनुकृति, एक ऐसी चीज जो यह आभास देती है कि यह सचमुच जीवन्त नहीं है; यह नकल है, बनावटी है—एक चित्र है, छाया है लेकिन स्वयं वस्तु नहीं है। तुम किसी दूसरे क्षेत्र में निकल जाते हो और ऐसा भान होता है कि तुमने 'स्रोत' और 'शक्ति' को, चीजों के परम 'सत्य' को पा लिया; और फिर, यह स्रोत, यह शक्ति, यह सत्य नयी उपलब्धि की तुलना में छाया, कृत्रिमता, अनुकृति बन जाते हैं।

इस बीच हमें सचमुच यह जानना चाहिये कि अभी तक हमें कुंजी प्राप्त नहीं हुई है; यह हमारी पहुंच के अन्दर नहीं है। या हमें यह अच्छी तरह मालूम है कि वह कहां है, और हमें बस एक ही चीज करनी है: पूर्ण समर्पण, जिसके बारे में श्रीअरविन्द ने बतलाया है, चाहे जो भी हो, यहां तक कि रात्रि के अन्धकार में भी, भागवत संकल्प के प्रति पूर्ण आत्म-दान।

रात्रि भी है, सूर्य भी है, रात्रि और सूर्य, फिर से रात्रि, कई रात्रियां, लेकिन तुम्हें समर्पण के इस संकल्प से चिपके रहना होगा, उसके साथ ऐसे चिपके रहना होगा मानों तुम तूफान में हो और सभी चीजों को परम प्रभु के हाथों में सौंप देना होगा जब तक कि पूर्ण विजय-दिवस न आ जाये जब 'सूर्य' सदा-सर्वदा चमकता रहेगा।

२२ नवम्बर, १९५८

कर्म

इस तरह की भवितव्यता जिसका हम अपने जीवन पर कभी-कभी भारी दबाव अनुभव करते हैं, जिसे भारत में 'कर्म' कहा जाता है, पूर्व जीवनों का परिणाम है; सचमुच, यह ऐसी चीज है जिसे निःशेष कर देना चाहिये, यह ऐसी चीज है जो मनुष्य की चेतना पर भार बन जाती है।

चीजें यूं होती हैं : चैत्य सत्ता एक जीवन से दूसरे जीवन में जाती है, धरती का जीवन अधिक प्रगति, अधिक बुद्धि का अवसर और साधन होता है। लेकिन हो सकता है कि चैत्य अमुक अनुभूति से गुजरने के लिए, अमुक चीज को सीखने, या किसी निश्चित अनुभूति द्वारा किसी गुण-विशेष के विकास के इरादे से जन्म ले। फिर उस जीवन में, उस जीवन में जिसमें वह अनुभव होना है, किसी-न-किसी कारण से—बहुत-से कारण हो सकते हैं—अन्तरात्मा ठीक उस स्थान पर नहीं गिरती जहां उसे गिरना चाहिये था : किसी तरह का कोई स्थानान्तरण हो सकता है, विरोधी परिस्थितियां आ सकती हैं—ऐसा हो सकता है—और ऐसी अवस्था में जन्म पूरी तरह से विफल होता है और अन्तरात्मा दूसरे ज्यादा अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में चली जाती है। लेकिन दूसरी अवस्थाओं में अन्तरात्मा को यह अवसर मिलता ही नहीं कि वह यथार्थ रूप में जो चाहती है उसे करे और वह अपने-आपको अभागी परिस्थितियों में घसीटे जाता हुआ पाती है—केवल वस्तुपरक दृष्टि से नहीं बल्कि अपने विकास के लिए भी अभागी। और इससे यह जरूरी हो जाता है कि वह अपनी अनुभूति को फिर से शुरू करे और बहुधा पहले से कहीं अधिक कठिन परिस्थितियों में।

और अगर—कुछ भी हो सकता है—अगर यह दूसरा प्रयास भी असफल रहे, अगर परिस्थितियां एक बार फिर से, चैत्य जो करना चाहता है उसे असम्भव बना दें, अगर, उदाहरण के लिए शरीर में अपर्याप्त इच्छा या विचार में कोई विकार, या बहुत ही कठोर अहं हो और प्रयास का अन्त आत्महत्या में हो, तो चीज बहुत भयंकर बन जाती है। मैंने ऐसा कई बार देखा है; यह एक भीषण कर्म का सृजन करता है जिसकी पुनरावृत्ति जन्म-

जन्मान्तर तक हो सकती है जब तक कि अन्तरात्मा जीतने में और वह जो करना चाहती है उसे करने में समर्थ न हो जाये। और हर बार परिस्थितियां अधिकाधिक कठिन होती जाती हैं, हर बार बहुत अधिक प्रयास की मांग की जाती है। कभी-कभी यह भी कहा गया है कि मनुष्य इससे बाहर नहीं निकल सकता। वस्तुतः, अतीत की अवचेतन स्मृति, कठिनाई से बचने के लिए एक तरह की दुर्निवार कामना पैदा करती है और तुम फिर से वही बेवकूफी या उससे भी ज्यादा बड़ी बेवकूफी शुरू कर देते हो, और जो कठिनाई पहले से ही इतनी बड़ी थी, उसमें एक और कठिनाई जुड़ जाती है। इसके अतिरिक्त, ऐसे क्षण आते हैं —क्षण या परिस्थितियां—जब तुम्हारी सहायता करने के लिए, तुम्हें निर्देश देने के लिए, तुम्हारा पथ प्रदर्शन करने के लिए कोई नहीं होता। तुम एकदम-से अकेले होते हो और यह नहीं जान पाते कि किसका सहारा लिया जाये। तब वस्तुस्थिति बहुत भयंकर हो जाती है, परिस्थितियां बहुत जघन्य होती हैं।

लेकिन बस एक बार अगर अन्तरात्मा अभ्यर्थना करे, अगर एक बार उसका भागवत कृपा के साथ सम्पर्क हो जाये तो फिर अगले जीवन में वह अपने-आपको एकदम-से ऐसी परिस्थितियों में पाती है जहां सभी चीजें एक ही झटके में समाप्त की जा सकती हैं। उस क्षण तुम्हारे अन्दर महान् साहस, महान् सहिष्णुता होनी चाहिये, जब कि कभी-कभी सच्चा प्रेम ही काफी होता है। और अगर श्रद्धा हो—थोड़ी, बहुत थोड़ी भी पर्याप्त है—तो सभी चीजें एकदम साफ हो जाती हैं। लेकिन अधिकतर व्यक्तियों में आवश्यकता होती है महान् आत्मसंयमी साहस की, सहने और डटे रहने के सामर्थ्य की; प्रतिरोध करने की, विशेषकर उस अवस्था में जब पहले आत्महत्या की गयी हो, उसी बेवकूफी को फिर से करने के आकर्षण का प्रतिरोध करने की क्योंकि यह चीज बहुत भयंकर रचना खड़ी कर देती है। समस्या का सीधा सामना न करने की आदत भी होती है जो पलायन में अनूदित होती है। जब पीड़ा आये तो उड़ो, उड़ो। समस्या को अपने अन्दर सोखने की जगह, उसे कसकर जकड़ने की बजाय, यानी अन्दर से हिले-डुले बिना, झुके बिना, हां, सबसे बढ़कर, जब तुम अन्दर यह अनुभव करो, "मैं इसे और नहीं सह सकता" तो कभी मत झुको। अपने सिर को यथासम्भव शान्त रखो, उस गति का अनुसरण न करो, स्पन्दन की आज्ञा न मानो।

इसी की आवश्यकता होती है, बस इतने की ही : भागवत कृपा में श्रद्धा, भागवत कृपा का अन्तर्दर्शन, या फिर, पुकार की तीव्रता, या इससे भी अधिक अच्छा है, प्रत्युत्तर, प्रत्युत्तर, खुलती हुई, टूटती हुई गांठ, भागवत कृपा के इस अद्‌भुत प्रेम को प्रत्युत्तर।

दृढ़ संकल्प के बिना यह कठिन है, सबसे अधिक, सबसे बढ़कर कठिन है उस प्रलोभन का प्रतिरोध करना जो पिछले जन्मों की संचित शक्ति के कारण घातक प्रलोभन बन गया है। हर एक पराजय उसे नया बल देती है। छोटी-सी विजय उसे विघटित कर सकती है।

सबसे भयंकर चीज तब होती है जब तुम्हारे अन्दर बल नहीं होता, साहस नहीं होता, ऐसी चीज नहीं होती जो अदम्य हो। कितनी ही बार लोग मुझसे आकर कहते हैं : "मैं मरना चाहता हूं, मैं भाग जाना चाहता हूं, मैं मरना चाहता हूं।" और उन्हें उत्तर मिलता है : "हां, तो, फिर अपने प्रति मरो! तुमसे अपने अहं को जिन्दा रखने के लिए किसी ने नहीं कहा! चूंकि तुम मरना चाहते हो तो अपने प्रति मरो! वह साहस जुटाओ, अपने अहं के प्रति मरने का सच्चा साहस।"

लेकिन चूंकि यह 'कर्म' है, इसलिए तुम्हें अपने-आप भी कुछ करना होगा। कर्म अहं की रचना है; अहं को कुछ करना होगा, उसके लिए सब कुछ नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि 'कर्म' अहं की क्रियाओं का परिणाम है, और केवल तभी जब अहं अपनी गद्दी छोड़ दे, 'कर्म' विलीन होता है। तुम अहं की सहायता कर सकते हो, उसे सहयोग दे सकते हो, तुम उसे बल दे सकते हो और उसे साहस से अनुप्राणित कर सकते हो, लेकिन उसे इनका उपयोग करना होगा।

हम जो सचमुच हैं और जैसे वर्तमान में हैं, इन दोनों के बीच इतनी बड़ी खाई है कि इससे कभी-कभी हमारा सिर चकराने लगता है। हमें इस चक्कर के सामने झुकना नहीं चाहिये। हिलो मत। पत्थर की तरह तब तक निश्चल रहो जब तक यह चीज गुजर न जाये।

साधारणतः जब किसी 'कर्म' पर विजय पाने और भागवत कृपा द्वारा उसके विलीन होने का समय आ जाता है तो उस 'कर्म' के कारण के यथार्थ तथ्यों की अनुभूति, ज्ञान या उसका चित्र भी सामने आ जाता है, और तब उस क्षण से तुम सफाई शुरू कर सकते हो।

लेकिन बस, उस सबसे अधिक पीड़ाजनक बिन्दु पर, वहां जहां सुझाव सबसे अधिक शक्तिशाली होते हैं, तुम्हें प्रहार को सह जाना होगा। वरना तुम्हें हमेशा फिर से आरम्भ करना पड़ेगा, हमेशा फिर से आरम्भ करना पड़ेगा।

एक दिन, एक ऐसा क्षण आता है जब चीज करनी होती है, जब तुम्हें वह सच्ची आन्तरिक क्रिया करनी पड़ती है जो मुक्त करती है। सच बात तो यह है कि इस समय पृथ्वी पर एक ऐसा सुअवसर है जो हजारों वर्षों बाद ही आता है, आवश्यक शक्ति के साथ सचेतन सहायता। एक समय था जब ऐसा माना जाता था कि 'कर्म' के परिणामों को मिटाने का बल किसी चीज में नहीं है, और यह कि केवल शुद्धीकरण के ढेर-सारे अनुष्ठानों द्वारा उसे एकदम-से समाप्त करके ही परिणामों को रूपान्तरित, पूरी तरह से समाप्त किया और मिटाया जा सकता है। लेकिन अतिमानसिक शक्ति द्वारा, मुक्ति की प्रक्रिया के सभी सोपानों से गुजरने की आवश्यकता के बिना इसे किया जा सकता है।

जनवरी १९६०

मैंने पढ़ा है कि कुछ सन्तों के शरीर, उनकी मृत्यु के बाद, या तो विलीन होकर पुष्प बन गये, या फिर आकाश में गायब हो गये। क्या ऐसी चीज हो सकती है?

सब कुछ सम्भव है, हो सकता है कि ऐसा हुआ हो, लेकिन मुझे विश्वास नहीं कि ऐसा हुआ था। किताबों में जो कुछ कहा जाता है हम उस पर हमेशा विश्वास नहीं कर सकते। न ही इन घटनाओं और सन्त होने में कोई आवश्यक सम्बन्ध ही है। कुछ "माध्यमों" में, जैसा कि उन्हें कहा जाता है, असाधारण क्षमता होती है। उन्हें कुर्सी पर बिठाकर, उससे बांध दिया जाता है, चारों तरफ लोगों का पहरा रहता है और कमरे को बाहर से सुरक्षित रूप से अच्छी तरह ताला लगा दिया जाता है और फिर कमरे में अंधेरा कर दिया जाता है। कुछ समय बाद—माध्यम की क्षमता के अनुसार, कुछ कम या अधिक समय बाद— गांठे खुली मिलती हैं, कुर्सी खाली दीखती है : व्यक्ति गायब हो चुका है। फिर, साथ के कमरे में वह गहरी समाधि में लेटा हुआ मिलता है। माध्यम बन्द दरवाजों और मोटी दीवारों में से निकल गया। यह भौतिक तत्त्व को छिन्न-भिन्न करने और फिर से एकाग्र करने की शक्ति द्वारा होता है।

ऐसी घटनाएं एकदम से कठोर वैज्ञानिक नियन्त्रण में हुई हैं। तो विरले उदाहरणों में ऐसा सचमुच होता है लेकिन ये किसी धार्मिकता की निशानी नहीं हैं। उनमें कोई आध्यात्म तत्त्व नहीं होता। जो कुछ हो रहा होता है वह शुद्ध रूप से प्राणिक सत्ता की कोई क्षमता होती है। और बहुधा ये माध्यम बहुत ही निम्न चरित्र के लोग होते हैं जिनमें सन्तपने का कोई लवलेश तक नहीं होता।

लेकिन असली बात पर आयें। बड़े आदमियों या सन्तों के सम्बन्ध में सब तरह की कहानियां शुरू हो जाती हैं। जब श्रीअरविन्द ने शरीर नहीं छोड़ा था तो एक कहानी फैली हुई थी कि वे अपने कमरे की छत से निकलते थे—हां, भौतिक रूप में—और सब तरह के स्थानों पर घूमा करते थे। यहां तक कि यह किसी किताब में लिखा भी है। उन्होंने स्वयं

मुझे इसके बारे में बताया था।

कई किताबों में कहा गया है कि मीराबाई भौतिक रूप से श्रीकृष्ण की मूर्ति में समा गयीं थीं और फिर उन्हें किसी ने नहीं देखा।

क्या दूसरी किताबों में और कहानियां नहीं हैं?

यह भी सुना था कि आप कभी कलम से नहीं लिखतीं। कलम आपके लिए लिखता है।

तो लो!

तारीख के बिना : फरवरी १९६० से पहले

सच्चा कारण

जो लोग सच्चे पथ का अनुसरण करना चाहते हैं वे स्वभावतः दुर्भावना की सभी शक्तियों के प्रहारों के प्रति खुल जाते हैं जो न केवल समझती नहीं हैं बल्कि साधारणतः जिसे नहीं समझतीं उससे घृणा करती हैं।

लोग तुम्हारे बारे में जो द्वेषपूर्ण बेवकूफीभरी बातें कहते हैं अगर तुम उनसे परेशान, उद्विग्न या हतोत्साह भी हो जाते हो तो तुम पथ पर बहुत आगे न बढ़ पाओगे। और ये चीजें तुम्हारे पास इसलिए नहीं आतीं कि तुम अभागे हो या तुम्हारे भाग्य में सुख नहीं बदा, बल्कि इसके विपरीत, इसलिए आती हैं कि भागवत परम चेतना और परम कृपा तुम्हारे संकल्प को गम्भीरता से ले रही हैं और ऐसी परिस्थितियां बनाती हैं कि वे तुम्हारे रास्ते पर कसौटी बनें, यह देखने के लिए कि तुम्हारा संकल्प सच्चा है और तुम कठिनाई का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से बलवान् हो या नहीं।

इसलिए, अगर कोई तुम्हारा मजाक उड़ाये या कोई कठोर बात कहे तो सबसे पहली चीज है अपने अन्दर देखो और यह देखो कि वह कौन-सी दुर्बलता या अपूर्णता है जिसने ऐसी चीज को होने दिया। तुम इसलिए निराश, कुपित या उदास न होओ कि जिसे तुम अपना उचित मूल्य समझते हो लोग उसकी प्रशंसा नहीं करते; इसके विपरीत, तुम्हें भागवत कृपा को धन्यवाद देना चाहिये कि उसने तुम्हारी उस दुर्बलता, अपूर्णता या विकार की ओर इशारा किया जिसे तुम्हें ठीक करना है।

इसलिए दुःखी होने की जगह तुम पूरी तरह से सन्तुष्ट हो सकते हो और लाभ उठा सकते हो, उस हानि से पूरा लाभ उठा सकते हो जो कोई तुम्हें पहुंचाना चाहता था।

इसके अतिरिक्त, अगर तुम सचमुच पथ का अनुसरण और योग करना चाहते हो, तुम्हें वह इसलिए नहीं करना चाहिये कि लोग तुम्हारी प्रशंसा करें या तुम्हारा सम्मान करें; तुम्हें वह इसलिए करना चाहिये कि यह तुम्हारी सत्ता की अनिवार्य आवश्यकता है, इसलिए कि तुम केवल इसी

तरीके से सुखी हो सकते हो। लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं या नहीं करते इसका तुम्हारे लिए बिल्कुल कोई महत्त्व नहीं। तुम शुरू से ही अपने-आपसे कह सकते हो कि तुम सामान्य आदमी से जितने अधिक दूर होगे, सामान्य व्यक्ति के तरीकों से जितने अधिक अपरिचित होगे, उतनी ही कम तुम्हारी प्रशंसा होगी—यह बहुत स्वाभाविक है, क्योंकि वे तुम्हें समझ नहीं पायेंगे। और मैं फिर से कहती हूं कि इस चीज का किसी तरह का कोई महत्त्व नहीं है।

असली सच्चाई पथ का अनुसरण इसलिए करने में है क्योंकि तुम अन्यथा कर ही नहीं सकते, अपने-आपको भागवत जीवन के अर्पण करने में है क्योंकि तुम अन्यथा कर ही नहीं सकते, अपनी सत्ता को रूपान्तरित करने के प्रयास और प्रकाश में उठ आने में है क्योंकि तुम अन्यथा कर ही नहीं सकते, क्योंकि तुम्हारे जीने का यही एकमात्र कारण है।

जब ऐसा हो तो तुम निश्चित हो सकते हो कि तुम उचित पथ पर हो।

४ जून, १९६०

हम सवेरे थके हुए क्यों उठते हैं, और ज्यादा अच्छी नींद के लिए हमें क्या करना चाहिये?

अगर तुम सवेरे थके हुए उठते हो तो यह *तमस्* के कारण है, और किसी चीज के कारण नहीं, भयंकर पुंजीभूत *तमस्;* जब मैंने शरीर का योग आरम्भ किया तो मैंने स्वयं यह देखा था। जब तक शरीर रूपान्तरित न हो जाये यह अपरिहार्य है।

तुम्हें पीठ के बल सीधे लेट जाना चाहिये और अपनी सभी मांसपेशियों और सभी स्नायुओं को ढीला छोड़ देना चाहिये—यह सीखना आसान है—एकदम ऐसा होना चाहिये जिसे मैं बिस्तर पर पड़े लत्ते जैसा होना कहती हूं: अन्य कुछ नहीं रहता। और अगर तुम मन के साथ भी यही कर सको, तो तुम उन सभी मूर्खताभरे सपनों से पिंड छुड़ा सकते हो जो तुम्हें जागने पर, बिस्तर पर जाते समय की अपेक्षा ज्यादा थका देते हैं। मस्तिष्क की कोषीय गतिविधि ही बिना नियन्त्रण के निरन्तर चलती रहती है और यह तुम्हें बहुत थका देती है। तो, होनी चाहिये एक पूर्ण शिथिलता, एक तरह की पूर्ण निश्चलता जिसमें कोई तनाव न हो, जिसमें सब कुछ थम जाये। लेकिन यह तो आरम्भ मात्र है।

बाद में, तुम यथासम्भव पूर्ण आत्मदान करो, सभी चीजों का, ऊपर से लेकर नीचे तक, बाहर से लेकर अन्दर तक, सबका। और अपने अहं के सारे प्रतिरोध का यथासम्भव पूर्ण रूप से उन्मूलन करो। और बाद में तुम अपना मन्त्र जपना शुरू करो—तुम्हारा अपना मन्त्र, अगर तुम्हारे पास कोई हो तो, या कोई भी शब्द जिसमें तुम्हारे लिए शक्ति हो, ऐसा शब्द जो प्रार्थना की तरह, सहज रूप में हृदय से प्रकट हो, ऐसा शब्द जो तुम्हारी अभीप्सा को समाहित करे। उसे कई बार दोहराने के बाद, अगर तुम अभ्यस्त हो तो समाधि में चले जाओ। और उस समाधि से होकर नींद में प्रवेश करो। समाधि उतनी देर रहती है जितनी देर रहनी चाहिये और फिर सहज, नैसर्गिक रूप से तुम नींद में चले जाते हो। लेकिन इस नींद से जब

तुम जगते हो, तो तुम्हें सब कुछ याद रहता है; नींद में भी मानों समाधि ही जारी रही।

मूलतः, नींद का एकमात्र उद्देश्य है शरीर को समाधि के प्रभाव को पचा लेने के योग्य बनाना जिससे कि प्रभाव सभी जगह ग्रहण किया जा सके और शरीर को इस योग्य बनाया जा सके कि वह विष निष्कासन का अपना स्वाभाविक रात का काम कर सके। और इस तरह जब तुम जागते हो तो नींद से आने वाला वह भारीपन लेशमात्र भी नहीं होता : समाधि का प्रभाव जारी रहता है।

उन लोगों के लिए भी जो कभी समाधि में नहीं गये, सोने से पहले कोई मन्त्र या शब्द जपना या प्रार्थना करना अच्छा है। लेकिन शब्दों में जीवन होना चाहिये; मेरा मतलब बौद्धिक अर्थ से नहीं है, उस तरह की किसी चीज से नहीं, बल्कि स्पन्दन से है। और उसका शरीर पर असाधारण प्रभाव होता है : उसमें स्पन्दन आरम्भ हो जाता है, वह स्पन्दित, स्पन्दित, स्पन्दित होता है... और फिर शान्ति से तुम अपने-आपको छोड़ दो, मानों तुम सोना चाहते हो। शरीर अधिकाधिक स्पन्दित होता है, अधिकाधिक, अधिकाधिक स्पन्दित होता है और तुम दूर चले जाते हो। तमस् का यही उपचार है।

तमस् ही बुरी नींद का कारण है। बुरी नींद दो तरह की है : एक तो वह जो तुम्हें भारी, सुस्त बना देती है मानों तुम पिछले दिन किये गये प्रयास के सारे प्रभाव को खो बैठे हो; और दूसरी वह जो तुम्हें एकदम श्रांत बना देती है मानों तुमने अपना समय लड़ने में बिताया हो। मैंने देखा है कि अगर तुम अपनी नींद को टुकड़ों में बांट लो (यह एक ऐसी आदत है जिसे तुम डाल सकते हो) तो रातें ज्यादा अच्छी हो जाती हैं। यानी तुम्हें नियत अन्तराल में अपनी सामान्य चेतना और अपनी सामान्य अभीप्सा में लौट आ सकना चाहिये—तुम चेतना की पुकार के साथ वापिस आ सको। लेकिन इसके लिए तुम्हें अलार्म-घड़ी का उपयोग नहीं करना चाहिये! जब तुम समाधि में हो, तो उसमें से झकझोर कर बाहर निकाला जाना अच्छा नहीं होता।

जब तुम सोने के लिए जाने लगो, तो तुम एक कार्यक्रम बना सकते हो; कहो : "मैं अमुक समय पर उठ जाऊंगा" (बचपन में तुम इसे बहुत

अच्छी तरह कर सकते हो) नींद के पहले अन्तराल में तुम्हें तीन घण्टे रखने चाहियें, अन्तिम के लिए एक घण्टा पर्याप्त है। लेकिन पहला कम-से-कम तीन घण्टों का होना चाहिये। कुल मिलाकर, तुम्हें बिस्तर पर कम-से-कम सात घण्टे रहना चाहिये; छह घण्टों में तुम्हारे पास रातों को उपयोगी बनाने के लिए कुछ अधिक करने का समय नहीं होता (स्वभावतः मैं इसे साधना के दृष्टिकोण से देख रही हूं)।

रातों को उपयोगी बनाना बहुत अच्छी बात है। इसका दोहरा प्रभाव होता है: एक होता है नकारात्मक प्रभाव, जो तुम्हें पीछे गिरने से, जो कुछ तुमने पाया है उसे खोने से बचाता है—यह खोना सचमुच पीड़ाजनक है—और एक होता है सकारात्मक प्रभाव, तुम कुछ प्रगति करते हो, तुम प्रगति करना जारी रखते हो। तुम रातों को उपयोगी बनाते हो, अतः इस तरह थकान लेशमात्र भी नहीं आती।

तुम्हें दो चीजें निकाल बाहर करनी चाहिये: अवचेतन और निश्चेतन की उन सब चीजों के साथ,—जो ऊपर उठती हैं, तुम पर आक्रमण करती हैं, तुममें प्रवेश करती हैं,—निश्चेतना के व्यामोह में जा गिरना; और दूसरी चीज है प्राणिक और मानसिक अति-क्रियाशीलता जिसमें तुम शब्दशः भयंकर युद्ध लड़ते हुए अपना समय गुजारते हो। लोग उस अवस्था में से आहत होकर निकलते हैं, मानों उन्हें घूंसे लगे हों। और उन्होंने सचमुच घूंसे खाये भी—"मानों" नहीं! और मैं इससे बाहर निकलने का एक ही रास्ता जानती हूं: नींद की प्रकृति को बदलना।

१८ जुलाई, १९६०

स्वाभाविक है इन पुरानी वार्ताओं पर तारीखें लिखी गयी हैं, लेकिन कोई इन तारीखों पर ध्यान नहीं देता। उन्हें आज की चीजों के साथ भला किस तरह मिलाया जा सकता है जो बिल्कुल भिन्न स्तर पर हैं?

एक ऐसी अनुभूति होती है जहां तुम एकदम से कालातीत होते हो, यानी, सामने, पीछे, ऊपर, नीचे, सब समान होता है। इस तादात्म्य में, तादात्म्य के क्षण में भूत, वर्तमान, भविष्य कुछ नहीं रह जाता। और सचमुच, जानने का यही एकमात्र तरीका है।

जैसे-जैसे अनुभूतियां बढ़ रही हैं, ये पुरानी वार्ताएं मुझे ऐसे आदमी का आभास देती हैं जो किसी बगीचे के बाहर चारों तरफ घूमता हुआ अन्दर की चीजों के बारे में बताता हो। लेकिन एक समय आता है जब तुम स्वयं बगीचे में प्रवेश करते हो और वहां क्या है इसके बारे में कुछ ज्यादा जान लेते हो। और मैं प्रवेश करना आरम्भ कर रही हूं। मैं आरम्भ कर रही हूं।

१८ जुलाई, १९६१[१]

प्रस्तुत प्रश्न श्रीअरविन्द के इस सूत्र पर आधारित है: "पाप वह है जो एक समय अपने स्थान पर था, दुराग्रह करते हुए अब वह स्थानभ्रष्ट हो गया है; इसके अलावा कोई दूसरा पाप नहीं है।"

वे कौन-सी सबसे पहली चीजें हैं जिन्हें अतिमानसिक शक्ति निकाल बाहर करना चाहती है या बाहर निकालने की कोशिश कर रही है, जिससे व्यक्तिगत और वैश्व दोनों रूपों में हर चीज अपने स्थान पर हो?

बाहर निकालना? लेकिन क्या वह किसी भी चीज को निकाल बाहर करेगी? अगर हम श्रीअरविन्द के विचार को स्वीकारें तो वह हर चीज को यथास्थान रख देगी, बस इतना ही।

एक चीज अनिवार्य रूप से बन्द होनी ही चाहिये, और वह है विकृति, यानी, परम सत्य के ऊपर मिथ्यात्व का पर्दा, क्योंकि जो कुछ हम यहां देखते हैं उसके लिए वही उत्तरदायी है। अगर उसे हटा दिया जाये तो चीजें पूरी तरह से बदल जायेंगी, पूरी तरह से। वे वैसी ही हो जायेंगी जैसा हम उन्हें इस चेतना से बाहर निकलने पर अनुभव करते हैं। जब व्यक्ति इस चेतना से निकलकर सत्य चेतना में प्रवेश करता है, तो भेद इतना महान् होता है कि वह आश्चर्य करता है कि दुःख-दर्द, सन्ताप, मृत्यु और इसी तरह की चीजें भला हो कैसे सकती हैं। अचरज इस अर्थ में होता है कि तुम यह नहीं समझ पाते कि यह कैसे हो सकता है—जब तुम सचमुच दूसरी तरफ चले जाते हो। लेकिन साधारणतः जैसा कि हम जानते हैं यह अनुभूति जगत् की अयथार्थता की अनुभूति से सम्बद्ध कर ली जाती है; जब कि श्रीअरविन्द कहते हैं कि अतिमानसिक चेतना में रहने के लिए जगत् की अयथार्थता का दर्शन जरूरी नहीं है, यह केवल मिथ्यात्व की अयथार्थता है, जगत् की अयथार्थता नहीं। यानी, मिथ्यात्व से स्वतन्त्र,

[१] प्रश्न और इस वार्ता के पहले तीन परिच्छेद 'मातृवाणी', खण्ड १० में ('विचार और सूत्र' के प्रसंग में) भी प्रकाशित हुए हैं।

जगत् की अपनी यथार्थता है।

मेरे ख्याल से अतिमन का यह पहला प्रभाव है—व्यक्ति पर पहला प्रभाव, क्योंकि वह व्यक्ति से ही शुरू होगा।

सम्भवतः नयी चेतना की इस अवस्था को स्थायी अवस्था बनना पड़े। लेकिन तब एक समस्या उठ खड़ी होती है : व्यक्ति जगत् की इस वर्तमान विकृत अवस्था के सम्पर्क में कैसे रह सकता है? क्योंकि मैंने एक चीज देखी है : जब मेरे अन्दर यह अवस्था बहुत तीव्र होती है, बहुत तीव्र, इतनी तीव्र कि वह बाहर से बमवर्षा करने वाली किसी भी चीज का प्रतिरोध कर सकती है, उस समय मैं जो कुछ कहती हूं, लोग उसे बिल्कुल नहीं समझ पाते, बिलकुल कुछ नहीं; तो निश्चित रूप से यह अवस्था एक उपयोगी सम्पर्क से दूर हटा लेती है।

उदाहरण के लिए केवल पृथ्वी को लो, तो थोड़ी-सी अतिमानसिक सृष्टि कैसे हो सकती है, अतिमानसिक क्रिया का एक केन्द्रबिन्दु जो पृथ्वी पर विकीरित हो? क्या यह सम्भव है? तुम अतिमानवीय सृष्टि और अतिमानवों के किसी केन्द्रबिन्दु की भली-भांति कल्पना कर सकते हो, यानी, ऐसे मनुष्यों की जो क्रमविकास और रूपान्तर (शब्द के सच्चे अर्थ में) के द्वारा अतिमानसिक शक्तियों को अभिव्यक्त करने में सफल हुए; लेकिन उनका मूल मानव है और चूंकि उनका मूल मानव है इसलिए आवश्यक रूप से एक सम्पर्क भी रहता है; अगर सब कुछ रूपान्तरित हो गया हो, यहां तक कि अवयव भी शक्ति के केन्द्रों में रूपान्तरित हो गये हों, फिर भी कुछ-न-कुछ मानवीय रह जाता है मानों कुछ रंग रह गया हो। परम्परा के अनुसार, ये ही सत्ताएं सामान्य 'प्रकृति' की प्रक्रिया में से गुजरे बिना सीधे होने वाले अतिमानसिक प्रजनन के रहस्य को खोजेंगी और इन्हीं के द्वारा अतिमानसिक सत्ताएं जन्म लेंगी, वे सत्ताएं जो अनिवार्य रूप से अतिमानसिक जगत् में रहेंगी। लेकिन फिर इन सत्ताओं और साधारण जगत् के बीच सम्पर्क कैसे स्थापित होगा? तब 'प्रकृति' के रूपान्तरण की अवधारणा कैसे की जा सकती है, ऐसे पर्याप्त रूपान्तर की जो पृथ्वी पर अतिमानसिक सृष्टि को लाये। मैं नहीं जानती।

स्वाभाविक है कि किसी ऐसी चीज के होने के लिए, पर्याप्त लम्बी अवधि की आवश्यकता होती है, यह हम जानते हैं; और शायद श्रेणियां

हों, सोपान हों और ऐसी चीजें प्रकट हों जिन चीजों के बारे में हम अभी कुछ नहीं जानते या जिनकी कल्पना नहीं करते, वे पृथ्वी की अवस्थाओं को बदल देंगी—लेकिन इसका अर्थ हुआ हजारों वर्ष आगे की देखना।

यह समस्या बनी रहती है : क्या देश की इस धारणा का उपयोग किया जा सकता है, मेरा मतलब है पार्थिव गोले के देश से।[१] क्या ऐसा स्थान मिलना सम्भव है जहां हम भावी अतिमानसिक जगत् के अंकुर या उसके भ्रूण की रचना कर सकें? यह योजना सम्पूर्ण ब्योरे के साथ आयी, लेकिन यह एक ऐसी योजना है जो अपने भाव और चेतना में पृथ्वी पर, अभी जो सम्भव है, उसके साथ बिलकुल भी सादृश्य नहीं रखती; यद्यपि अपनी सबसे अधिक जड़-भौतिक अभिव्यक्ति में, यह पार्थिव अवस्थाओं पर आधारित थी। यह एक ऐसी आदर्श नगरी की धारणा है जो एक आदर्श देश का केन्द्र होगी, ऐसी नगरी, जिसके बाहरी जगत् के साथ एकदम सतही और अपने प्रभाव में बहुत ही सीमित सम्पर्क होंगे। और तुम्हें उसकी धारणा पहले से बना लेनी होगी—यह सम्भव है—ऐसी शक्ति की धारणा जो पर्याप्त रूप से बलशाली हो और साथ-ही-साथ दुर्भावना, घुसपैठ और सम्मिश्रण के विरुद्ध बचाव हो (इस सुरक्षा को पाना अत्यधिक कठिन न होगा)। अगर आवश्यक हो तो तुम उसकी धारणा बना सकते हो। सामाजिक दृष्टिकोण से, व्यवस्था की दृष्टि से, आन्तरिक जीवन के दृष्टिकोण से ये समस्याएं नहीं हैं। समस्या है, जो अतिमानसिक नहीं बना है उसके साथ सम्बन्ध की, घुसपैठ को रोकने और सम्मिश्रण न होने देने की: यानी, केन्द्र को पलटकर निम्न सृष्टि में गिरने से बचाने की—यह संक्रमणकाल की समस्या है।

उन सब लोगों ने जिन्होंने इस समस्या के बारे में सोचा है हमेशा किसी ऐसी चीज की कल्पना की है जो शेष मानवता के लिए अज्ञात हो, उदाहरण के लिए हिमालय की किसी घाटी में, ऐसा स्थान, जो शेष जगत् के लिए अज्ञात हो। लेकिन यह समाधान नहीं है; बिल्कुल नहीं।

नहीं, एकमात्र समाधान है कोई गुह्यशक्ति, लेकिन इसका यह अर्थ हो

[१] बाद में इस वाक्य का अर्थ पूछने पर, माताजी ने हंसते हुए कहा : "मैंने इसे दूसरी तरफ का देश कहा था!—उस तरफ का जहां देश की धारणा इतनी ठोस नहीं है।"

गया कि कुछ किया जा सके इसके पहले एक निश्चित संख्या में व्यक्ति सिद्धि की महान् पूर्णता तक पहुंच चुके हों। लेकिन तुम इसकी कल्पना कर सकते हो कि अगर यह किया जा सके, तो एक ऐसा स्थान हो सकता है जो बाहरी जगत् के बीच में होते हुए भी पृथक् हो (किसी तरह का कोई सम्पर्क न हो), ऐसा स्थान जहां सब कुछ ठीक अपने स्थान पर होगा। हर चीज ठीक अपने स्थान पर, हर मनुष्य अपने स्थान पर, हर गति ठीक अपने स्थान पर—आरोहण करती हुई प्रगतिशील गति में यथास्थान, जहां किसी तरह का कोई प्रत्यावर्तन न होगा, यानी सामान्य जीवन में जो होता है उससे एकदम विपरीत होगा। स्वभावतः, इससे एक तरह की पूर्णता का पूर्वानुमान लगाया जाता है, एक तरह की एकता का पूर्वानुमान लगाया जाता है, इससे यह पूर्वानुमान लगाया जाता है कि परम प्रभु के विभिन्न पहलू प्रकट किये जा सकते हैं, और निस्सन्देह, एक असाधारण सौन्दर्य, एक पूर्ण सामञ्जस्य और एक ऐसी पर्याप्त बलशालिनी शक्ति का पूर्वानुमान लगाया जाता है जो 'प्रकृति' की शक्तियों से आज्ञापालन करवा सके। उदाहरण के लिए, अगर यह स्थान विनाश की शक्तियों से घिरा हो तो भी उनके अन्दर क्रिया करने की शक्ति न होगी; पर्याप्त सुरक्षा होगी। यह सब उन व्यक्तियों से चरम पूर्णता की मांग करता है जो इस तरह की चीज के प्रबन्धक होंगे।

(मौन)

सचमुच, कोई नहीं जानता कि आदिम मनुष्यजाति कैसे बनी, मन कैसे अस्तित्व में आया। हम यह भी नहीं जानते कि क्या वे पृथक्-पृथक् व्यक्ति थे या समूह थे, क्या यह दूसरों के बीच हुआ या निर्जनता में। मैं नहीं जानती। लेकिन भावी अतिमानसिक सृष्टि के साथ ऐसा साम्य हो सकता है। इसकी कल्पना करना कठिन नहीं है कि हिमालय के एकान्त या किसी अछूते वन की निर्जनता में कोई एक व्यक्ति अपने चारों तरफ अपने छोटे-से अतिमानसिक जगत् का निर्माण आरम्भ कर दे। यह कल्पना करना आसान है। लेकिन वही चीज आवश्यक होगी: उसे ऐसी पूर्णता तक पहुंचना होगा कि किसी भी अनुचित हस्तक्षेप को हटाने के लिए उसकी

शक्ति स्वयमेव क्रिया करे, ताकि उसका जगत् स्वतः सुरक्षित रहे, यानी सभी प्रतिकूल या विजातीय तत्त्व पास आने से रोक दिये जायें।

इस तरह की कहानियां कही जाती रही हैं, ऐसे लोगों की जो एक आदर्श एकान्त में रहते थे। इसकी कल्पना करना असम्भव बिलकुल नहीं है। जब तुम इस 'शक्ति' के सम्पर्क में होते हो, जब यह तुम्हारे अन्दर होती है, उस क्षण तुम भली-भांति देखते हो कि यह बच्चों का खेल है; यहां तक कि कुछ चीजों को बदलना भी सम्भव हो जाता है, आस-पास के स्पन्दनों और आकारों पर प्रभाव डालना सम्भव हो जाता है जो स्वतः ही अतिमानसिक बनना शुरू कर देते हैं। यह सब सम्भव है, लेकिन है व्यक्तिगत स्तर पर। जब कि, जो कुछ यहां हो रहा है उसका उदाहरण लो, व्यक्ति इस सारी विशृंखलता के ठीक केन्द्र में रहता है, कठिनाई यही है! क्या इस एक तथ्य का यह अर्थ नहीं है कि तब उपलब्धि में एक तरह की पूर्णता पाना असम्भव है? लेकिन फिर, वन की निर्जनता के उदाहरण में भी यह बिलकुल भी प्रमाणित नहीं होता कि शेष मानवता उसका अनुसरण कर पायेगी या नहीं; जब कि जो कुछ यहां हो रहा है वह अपने-आपमें अभी से कहीं अधिक प्रसारित होने वाली क्रिया है। निश्चित समय पर यही होना चाहिये, इसे अनिवार्य रूप से होना चाहिये। लेकिन समस्या बनी ही रहती है : क्या यह चीज उसी समय या दूसरी चीज के चरितार्थ होने से पहले हो सकती है—व्यक्ति के, एक व्यक्ति के अतिमानसिक होने से पहले या उसी समय?

स्पष्टतया, किसी भी व्यक्तिगत उपलब्धि की अपेक्षा समूह या दल के साथ रहते हुए उपलब्धि बहुत अधिक पूर्ण, सर्वांगीण, समग्र और शायद अधिक परिपूर्ण होती है। व्यक्तिगत उपलब्धि तो हमेशा *अनिवार्य रूप से* बाहरी, जड़-भौतिक स्तर पर एकदम सीमित होती है, क्योंकि यह तो सत्ता की केवल एक विधा, अभिव्यक्ति की मात्र एक विधा होती है, यह तो बस स्पन्दनों के एक अति सूक्ष्म समूह को छूती है।

लेकिन कार्य की सरलता की दृष्टि से, मेरा ख्याल है इनमें कोई तुलना नहीं है।

(मौन)

समस्या बनी रहती है। बुद्ध और दूसरे सभी लोगों ने पहले सिद्धि प्राप्त की और फिर वे जगत् के साथ सम्पर्क में आये: हां, यह बहुत आसान है। लेकिन मेरी दृष्टि में जो है उसके लिए क्या यह अनिवार्य अवस्था नहीं है, कि सिद्धि को पूर्ण बनाने के लिए व्यक्ति जगत् में रहे?

३ अप्रैल, १९६२

(कई हफ्तों की गम्भीर बीमारी के बाद जिसमें माताजी का जीवन खतरे में था।)

कल रात ठीक ११, १२ बजे के बीच मुझे एक अनुभूति हुई जिससे मुझे यह पता चला कि व्यक्तियों का एक दल है—जान-बूझकर मुझे उनका परिचय नहीं दिया गया—जो श्रीअरविन्द के दैवी सन्देश पर आधारित एक धर्म की स्थापना करना चाहते हैं। लेकिन उन्होंने केवल शक्ति और बल का पक्ष लिया है, एक तरह का ज्ञान और उस सबका जो आसुरिक शक्तियों द्वारा उपयोग में लाया जा सकता है। एक बहुत बड़ी आसुरिक सत्ता है जो श्रीअरविन्द का रूप धरने में सफल हो गयी है। वह रूप मात्र है। श्रीअरविन्द के इस रूप ने मेरे सामने घोषणा की कि मैं जिस काम को कर रही हूं वह उनका काम नहीं है। उसने यह घोषणा की कि मैं उनके और उनके काम के प्रति विश्वासघाती हूं और उसने मेरे साथ कोई सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया।

उस दल में एक आदमी ऐसा है जिसे मैंने एकाध बार देखा जरूर होगा, जो भाव में उनके साथ एक नहीं है केवल बाहरी रूप-रंग में उनके साथ है। लेकिन वह ज्ञानरहित है, वह नहीं जानता कि वह किस तरह की सत्ता है। और वह यह मानते हुए कि वह सचमुच श्रीअरविन्द है, हमेशा यह आशा रखता है कि वह उस सत्ता के द्वारा मुझसे स्वीकार करवा लेगा। उस सत्ता को मैंने पिछली रात देखा था। मैं अन्तर्दर्शन के सब ब्योरे नहीं दूंगी—यह आवश्यक नहीं है। लेकिन मुझे कहना पड़ेगा कि मैं पूरी तरह सचेतन थी, हर चीज से अभिज्ञ थी, मुझे यह मालूम था कि वह आसुरिक शक्ति थी—लेकिन मैं श्रीअरविन्द की अनन्तता के कारण उसका त्याग नहीं कर रही थी। मैं जानती थी कि हर वस्तु उनका अंश है और मैं किसी वस्तु का त्याग नहीं करना चाहती। पिछली रात मैं इस सत्ता से तीन बार मिली, यहां तक कि मैंने पूरे प्रेम और समर्पण के साथ उन पापों के लिए भी क्षमा-याचना की जो मैंने नहीं किये। मैं १२ बजे जगी, मुझे सब कुछ याद था। सवा बारह से दो बजे तक मैं सच्चे श्रीअरविन्द के साथ पूर्णतम, मधुरतम सम्बन्ध के साथ थी—वहां भी पूर्ण चेतना, जागरूकता,

शान्ति और समभाव में थी। दो बजे मैं जगी और मैंने देखा, ठीक उससे पहले स्वयं श्रीअरविन्द ने मुझे यह दिखाया कि अभी तक वे पूरी तरह से भौतिक राज्य के स्वामी नहीं हैं। मैं दो बजे उठी और मैंने देखा कि यह दल जो इस शरीर से मेरा जीवन ले लेना चाहता था, उसके प्रहार से मेरे हृदय पर प्रभाव पड़ा क्योंकि वह जानता था कि जब तक मैं पृथ्वी पर सशरीर हूं तब तक उसका उद्देश्य सफल न होगा। इस दल का पहला प्रहार बहुत साल पहले, अन्तर्दर्शन और क्रिया में हुआ था। वह रात को हुआ था और मैंने इसके बारे में किसी से कुछ नहीं कहा। मैंने वह तारीख लिख ली थी, और अगर मैं इस संकट से निकल सकी तो मैं उसे ढूंढ़ कर प्रकट कर दूंगी। वे मुझे बरसों पहले मरा देखना चाहते थे। मेरे जीवन के इन प्रहारों के उत्तरदायी वे लोग ही हैं। अब तक मैं इसलिए जिन्दा हूं क्योंकि परम प्रभु मुझे जिन्दा रखना चाहते हैं, नहीं तो मैं कब की चली गयी होती।

मैं अब अपने शरीर में नहीं हूं। मैंने उसकी देखरेख भगवान् के हाथों में सौंप दी है, वे ही निश्चय करेंगे कि उसे अतिमानसिक होना है या नहीं। मैं जानती हूं और मैंने कह भी दिया है कि यह अन्तिम युद्ध है। यह शरीर जिस उद्देश्य के लिए जी रहा है अगर उसे चरितार्थ होना है, यानी अतिमानसिक रूपान्तर की ओर पहले चरण रखने हैं, तो यह आज जीना जारी रखेगा। यह परम प्रभु का निश्चय है। मैं पूछ तक नहीं रही कि उनका निश्चय क्या है। अगर शरीर युद्ध को सहने में अक्षम हो, अगर उसे विघटित होना पड़े, तो मानवजाति बहुत ही संकट-काल से गुजरेगी। जो आसुरिक शक्ति श्रीअरविन्द का रूप धरने में सफल हुई है वह अतिमानसिक सिद्धि के नाम पर एक नये धर्म या विचार का निर्माण करेगी जो शायद क्रूर, दयाहीन हो। लेकिन सबको यह जानना चाहिये कि यह सच नहीं है, यह श्रीअरविन्द की शिक्षा नहीं है, उनकी शिक्षा का सत्य नहीं है। श्रीअरविन्द का सत्य प्रेम, प्रकाश और करुणा का सत्य है। वे मंगलकारी हैं, महान् हैं, अनुकम्पा के आगार हैं और भगवान् हैं। और अन्तिम विजय उन्हीं की होगी।

अब, अगर व्यक्तिगत रूप से तुम सहायता करना चाहते हो तो तुम्हें बस प्रार्थना करनी होगी। परम प्रभु जो चाहेंगे वह होगा। वे जो चाहेंगे, इस शरीर से वही करायेंगे, यह शरीर जो क्षुद्र चीज है।

बाद में जब इस प्रतिलिपि को श्रीमां को सुनाया गया, तो उन्होंने कहा :

युद्ध शरीर के अन्दर हो रहा है। यह नहीं चल सकता। या तो उन्हें पराजित होना होगा या फिर यह शरीर पराजित होगा। सब कुछ परम प्रभु के निर्णय पर निर्भर करता है।

यह युद्धक्षेत्र है। यह कहां तक सह सकता है, मुझे मालूम नहीं। अन्ततः यह *उन पर* निर्भर है। वे जानते हैं कि समय आ गया है या नहीं, *विजय* के आरम्भ का समय—तब शरीर जियेगा; अगर ऐसा न हुआ तो मेरा प्रेम और मेरी चेतना तो रहेंगे ही।

१३ अप्रैल, १९६२

१२ अप्रैल, १९६२ की रात की अनुभूति

(कई हफ्तों की गम्भीर बीमारी के बाद जिसमें माताजी का जीवन खतरे में था।)

अचानक रात को मैं इस पूर्ण अभिज्ञता के साथ जगी जिसे हम 'जगत् का योग' कह सकते हैं। परम प्रेम महान् स्पन्दनों द्वारा अभिव्यक्त हो रहा था और, हर स्पन्दन जगत् को उसकी अभिव्यक्ति में और अधिक आगे ले जा रहा था। वे शाश्वत अलौकिक भागवत प्रेम के महान् स्पन्दन थे, केवल भागवत प्रेम के। भागवत प्रेम का हर स्पन्दन जगत् को उसकी अभिव्यक्ति में और अधिक आगे ले जा रहा था।

और उसके साथ यह निश्चिति थी कि जो होना था हो गया है और यह कि अतिमानसिक अभिव्यक्ति चरितार्थ हो गयी है।

सब कुछ निर्वैयक्तिक था, कुछ भी व्यक्तिगत न था।

यह चलता रहा, चलता रहा, चलता ही रहा।

यह निश्चिति कि जो होना था *हो चुका*।

मिथ्यात्व के सभी परिणाम विलीन हो गये थे: मृत्यु एक भ्रान्ति थी, बीमारी एक भ्रान्ति थी, अज्ञान एक भ्रान्ति थी—ऐसी चीज जिसमें कोई वास्तविकता न थी, जिसका कोई अस्तित्व न था। केवल 'प्रेम', 'प्रेम', 'प्रेम' और 'प्रेम'—असीम, महान्, अलौकिक जो हर चीज को अपने में समाये हुए था।

उसे जगत् में कैसे अभिव्यक्त किया जाये? वह विरोध के कारण असम्भव-सा था। लेकिन फिर यह आया: "तुमने स्वीकार कर लिया है कि जगत् को अतिमानसिक सत्य जानना चाहिये...और वह पूरी तरह से, सर्वांगीण रूप में अभिव्यक्त होगा।" हां, हां...।

और चीज *हो गयी*।

(लम्बा मौन)

व्यक्तिगत चेतना वापस आ गयी: एक तरह के सीमाबन्धन का भाव,

दर्द का सीमाबन्धन; कोई व्यक्ति नहीं उसके बिना।

'विजय' के बारे में सुनिश्चित, हम फिर से रास्ते पर बढ़ चले।

आकाश 'विजय' के गीतों से गूंज रहे हैं।

केवल दिव्य सत्य का ही अस्तित्व है; केवल वही अभिव्यक्त किया जायेगा। आगे बढ़ो!

हे प्रभो, परम विजेता! तेरी जय हो!

(मौन)

अब चलो, काम पर।

धैर्य, सहिष्णुता, पूर्ण समता, और निरपेक्ष श्रद्धा।

(मौन)

अगर मैं अनुभूति के साथ तुलना करूं तो जो मैं कह रही हूं वह कुछ नहीं है, कुछ नहीं, कुछ नहीं, शब्दों के सिवा बिलकुल कुछ भी नहीं।

और हमारी चेतना एक ही है, एकदम परम प्रभु की चेतना के समान है। कोई भेद न था, कोई भेद न था।

हम तत् हैं, हम तत् हैं, हम तत् हैं।

(मौन)

बाद में मैं ज्यादा अच्छी तरह समझाऊंगी। यन्त्र अभी तक तैयार नहीं है। यह तो बस आरम्भ है।

बाद में माताजी ने जोड़ा :

अनुभूति कम-से-कम चार घण्टों तक चली।

बहुत-सी चीजें हैं जिनके बारे में मैं बाद में कहूंगी।

७ सितम्बर, १९६३

एक जड़वादी के साथ बातचीत

हे मृत्यु, तू सत्य कहती है लेकिन ऐसा सत्य जो हनन करता है,
मैं तुझे ऐसे सत्य से उत्तर देता हूं जो रक्षा करता है।

—श्रीअरविन्द (सावित्री १०, ३)

उस दिन, कार्यसम्बन्धी किसी प्रश्न के सिलसिले में, मुझे अपनी स्थिति को जड़वादी के विश्वास की दृष्टि से समझाने का अवसर मिला। मुझे मालूम नहीं अब उनकी क्या स्थिति है क्योंकि साधारणतः मैं इन चीजों में नहीं पड़ती।

उनके लिए, मनुष्य जितने भी अनुभव प्राप्त करता है वे सब किसी मानसिक व्यापार के परिणाम होते हैं—बस यही। हमने उत्तरोत्तर प्रगतिशील मानसिक विकास पा लिया है। लेकिन वे यह बताने में असमर्थ होंगे कि यह क्यों और कैसे हुआ!—लेकिन संक्षेप में, जड़-भौतिक ने जीवन को विकसित किया, और जीवन ने मन को विकसित किया, और मानव की सभी तथाकथित आध्यात्मिक अनुभूतियां मानसिक रचनाएं हैं—वे दूसरे शब्दों का उपयोग करते हैं, लेकिन मेरा ख्याल है कि उनका विचार यही होता है। जो हो, यह अपने-आप में सारे आध्यात्मिक अस्तित्व का निषेध है और परम सत्ता या किसी परम शक्ति या किसी ऐसी उच्च वस्तु का निषेध है जो हर चीज पर शासन करती है।

मैं फिर कहती हूं, मुझे पता नहीं अब उनकी क्या स्थिति है लेकिन मुझे इस तरह के विश्वास से पाला पड़ा था।

अतः मैंने कहा, "लेकिन यह तो बहुत आसान है! मैं तुम्हारे दृष्टिकोण को स्वीकार करती हूं। हम जो कुछ देखते हैं, मानवता को जैसा देखते हैं, उसके सिवाय और कुछ नहीं है और तथाकथित आन्तरिक सत्य मन और मस्तिष्क की क्रिया के परिणाम हैं; और जब तुम मरते हो, तो तुम मर जाते हो, यानी, जब संचय का यह व्यापार अपने जीवन के अन्त में पहुंचता और विघटित हो जाता है, तो सब कुछ विघटित हो जाता है। यह ठीक है।"

शायद अगर चीजें ऐसी होतीं, तो जीवन इतना घृणित होता कि मैं इसमें से कब की बाहर निकल गयी होती। लेकिन मुझे इसी क्षण कहना चाहिये कि ऐसा नहीं है, कि मैं किसी नैतिक या यहां तक कि आध्यात्मिक कारण से आत्महत्या को अस्वीकार करती हूं। मेरे लिए यह एक भीरुता है, और मेरे अन्दर कोई ऐसी चीज है जो भीरुता को पसन्द नहीं करती और इसलिए मैं... मैं समस्या से कभी भी भाग खड़ी न होऊंगी।

यह पहली बात है।

और फिर, एक बार जब तुम यहां हो, तो तुम्हें अन्त तक जाना ही चाहिये, चाहे अन्त शून्य हो तो भी—तुम अन्त तक जाओ, और ज्यादा अच्छा है कि यथासम्भव उत्तम पथ से जाओ, यानी, उस पथ से जो तुम्हारे लिए सबसे अधिक सन्तोषजनक हो। ऐसा हुआ कि मेरे अन्दर कुछ दार्शनिक उत्सुकता जगी और मैंने इन सभी समस्याओं के बारे में थोड़ा-बहुत अध्ययन किया। मैंने अपने-आपको श्रीअरविन्द की शिक्षा के सम्मुख पाया, वे जो कहते हैं वह मेरे लिए, और सबकी अपेक्षा सबसे अधिक सन्तोषजनक था। उन्होंने जो सिखाया (मुझे कहना चाहिये जो प्रकट किया, यह बात जड़वादी के लिए नहीं है) वह मेरे लिए मनुष्यों द्वारा बनायी पद्धतियों से कहीं अधिक, सबसे अधिक सन्तोषजनक, सबसे अधिक पूर्ण है, यह किये जा सकने वाले सभी प्रश्नों का सबसे अधिक सन्तोषजनक तरीके से समाधान करता है। इसी ने मुझे यह अनुभव करने में सबसे अधिक सहायता पहुंचायी है कि जीवन जीने योग्य है। इसलिए वे जो सिखाते हैं उसके अनुरूप बनने की मैं पूरी कोशिश करती हूं और उसे अपने लिए पूर्ण रूप से यथासम्भव उत्तम तरीके से जीने की कोशिश करती हूं—मेरे लिए उत्तम तरीके से। अगर दूसरे इस पर विश्वास न भी करें फिर भी मेरे लिए चीज वह-की-वही है—वे इस पर विश्वास करें या न करें इससे मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझे दूसरों के विश्वास का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं है; मेरा अपना सन्तोष पर्याप्त है। हां तो, अब और अधिक कहने के लिए नहीं है।

परीक्षण लम्बे समय तक चला। सभी समस्याओं का मैंने पूरे ब्योरे के साथ इस तरह उत्तर दिया। और जब मैंने खत्म कर लिया तो अपने-आपसे कहा, "तर्क के रूप में यह विलक्षण है!" क्योंकि सन्देह, अज्ञान,

अबोध्यता, दुर्भावना, निषेध के सभी तत्त्व, वे सब चीजें जो आती हैं इस तर्क के सामने एकदम-से गायब हो जाती है; वे मिट जाती हैं, उनका कोई प्रभाव नहीं रहता।

और उसके बाद, सब कुछ सुरक्षित, ठोस रूप से पकड़ में आ गया।

तुम्हें क्या कहना है?

(मौन)

किन्हीं धार्मिक लोगों की अपेक्षा किसी ऐसे जड़वादी को उत्तर देना कहीं ज्यादा आसान है जो दुराग्रही, निश्चित, सच्चा (यानी, अपनी चेतना की सीमा में सच्चा) हो—कहीं अधिक आसान!

लेकिन स्वाभाविक है कि बौद्धिक दृष्टिकोण से देखने पर, सभी मानव-विश्वासों की एक व्याख्या और एक स्थान होता है। मनुष्य ने ऐसा कुछ नहीं सोचा जो सत्य की विकृति न हो। समस्या वहां नहीं है, बल्कि इस तथ्य में है कि धार्मिक लोगों के लिए कुछ ऐसी चीजें हैं जिन पर विश्वास करना उनका कर्तव्य है और मन को उस पर ऊहापोह करने के लिए छोड़ देना पाप है—अतः, स्वाभाविक है कि वे अपने-आपको बन्द कर लेते हैं और कभी किसी तरह की कोई प्रगति नहीं कर सकते। जब कि, इसके विपरीत, यह माना जाता है कि जड़वादी को सब कुछ जानना चाहिये, व्याख्या करनी चाहिये : वे सब कुछ तार्किक रूप से समझाते हैं। और इस तरह (माताजी हंसती हैं) इस एक तथ्य से कि वे सब कुछ समझा देते हैं, तुम उन्हें जहां ले जाना चाहो ले जा सकते हो।

धार्मिक लोगों के साथ कुछ नहीं किया जा सकता।

हां।

लेकिन आखिर, वह भी ठीक नहीं है। अगर वे किसी धर्म से चिपके हैं तो इसलिए कि उस धर्म ने उन्हें किसी-न-किसी तरीके से सहायता पहुंचायी है, ठीक उसी चीज की सहायता की है जिसे निश्चिति की आवश्यकता थी, ताकि ढूंढ़ना न पड़े बल्कि व्यक्ति किसी दृढ़ वस्तु का आश्रय ले सके और उस दृढ़ता के लिए वह उत्तरदायी न हो—उसका उत्तरदायी तो कोई

और है (माताजी हंसती हैं) और यह इसी तरह चलता चला जाता है। उन्हें उसमें से निकालने की इच्छा करना अनुकम्पा का अभाव है—वे जहां हैं उन्हें वहीं छोड़ देना ज्यादा अच्छा है। मैं कभी किसी ऐसे व्यक्ति का प्रतिवाद नहीं करती जिसमें श्रद्धा हो—उसे अपनी श्रद्धा रखने दो! मैं इसका ध्यान रखती हूं कि कोई ऐसी बात न कहूं जो उसकी श्रद्धा को हिला दे, क्योंकि यह अच्छा न होगा—ऐसे लोग कोई और श्रद्धा रखने में समर्थ नहीं होते।

लेकिन किसी जड़वादी के लिए : "मैं प्रतिवाद नहीं करती, मैं तुम्हारी दृष्टि को स्वीकार कर रही हूं, बात इतनी-सी है कि तुम्हारे पास कुछ कहने को नहीं है—मैं अपने स्थान पर हूं, तुम अपने पर रहो। तुम्हारे पास जो कुछ है अगर तुम उससे सन्तुष्ट हो तो उसे अपने पास रखो। अगर वह जीने में तुम्हारी सहायता करे तो बहुत अच्छा है।

"लेकिन तुम्हें मुझ पर आरोप लगाने या मेरी समालोचना करने का कोई अधिकार नहीं, क्योंकि वह तुम्हारे अपने आधार पर है। अगर जो कुछ मैं सोचती हूं वह केवल कल्पना है तो भी मैं तुम्हारी कल्पना से अपनी कल्पना को ज्यादा पसन्द करती हूं।"

तो!

२४ दिसम्बर, १९६६

सत्य को चुनना

सत्य क्या है? जब आप "सत्य" के बारे में कहती हैं तो उससे आप का क्या अर्थ होता है?

तुम 'सत्य' की मानसिक परिभाषा चाहते हो। 'सत्य' मानसिक शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। हां, ऐसा ही है। और सभी प्रश्न मानसिक प्रश्न हैं।

सत्य को सूत्रबद्ध नहीं किया जा सकता, इसकी परिभाषा नहीं दी जा सकती—इसे *जीना* होता है।

और जो पूरी तरह 'सत्य' को समर्पित है, जो 'सत्य' को जीना चाहता है, 'सत्य' की सेवा करना चाहता है, वह हर क्षण यह जान लेगा कि क्या करना चाहिये : यह एक तरह की अन्त:प्रेरणा या अन्तर्दर्शन होगा (बहुत बार शब्दों के बिना, लेकिन कभी-कभी शब्दों में भी अभिव्यक्त होगा) जो तुम्हें हर क्षण यह बतायेगा कि उस क्षण का सत्य क्या है। और यही है वह चीज जो इतनी मजेदार है। तुम "सत्य" को ऐसी चीज के रूप में जानना चाहते हो जिसकी अच्छी तरह से व्याख्या की गयी हो, जिसका भली-भांति वर्गीकरण किया गया हो, जो सुस्थापित हो, और फिर तुम चैन से रहो : फिर और खोजबीन की जरूरत न रहे! तुम उसे ही पकड़ कर गांठ बांध लेते हो और कहते हो : "लो, यह है "सत्य" और बस वह अटल हो जाता है। सभी धर्मों ने यही किया है। उन्होंने अपने सत्य को रूढ़ि के रूप में स्थापित कर लिया लेकिन फिर वह 'सत्य' नहीं रह जाता।

'सत्य' जीवन्त, गतिमान्, हर क्षण अपने-आपको अभिव्यक्त करने वाली चीज है, और परम प्रभु तक पहुंचने का यह एक तरीका है। परम प्रभु तक पहुंचने का हर एक का अपना तरीका होता है। शायद कुछ ऐसे हैं जो एक साथ सभी दिशाओं से उन तक पहुंचने में समर्थ हैं, लेकिन कुछ हैं जो 'प्रेम' द्वारा पहुंचते हैं, कुछ 'शक्ति' द्वारा पहुंचते हैं, कुछ 'चेतना' द्वारा पहुंचते हैं और कुछ 'सत्य' द्वारा पहुंचते हैं। लेकिन इनमें से हर एक पक्ष

स्वयं प्रभु के जितना निरपेक्ष, अनिवार्य और अपरिभाष्य है। परम प्रभु अपनी क्रिया में निरपेक्ष, अनिवार्य, अपरिभाष्य और अग्राह्य हैं और उनके लक्षणों की भी यही विशेषता है।

एक बार यह जान लेने पर, जो इन पक्षों में से किसी एक पक्ष की सेवा में हो वह जान लेता है (यह जीवन में, काल में, काल की गतिविधि में अभिव्यक्त होता है), वह हर क्षण जानता चलेगा कि 'सत्य' क्या है, हर क्षण जानता चलेगा कि 'चेतना' क्या है, हर क्षण जानता चलेगा कि 'शक्ति' क्या है और हर क्षण जानता चलेगा कि 'प्रेम' क्या है। और यह अनेक-रूप 'शक्ति', 'प्रेम', 'चेतना', 'सत्य' है जो जगत् की अभिव्यक्ति में अपने-आपको विभिन्न रूपों में प्रकट करता है जिस तरह परम प्रभु जगत् की अभिव्यक्ति में स्वयं को असंख्य रूपों में प्रकट करते हैं।

११ मई, १९६७

देखो, जगत् की वर्तमान अवस्था में परिस्थितियां हमेशा कठिन रही हैं। सारा संसार कलह और संघर्ष की स्थिति में है—अभिव्यक्त होने की इच्छुक सत्य और प्रकाश की शक्तियों और उन सबके बीच संघर्ष जो बदलना नहीं चाहता, जो ऐसे भूतकाल का प्रतिनिधि है जो स्थिर और कठोर है, जो जाने से इन्कार करता है। स्वभावतः, हर व्यक्ति अपनी कठिनाइयों का अनुभव करता है और उसे उन्हीं बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

तुम्हारे लिए बस एक ही रास्ता है। वह है पूर्ण, समग्र और बिना शर्त के समर्पण। इससे मेरा मतलब है न केवल अपनी क्रियाओं, कर्मों, महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़ देना बल्कि अपने सभी भावों को भी छोड़ देना है, यानी तुम जो करते हो, तुम जो हो वह सब अनन्य रूप से भगवान् के लिए हो। तब तुम अपने-आपको मानव प्रतिक्रिया के घेरे से ऊपर अनुभव करते हो—केवल उनसे ऊपर ही नहीं बल्कि भागवत कृपा की दीवार द्वारा उनसे सुरक्षित रहते हो। एक बार तुम्हारे अन्दर कामनाएं न रहें, आसक्तियां न रहें, एक बार तुम मनुष्यों से, चाहे वे कोई भी क्यों न हों, पारितोषिक लेने की समस्त आवश्यकताओं को त्याग दो—यह जानो कि एक मात्र पाने योग्य पारितोषिक वह है जो परम प्रभु से आता है और जो कभी निराश नहीं करता—एक बार तुम सभी बाहरी सत्ताओं और चीजों की आसक्ति छोड़ दो, तो तुम तुरन्त अपने हृदय में उस परम उपस्थिति, उस परम शक्ति, उस परम कृपा का अनुभव करते हो जो हमेशा तुम्हारे साथ होती है।

कोई और उपचार नहीं है। बिना अपवाद *हर एक के लिए* यही एकमात्र उपचार है। वे सभी जो पीड़ित हैं, उनसे यही एक बात कहनी चाहिये : समस्त दुःख इस बात का सूचक है कि समर्पण समग्र नहीं है। तो जब तुम अपने अन्दर इस तरह के "प्रहार" का अनुभव करो तो यह कहने की बजाय, "ओह, यह खराब है" या "यह परिस्थिति कठिन है", तुम यह कहो, "मेरा समर्पण पूर्ण नहीं है," तो यह ठीक होगा। और फिर तुम उस परम कृपा का अनुभव करोगे जो तुम्हारी सहायता करती है, जो तुम्हारा

पथ-प्रदर्शन करती है और तुम आगे बढ़ते चले जाते हो। और फिर एक दिन तुम उस शान्ति में उभर आते हो जिसे कुछ भी विचलित नहीं कर सकता। तुम सभी प्रतिरोधी शक्तियों, प्रतिरोधी गतिविधियों, प्रहारों, गलतफहमियों, दुर्भावनाओं का उत्तर उसी मुस्कान के साथ देते हो जो 'भागवत कृपा' में पूर्ण विश्वास से आती है। और बचने का यही *एकमात्र* तरीका है, कोई दूसरा नहीं है।

यह जगत् संघर्ष, दु:ख-दर्द, कठिनाइयों, तनावों का जगत् है; यह इन्हीं से बना है। यह अभी तक बदला नहीं है, बदलने में कुछ समय लगेगा। और हर एक के लिए बाहर निकलने की संभावना है। अगर तुम भागवत कृपा की उपस्थिति का सहारा लो, तो यही *एकमात्र* उपाय है बाहर निकलने का। मैं दो-तीन दिनों से निरन्तर तुमसे यही कहती आ रही हूं।

तो अब?

क्या किया जाये?

क्या? तुम्हारे काम के बारे में कुछ नहीं कहना है। तुम उसे बिलकुल अच्छी तरह से, ठीक जैसा करना चाहिये कर रहे हो; यह ठीक है। तुम्हारा काम बिलकुल ठीक है।

मैं यही पूछना चाहता था : यह काम किसी भी तरह आवश्यक है या नहीं? मैं इसे क्यों करता चला जाऊं?

अत्युत्तम, इसे करते चलो। तुम इसे बिलकुल अच्छी तरह कर रहे हो। मानव सराहना की आशा मत करो—क्योंकि मनुष्य, यह नहीं जानते कि किस आधार पर चीजों की सराहना की जाये, और इससे भी बढ़कर, जब कोई ऐसी चीज होती है जो उनसे ज्यादा ऊंची हो तो वे उसे पसन्द नहीं करते।

लेकिन यह बल मैं कहां से पाऊं?

अपने अन्दर से। भागवत उपस्थिति तुम्हारे अन्दर है। वह तुम्हारे अन्दर

है। तुम उसे बाहर ढूंढ़ते हो; अन्दर देखो। वह तुम्हारे अन्दर है। भागवत उपस्थिति वहां मौजूद है। तुम बल पाने के लिए औरों की प्रशंसा चाहते हो, वह तुम्हें कभी न मिलेगी। बल तुम्हारे अन्दर है। अगर तुम चाहो, तो उसकी अभीप्सा कर सकते हो जो तुम्हें परम लक्ष्य, परम प्रकाश, परम ज्ञान, परम प्रेम प्रतीत हो। लेकिन वह तुम्हारे अन्दर है—वरना तुम कभी उसके साथ सम्पर्क में न आ पाते। अगर तुम अपने अन्दर पर्याप्त गहरे जाओ तो वह अभीप्सा तुम्हें वहां एक ज्वाला की तरह मिलेगी जो हमेशा सीधी ऊपर की ओर जलती है।

और यह मत सोचो कि यह करना बहुत कठिन है। यह कठिन इसलिए है क्योंकि दृष्टि हमेशा बाहर की ओर मुड़ी होती है और तुम परम उपस्थिति का अनुभव नहीं करते। हर क्षण यह जानने के लिए कि क्या करना चाहिये, कैसे करना चाहिये, बाहर सहारा ढूंढ़ने की जगह अगर तुम अन्दर, भागवत ज्ञान पर एकाग्र होओ और प्रार्थना करो, और अगर तुम स्वयं जो कुछ हो उसे दे दो, जो कुछ करो पूर्णता पाने के लिए करो, तो तुम अनुभव करोगे कि सहारा मौजूद है, हमेशा पथ-प्रदर्शन कर रहा है, रास्ता दिखा रहा है। और अगर कोई समस्या आये तो उससे युद्ध करने की इच्छा के स्थान पर तुम उसे परम प्रज्ञा के हवाले कर दो कि वह सभी दुर्भावनाओं, सभी गलतफहमियों, सभी बुरी प्रतिक्रियाओं के प्रति जो उचित है वह कर ले। अगर तुम पूरी तरह से समर्पण कर दो तो फिर उसके साथ तुम्हारा सम्बन्ध नहीं रह जाता; वह परम प्रभु की चीज हो जाती है जो उसका भार ले लेते हैं, जो इसके सम्बन्ध में क्या करना चाहिये यह किसी भी व्यक्ति से ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। यही एकमात्र तरीका है, यही एकमात्र तरीका है। तो, मेरे बच्चे।

एक चीज है कि मैं वहां जो कुछ करता हूं, वह मेरे अपने लोगों को पसन्द नहीं आता है।

तुम्हारे अपने लोगों में सब कुछ का मिश्रण हैं, जैसा कि हर एक है।

लेकिन मेरा अनुभव इतना दृढ़ है—न केवल दृढ़, बल्कि वह इतना

स्पष्ट है जैसे दिन की रोशनी हो कि मानों मैं आपकी उपस्थिति में बैठा हूं—कि मैं कुछ भी अपने-आप नहीं करता। इतने वर्षों का यह मेरे लिए इतना महान् सुस्पष्ट अनुभव है। मेरे द्वारा जो कुछ किया जा रहा है वह मेरे द्वारा बिलकुल नहीं, किसी दिव्य शक्ति के द्वारा किया जा रहा है। और वह कार्य करवा लेती है लेकिन फिर...

क्या! तुम आशा करते हो कि दुनिया यह समझे?

जी नहीं। वे न समझें, मैं इसके लिए कोई श्रेय नहीं चाहता, लेकिन, बाधाएं और ...

अगर तुम यह मानते हो कि मैं समझ रही हूं और जानती हूं, तो तुम्हें मेरा पूरा सहारा प्राप्त है। मैंने तुमसे कभी नहीं कहा कि तुम गलत चीज कर रहे हो, कहा है क्या? अब तुम्हें हमेशा के लिए यह समझ लेना चाहिये कि जब तक लोग सच्चे योगी न हों, अपने अहं से मुक्त न हों, भगवान् को पूरी तरह समर्पित न हों तब तक वे समझ नहीं सकते। भला कैसे समझ सकते हैं वे? वे केवल बाहरी आंखों और ज्ञान द्वारा देखते हैं; वे बाहरी चीजों और बाहरी रूप-रंग को देखते हैं। वे अन्दर की चीज को नहीं देखते। जब हम बाहर से यानी मनुष्यों से सराहना पाने की आशा छोड़ देते हैं तो हमारे पास शिकायत करने का कोई कारण नहीं रह जाता। वे सराहना करें तो उनके लिए बहुत अच्छा है। वे सराहना न करें तो कोई हर्ज नहीं। यह उनका निजी दृष्टिकोण है। हम उन्हें खुश करने के लिए नहीं करते, हम चीजें इसलिए करते हैं क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि इन्हें करना चाहिये।

मैंने कभी सराहना की आशा नहीं की, माताजी।

शायद चीजें तुम्हें यह स्थिति अपनाने के लिए बाधित करने को आ रही हैं—क्योंकि यही मुक्ति है, यही सच्ची मुक्ति है।

जी, अहंकार से नहीं कह रहा, बल्कि स्वभाव से ही मैं साधु हूं। मुझे बिलकुल किसी चीज की आवश्यकता नहीं है।

यह ठीक है, लेकिन तुम्हें अपने परिवार की सराहना की आवश्यकता भी नहीं होनी चाहिये।

मेरी सभी असफलताओं और कमजोरियों के होते हुए, मुझे किसी चीज की आवश्यकता नहीं, मुझे किसी तरह की सराहना की जरूरत नहीं है।

तब तुम दुःख नहीं पा सकते। क्योंकि एकमात्र वस्तु जिसकी तुम्हें आवश्यकता है वह है भागवत सहारा, और वह तुम्हें प्राप्त है। तब तुम्हें दुःख नहीं हो सकता।

लेकिन मैं बहुत अधिक दुःख झेल रहा हूं।

हां, तुम्हारी सत्ता के अन्दर संघर्ष है। तुम्हारी चेतना का एक भाग जानता है, लेकिन फिर भी एक भाग है जो परिस्थितियों का दास है।

(मौन)

शायद यह सब तुम्हारे ऊपर परम और पूर्ण मुक्ति के लिए आ रहा है। और अगर तुम इसे भागवत कृपा की अभिव्यक्ति के रूप में लो तो तुम परिणाम देखोगे। ऐसी शान्ति, ऐसी शान्ति मिलेगी जिसे कुछ भी विचलित नहीं कर सकता, पूर्ण समचित्तता और ऐसा बल प्राप्त होगा जो कभी धोखा नहीं देता।

(लम्बा मौन)

आज इसे नये जन्म के रूप में लो। नया जीवन जो शुरू हो रहा है।

१५ अगस्त, १९६७

मैं अपने आसन पर बैठ गयी, समय प्रायः हो गया था, शायद आधा मिनट हो, और अचानक, बिना किसी तैयारी के, यूं ही, हथौड़े की चोट के समान : ऐसा प्रभावकारी अवतरण हुआ—पूरी तरह से स्थिर—किसी ऐसी वस्तु का...मानों उसी समय श्रीअरविन्द ने मुझसे कहा (क्योंकि व्याख्या अनुभूति के साथ-साथ आयी : यह एक अन्तर्दर्शन था जो अन्तर्दर्शन न था, वह इतने समग्र रूप में ठोस था) और शब्द थे : "*स्वर्णिम शान्ति*"। कितनी जोरदार! और फिर वह अनुभूति हटी नहीं। पूरे आधे घण्टे तक नहीं हटी। यह नयी चीज है जिसे मैंने पहले कभी अनुभव नहीं किया था। मैं यह नहीं कह सकती...वह देखी गयी, लेकिन वह वस्तुपरक अन्तर्दर्शन की तरह नहीं थी। और सहज रूप से दूसरों ने मुझसे कहा कि जिस क्षण वे ध्यान के लिए बैठे (राशिभूत अवतरण का संकेत) कोई चीज महान् शक्ति के साथ नीचे उतरी जो पूरी तरह से स्थिर थी, और ऐसी शान्ति का अनुभव हुआ जिसका उन्होंने अपने जीवन में कभी अनुभव नहीं किया था।

स्वर्णिम शान्ति। और यह सच है, उसने स्वर्णिम अतिमानसिक प्रकाश का भाव जगाया। लेकिन वह... एक शान्ति थी! पता है, वह ठोस थी, अव्यवस्था और क्रिया-कलाप का निषेध नहीं, नहीं : ठोस, ठोस शान्ति थी। मैं रुकना नहीं चाहती थी। समय हो चुका था, फिर भी मैं दो-तीन मिनट रही। जब मैं रुकी तो यह अनुभूति जा चुकी थी। और इसने मेरे शरीर में बहुत बड़ा अन्तर कर दिया—स्वयं शरीर में इतना बड़ा अन्तर आ गया कि जब वह चली गयी तो मैंने बहुत बेचैनी का अनुभव किया। मुझे अपना सन्तुलन वापस लाने में आधा मिनट लगा।

वह आयी और चली गयी। वह ध्यान के लिए आयी और फिर वह चली गयी। आधे घण्टे से ज्यादा, पैंतीस मिनट तक रही।

शाम को, बालकनी[१] में, भीड़ थी। मेरे ख्याल से यह हमारे यहां की

[१] १५ अगस्त, श्रीअरविन्द के जन्मदिन पर, माताजी अपने ऊपर के कमरे की बालकनी पर कुछ मिनट खड़ी होकर नीचे सड़क पर खड़े लोगों को दर्शन दिया करती थीं।

सबसे बड़ी भीड़ थी : सभी सड़कों पर भीड़ फैली थी, मैं जहां तक देख सकती थी, सड़कें लोगों से खचाखच भरी थीं। तब मैं बाहर आयी और जैसे ही मैं बाहर निकली तो इस भीड़ से ऐसी चीज उठी जो एक अभ्यर्थना, एक प्रार्थना, एक प्रतिवाद जैसा था जो इस जगत्, विशेषकर इस देश की अवस्था के बारे में था। यह चीज लहरों में उठी। मैंने उसकी ओर देखा (वह बहुत ही अनुरोधपूर्ण थी) और फिर मैंने अपने आपसे कहा : "यह मेरा दिन नहीं है, यह तो श्रीअरविन्द का दिन है।" और मैं यूं चली गयी (हटने का संकेत) और मैंने श्रीअरविन्द को आगे कर दिया। और जब वे आगे आये तो सामने खड़े होकर उन्होंने बस इतना ही कहा, बस यही : "परम प्रभु सबसे अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं।" (माताजी हंसती हैं) तुरन्त, मैं मुस्कुराने लगी (मैं हंसी नहीं, बल्कि मुस्कुराने लगी) और वही सुबह वाली शान्ति उतर आयी।

तो ऐसा हुआ।

"परम प्रभु सबसे अच्छी तरह जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं," अपने पूर्ण विनोद भाव के साथ और तुरन्त सब कुछ शान्त हो गया।

२५ मई, १९७०

देश को कठिनाई से उबारने के लिए क्या करना चाहिये? श्रीअरविन्द ने सभी मुश्किलों को पहले से देख लिया था और उन्होंने समाधान दे दिया है। हम उनकी शताब्दी के करीब पहुंच रहे हैं; ऐसा लगता है मानों सब कुछ पहले से आयोजित हो, मानों, भागवत रूप से आयोजित हो, क्योंकि यह सारे देश में उनकी शिक्षा को प्रसारित करने के लिए एक विलक्षण सुअवसर होगा: शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा, भारत के बारे में शिक्षा, भारत को किस तरह संगठित किया जाये, भारत का मिशन इन सबके बारे में बताने का सुअवसर होगा। मुझे लगता है कि शताब्दी को सुअवसर मानकर कुछ ज्यादा आयोजन के साथ उनकी शिक्षा को सारे देश में फैलाया जा सकता है ताकि उनके विचार फैलें। जिन लोगों की दिलचस्पी इसमें है वे यह काम लेकर इसकी शिक्षा दे सकते हैं, सभाएं करवा सकते हैं और लोगों को प्रकाश और ज्ञान दे सकते हैं। यह विलक्षण सुअवसर है और केवल यही इन सब कठिनाइयों पर प्रकाश डाल सकता है।

जो कुछ हो चुका है और जो कुछ अब हो रहा है, उसके बारे में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि पीछे जाना व्यर्थ है। हमें देश को उसका सच्चा स्थान देना चाहिये, यानी, भगवान् पर भरोसा करने की स्थिति। स्वाभाविक है कि लोग आज जिस पर विश्वास करने की चेष्टा करते हैं, यह चीज उससे एकदम दूसरे छोर पर है। लेकिन श्रीअरविन्द उसे इस तरीके से समझाते हैं कि जो उसके विरुद्ध हैं वे भी सहमत हो सकते हैं। समझ रहे हो न? उन्होंने कहने का ऐसा तरीका ढूंढ़ निकाला है जिसे सब समझते हैं। जहां तक मैं देखती हूं यही एकमात्र समाधान है। यही एकमात्र समाधान है। बाकी सबका अर्थ होगा जटिलता, प्रतिवाद और कलह।

उनकी शिक्षा के एक तरह के प्रदर्शन की व्यवस्था के लिए अभी हमारे सामने दो वर्ष हैं। और यह राजनीति से ऊपर है, देखो, यह दलबन्दी का प्रश्न नहीं, यह ऐसी बात नहीं है कि चूंकि कुछ लोग उसके पक्ष में हैं अतः स्वभावतः दूसरे उसके पक्ष में न होंगे। यह सारी राजनीति से ऊपर है। राजनीति से परे देश को व्यवस्थित करना है। और यही एकमात्र तरीका है। राजनीति में हमेशा लड़ाई, भद्दी लड़ाई होती है—भद्दी। स्थिति

इतनी खराब हो चुकी है। वे हमेशा मुझसे कहा करते थे कि चीजें बद से बदतर होती जायेंगी, क्योंकि यह उस युग का अन्त है। हम एक ऐसे युग में पदार्पण कर रहे हैं जहां चीजों को भिन्न तरीके से व्यवस्थित होना होगा। इसीलिए यह विषम काल है।

चूंकि हम जानते हैं कि क्या आनेवाला है, हम उसे कम संघर्ष के साथ अधिक जल्दी लाने में सहायता कर सकते हैं। पीछे जाने में कोई आशा नहीं है; इससे चीजें अनन्त काल तक चलती चली जायेंगी। हमें आगे बढ़ना चाहिये, पूरी तरह से, और हमें परे जाना होगा, दलबन्दी के परे। और इस चीज को श्रीअरविन्द से अधिक अच्छी तरह और कोई नहीं समझा सकता क्योंकि वे दलबन्दी से बहुत, *बहुत* अधिक परे थे, उन्होंने सभी दलों के लाभ और हानियों को देखा था और सटीक रूप से समझाया था।

उन्होंने जो लिखा है, और बहुत लिखा है, उसे अगर तुम सावधानी से पढ़ो तो तुम इन सभी प्रश्नों के उत्तर पा लोगे। और साथ-साथ तुम यह भी जान लोगे कि तुम्हें भागवत शक्ति का पूरा-पूरा सहारा मिलेगा। वह शक्ति जो उनके पीछे थी वही इस रूपान्तर के पीछे है। रूपान्तर का समय आ गया है। हम अतीत से चिपके नहीं रह सकते।

राजनीति से परे जाने का सबसे अच्छा उपाय है श्रीअरविन्द के सन्देश का प्रसार करना। क्योंकि अब वे राजनीति में नही हैं जो शक्ति हथियाना चाहें; अब हैं केवल उनके विचार और आदर्श। और निश्चय ही, अगर लोग समझ सकें और उनके कार्यक्रम को चरितार्थ कर सकें, तो देश बहुत शक्तिशाली बन जायेगा, बहुत शक्तिशाली।

जो उनकी शिक्षा को समझते हैं, उसे संगठित करने और फैलाने का काम अपने हाथों में ले सकते हैं।

लेकिन माताजी, जब तक माताजी के बच्चे सरकार में नहीं आते...

(माताजी हंसती हैं) वे टूट जायेंगे। और वे स्वयं इतना सीमित अनुभव करेंगे।

अगर कोई ऐसा व्यक्ति है जो राजनीति में जाना चाहता है तो बात

अलग है; लेकिन मेरे ख्याल से दूसरे उसमें प्रवेश किये बगैर अधिक मजबूत होंगे।

लेकिन बहरहाल सरकार तो होगी ही। अगर माताजी...

लेकिन वे स्वभाव में राजनीतिक लोग होने चाहियें।

राजनीति हमेशा दलबन्दी से, विचारों से और कर्तव्यों से भी सीमित होती है—जब तक कि हम ऐसी सरकार न बनायें जिसमें कोई दल न हो, ऐसी सरकार जो सभी विचारों को स्वीकारे क्योंकि वह दलबन्दी से ऊपर होगी। दलबन्दी हमेशा एक सीमा होती है; यह एक बक्से की तरह है : तुम बक्से के अन्दर चले जाते हो (माताजी हंसती हैं)। निश्चय ही, अगर कुछ ऐसे लोग होते जो बिना किसी दल के सरकार में रहने का साहस करते —"हम किसी दल का प्रतिनिधित्व नहीं करते! हम *भारत* का प्रतिनिधित्व करते हैं"—तो चीज अद्‌भुत होती।

चेतना को ऊपर उठाओ, ऊपर, दलबन्दी से ऊपर।

फिर, स्वभावतः कुछ लोग जो राजनीतिक दल में नहीं आ सके—वे! यही है आगामी कल के लिए काम करना। आगामी कल में ऐसा ही होगा। यह सारा संघर्ष इसलिए है क्योंकि देश को आगे बढ़ना है, इन सभी पुरानी राजनीतिक आदतों से ऊपर उठना है। बिना किसी दल की सरकार। ओह! यह अद्‌भुत होगा!

माताजी के वचन-III में मुख्यतया आध्यात्मिक जीवन के विविध पहलुओं पर श्रीमां द्वारा लिखित लघु वक्तव्य हैं। विषय हैं: भगवान्, प्रकृति और देवता; धर्म, गुह्यविद्या, धन-संपत्ति और सरकार; प्रगति, पूर्णता, रूपान्तर और अतिमानस; बीमारी और स्वास्थ्य; प्रार्थनाएं और संदेश। वक्तव्य श्रीमां के परिपत्रों, सन्देशों और पत्राचारों से संकलित किये गये हैं। खण्ड में लगभग तीस संक्षिप्त वार्ताएं भी समाविष्ट हैं।

ISBN 978-81-7058-894-8
Rs 195

ISBN 978-81-7058-894-8
9 788170 588948